स्वाध्याय   स्वमन्थन   स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

MAAH-101 N

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (प्रारम्भ से 319 ईस्वी तक)

Political History of Ancient India (from the beginning to 319A.D.)

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावाा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ायाा गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकाायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व

MAAH-101 (N)

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

(प्रारम्भ से 319 ईस्वी तक)

(Political History of Ancient India

(from the beginning to 319A.D.)

पाठ्यक्रम

इकाई	इकाई का शीर्षक	पृ.सं.
इकाई –1	प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत	3–20
इकाई –2	छठी शताब्दी ई.पू. का राजनीतिक इतिहास	21–31
इकाई –3	मगध साम्राज्य का उत्कर्ष	32–41
इकाई –4	हखामनी आक्रमण–साइरस या कुरूष, दारायवुष या दारा प्रथम, क्षयार्ष या जरक्सीज एवं हखामनी आक्रमण का प्रभाव	42–46
इकाई –5	सिकन्दर का आक्रमण एवं इसके प्रभाव	43–55
इकाई –6	मौर्य साम्राज्य–स्रोत एवं उत्पत्ति, चन्दगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार की उपलब्धियाँ	56–70
इकाई –7	अशोक महान : धम्म एवं प्रशासन	71–85
इकाई –8	मौर्य साम्राज्य का पतन	86–92
इकाई –9	शुंग वंश–स्रोत एवं शुंगो की उत्पत्ति, पुष्यमित्र शुंग की उपलब्धियाँ एवं उसके उत्तराधिकारी कण्व वंश: वासुदेव, भूमिमित्र, नारायण एवं सुशर्मा	93–102
इकाई –10	सातवाहन वंश–स्रोत एवं सातवाहनों का मूल स्थान, सातकर्णी की उपलब्धियाँ,गौतमीपुत्र सातकर्णी, वासिष्ठीपुत्र पुलवामि एवं उनके उत्तराधिकारी	103–114
इकाई –11	कलिंग नरेश खारवेल–हाथीगुम्फा अभिलेख एवं वंश परिचय, खारवेल का धर्म, युद्व अभियान एवं तिथि	115–119
इकाई –12	हिन्द–यवन–डियोडोटस प्रथम, डियोडोटस द्वितीय, डिमेट्रियस, यूक्रेटाइडीज एवं मेनेण्डर	120–128
इकाई –13	पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप–क्षहरात वंश–भूमक, नहपान, कामर्दक वंश–चष्टन, रूद्रदामन, शक–सातवाहन संघर्ष	129–138
इकाई –14	पहलव वंश–वोनोनीज, गोण्डोफर्नीज एवं गोण्डोफर्नीज के उत्तराधिकारी	139–144
इकाई –15	कुषाण वंश–स्रोत, कुजुल कैडफिसेस, विम कैडफिसेस, कनिष्क प्रथम, साम्राज्य विस्तार, शासन प्रबन्ध, बौद्व धर्म, गान्धार एवं मथुरा कला, वासिष्क, हुविष्क, वासुदेव प्रथम, साम्राज्य का पतन	145–162

MAAH-101N
प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (प्रारम्भ से 319 ईस्वी तक)
Political History of Ancient India (from the beginning to 319A.D.)

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह,	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यलय, प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ.निशि सेठ, (1–7 इकाई)	वरिष्ठ सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग एस.एस.खन्ना गर्ल्स कालेज,प्रयागराज
डॉ.नैरंजना श्रीवास्तव, (8–15 इकाई)	वरिष्ठ सहायक आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, बी.एच.यू.,वाराणसी

सम्पादक

प्रो.सन्तोषा कुमार,	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार,	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021,

ISBN :978-81-19530-41-0 **मुद्रित वर्ष**– अक्टूबर, 2023

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक–कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002

मुद्रक–मेसर्स चन्द्रकला प्राइवेट लिमिटेड, प्रयागराज–211002

इकाई 1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 साहित्यिक स्रोत

1.2.1 वैदिक साहित्य

1.2.2 संस्कृत साहित्य

1.2.2.1 महाकाव्य

1.2.2.2 धर्मशास्त्र

1.2.2.3 पुराण

1.2.3 जीवनी, नाटक एवं काव्यग्रन्थ

1.2.4 संगम साहित्य

1.2.5 कौटिल्य का अर्थशास्त्र

1.2.6 बौद्ध एवं जैन साहित्य

1.3 पुरातात्विक स्रोत

1.3.1 सिक्के

1.3.2 शिलालेख

1.3.3 स्मारक

1.4 विदेशी विवरण

1.5 सारांश

1.6 बोध प्रश्न

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 प्रस्तावना

इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है। इसमें समय (काल), व्यक्ति, स्थान तथा घटना का महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास कोई कहानी नहीं है बल्कि ऐतिहासिक स्रोतो से प्राप्त प्रमाणों पर आधारित वह व्याख्या है जो अतीत में

घटित घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन प्रस्तुत करती है। पाश्चात्य इतिहास कारों द्वारा प्रस्तुत यह धारणा की प्राचीन भारतीयों को इतिहास लेखन का ज्ञान नहीं था, वर्तमान परिस्थितियों में स्वीकृत नहीं है। प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की वैसी श्रृंखलाबद्ध, परम्परा नहीं थी जैसी प्राचीन यूनान का रोम मे देखने को मिलती है, भारतीयों की इतिहास चेतना का दृष्टिकोण आध्यात्मिक एवं धार्मिक था जिसमें उन समस्त मूल्यों का संकलन किया गया जिस पर मानव जीवन आधारित है। इस सन्दर्भ में भारत में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अनेक साहित्य उपलब्ध है जिसमें से ऐतिहासिक सामग्री अलग करनी पड़ेगी।

कुछ ऐसे प्रमाण भी है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के अलग से इतिहास लेखन का प्रयास किया गया। 7वीं शताब्दी में भारत यात्रा पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि भारत के प्रत्येक प्रांत में सभी घटनाओं का विवरण लिखने वाला एक अधिकारी नियुक्त किया जाता था। कल्हण ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि भारतवासी विलुप्त तथा विस्मृत इतिहास को लिखने की आधुनिक विधियों से परिचित थे। वह लिखता है कि ''वह गुणवान कवि प्रशंसा का पात्र है जो रागद्वेष से मुक्त होकर एकमात्र तथ्य निरूपण में अपनी भाषा का प्रयोग करता है।'' यहाँ कल्हण अच्छे इतिहासकार की ओर संकेत करते है। अतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास के प्रति चेतना एवं रूचि दोनों थी जिसका परिप्रेक्ष्य अत्यन्त व्यापक था। ऐतिहासिक स्रोतों में साहित्यिक ग्रन्थों के साथ–साथ विदेशी यात्रियों के वृतांत भी इतिहास उपयोगी साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा अतीत के खण्डहरों से खोजी गई वस्तुऐं और आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों से भी प्राचीन इतिहास सम्बन्धी बहुमूल्य सूचनाएं प्राप्त होती है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न को समझ सकेंगे –

- प्राचीन भारतीय राजनीतिक इतिहास के पुर्ननिर्माण से सम्बन्धित स्रोत कौन से हैं?
- साहित्यिक साक्ष्यों के उपयोग से सम्बन्धित समस्याएँ
- पुरातात्विक साक्ष्य एवं उनका महत्व
- विदेशी विवरण एवं उनका महत्व

1.2 साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी देने वाली साहित्यिक स्रोत सामग्री को

परम्परागत रूप से दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है– (1) धार्मिक साहित्य (2) धर्मेत्तर साहित्य भारतीय इतिहास के अध्ययन के स्रोत के रूप में उपलब्ध भारतीय साहित्य की विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन करेंगे।

1.2.1 वैदिक साहित्य

भारतीय उपमहाद्वीप में उपलब्ध रचनाओं में सबसे प्राचीन साहित्य वैदिक साहित्य हैं जिसमें चारों वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, आरण्यक ग्रंथों को सम्मिलित किया जाता है। इन साहित्यों की भाषा संस्कृत है। वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम वेदों का उल्लेख किया जा सकता है। वेद शब्द की व्युत्पत्ति विद् से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जानना'। अतः वेद का अर्थ ज्ञान से है। वेदों को श्रुति या संहिता भी कहते हैं। इनकों भारतीय परम्परा में नित्य तथा अपौरुषेय माना गया है। वेदों की संख्या 4 है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद इन चारों वेदों में प्राचीनतम् है जो 10 मण्डलों में विस्तृत 1028 सूक्तों का संकलन है। ऋग्वेद का रचना काल निश्चित तौर पर निर्धारित करना कठिन है। संभवतः इसकी रचना 1500–1000 ईसा पूर्व के बीच सप्त सैन्धव प्रदेश में हुई थी। ऋग्वेद में मुख्यतः देवतओं की स्तुति में गाये गए मंत्रो का संग्रह है। अतः इसमें ठोस ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम मिलती है। मात्र कुछ मंत्र ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद संहिता के सातवें मण्डल में दस राजाओं का युद्ध उल्लिखित है जो आर्यों के दो प्रमुख जनों पुरु तथा भरत के बीच हुआ था। इस युद्ध में भरत जन के नेता सुदास ने अपने विरुद्ध युद्ध कर रहे पुरु राजाओ के संघ को पराजित किया था और इस प्रकार वह ऋग्वैदिक भारत का चक्रवर्ती शासक बन गया था।

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य वेदों तथा वैदिक साहित्यों की रचना लगभग 1000–1500 ईसा पूर्व के बीच हुई। बाद के दोनों वेदों–सामवेद और यजुर्वेद में किसी भी विशिष्ट ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं मिलता। सामवेद गेय प्रधान वेद है जिसमें उन ऋचाओ का संग्रह है जिन्हें पुरोहित (उद्गाता)यज्ञ के समय गाते थे। यजुर्वेद कर्मकाण्ड से जुड़े तथ्यों को विस्तार से प्रस्तुत करता है जिसमें उत्तर वैदिक काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक जीवन की सूचना प्राप्त की जा सकती है। 20 मंडलों में विभाजित अथर्ववेद सबसे बाद का वेद माना जाता है जिसमें सूक्तों के अतिरिक्त लोकप्रिय व्यवहारों को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

इस प्रकार चारों वेदों से वैदिक कालीन सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य मूलतः धार्मिक साहित्य है जिसमें कहीं–कहीं कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को ढूढा जा सकता है। वेदों के बाद

ब्राह्मण ग्रन्थ आते है जो वेद से जुडी संहिताओ की व्याख्या है। इसमें यज्ञ से जुड़े कर्मकाण्डों की विस्तृत विवेचना की गई है। ब्राह्मण ग्रंथों का ही एक भाग आरण्यक है जिनकी रचना अरण्यों (वनों)में निवास करने वाले सन्यासियों के मार्गदर्शन के लिए की गई थी।

आरण्यक में यज्ञ से सम्बंधित कर्मकांडों की दार्शनिक और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है–ऐतरेय, तैतिरीय, और मैत्रायणी आरण्यक का उल्लेख प्रमुख आरण्यकों में किया जाता है।

उपनिषदों की संख्या 108 है और उसमे से 13 को मूल श्रेणी में रखा जाता है। वस्तुतः उपनिषदों में प्राचीन भारत का दार्शनिक ज्ञान सुरक्षित है, इसमें ब्रह्माण्ड, जीव, आत्मा, ब्रह्म तथा यज्ञ से जुड़े दार्शनिक विचारों की व्याख्या की गई है। उपनिषदों से राजनीतिक इतिहास की भी जानकारी प्राप्त होती है।

वेदांग, वेदों से जुड़ी सहायक रचनायें है जिनकी रचना वेदों की उचित समझ के लिए की गई। इनमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष प्रमुख है। वेदांगों का रचना काल लगभग 600–200 ईसा पूर्व स्वीकार किया जाता है ।

1.2.2 संस्कृत साहित्य

1.2.2.1 महाकव्य

संस्कृत के दो महान महाकाव्यों रामायण तथा महाभारत को भी ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। वे परंपरागत इतिहास की आख्यान की श्रेणी में आते हैं। यह स्वीकार किया जाता है कि महाभारत को 400 ईसा पूर्व से 400 ईस्वी के बीच रचा गया और रामायण की रचना पाँचवी/ चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर तीसरी शताब्दी के बीच की गई।

यह माना जाता है कि इनमें लगातार प्रक्षेप बने हैं। दोनों महाकाव्यों में हर कुछ समय बाद भाग जोड़े गए, इसलिए इतिहास के स्रोत के रूप में इनका उपयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए और उनमें अंतर्निहित कालानुक्रमिक परतों को ध्यान रखना चाहिए।

इतिहासकारों का बड़ा वर्ग इस बात से सहमत है कि महाभारत से जुडी घटनाएँ और चरित्र रामायण की तुलना में अधिक प्राचीन हैं। इसकी मुख्य कथा जो कौरव और पांडवो का संघर्ष है उसे उत्तरवैदिक काल से सम्बंधित माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त महाभारत में वर्णित नारियों के चरित्र भारत के प्रारम्भिक काल का चित्रण करते हैं जब नारी की स्थिति पुरुष की तुलना में उतनी अधीनस्थ नहीं थी। जबकि रामायण में नारी पर अपेक्षाकृत पुरुष का

अधिक नियंत्रण प्रतिबिंबित होता है जो बाद के भारतीय समाज का चित्रण हो सकता है।

दोनों महाकाव्यों में वर्णित कुछ स्थलों की खुदाई भी की गई है। महाभारत से जुड़े हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, पानीपत, बागपत, मथुरा और बैराट जैसे स्थानों के उत्खनन से चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति से जुड़े प्रमाण मिले हैं। रामायण से जुड़े स्थल अयोध्या की खुदाई से उत्तरी काली मार्जित मृदभांड की अवधि तक बस्तियों का पता चला है। दोनों महाकाव्यों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक सम्प्रदायों की जानकारी प्राप्त होती है जो तत्कालीन परिस्थितियों को समझने के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

1.2.2.2 धर्मशास्त्र

संस्कृत में उपलब्ध एक विशेष वर्ग के ग्रन्थों को धर्मशास्त्र की संज्ञा दी जाती है जिनमें–धर्म की शास्त्रीय व्यवस्था की गई है । इनमें धर्मसूत्र, स्मृति, भाष्य, टीका, निबन्ध आदि को सम्मिलित किया गया है। इनमें से धर्मसूत्र और स्मृति का काल कमशः ईसा पूर्व 500–200 तथा ईसा पूर्व 200–900 ईस्वी के लगभग निर्धारित किया जाता है। इसी प्रकार भाष्य, टीका, और निबन्ध का रचना काल नौवीं से उन्निसवीं शताब्दियों के बीच का है। धर्मशास्त्र के इन ग्रन्थों में भाषा और शैली की दृष्टि से अत्यधिक समानता देखने को मिलती है। इसलिए पृथक–पृथक शास्त्रों के लिए तिथि सुनिश्चित करना कठिन है।

आपस्तम्भ, बौधायन तथा गौतम के धर्मसूत्रों में चारों वर्णों के अलग अलग कर्तव्यों का निर्देश मिलता है। स्मृतियों में मनु स्मृति, नारद स्मृति, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, कात्यायन इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनमें विभिन्न वर्णों के साथ साथ राजाओं और उनके अधिकारियों के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। स्मृतियों में विवाह, संपत्ति के लिए नियम बताये गए हैं। इसमें चोरी, हमले, हत्या, व्यभिचार आदि के लिए व्यक्तियों को दण्डित करने का विधान है। कालांतर में इन ग्रंथों पर लिखी गई टीकाओं और भाष्यों से भी समाज के विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है ।

1.2.2.3 पुराण

पुराण व्यास द्वारा लिखित ग्रन्थों की वह श्रेणी है जिसमें भारतीय ऐतिहासिक कथाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। 18 महापुराण तथा उससे भी अधिक उप पुराण उपलब्ध हैं। पुराणों का उद्भव कुछ हद तक वेदों के काल में हुआ होगा, किन्तु इनका संकलन चौथी–पाँचवीं शताब्दी अथवा इससे भी कुछ काल बाद तक चलता रहा। पुराणों की विश्वव्यापी सामग्री इस बात को इंगित करती है कि ये

विभिन्न विषयों को शामिल करते हैं और विभिन्न हाथों द्वारा रचित हैं।

अमरकोश में पुराणों के पाँच विषय बताये गये हैं—संसार की सृष्टि (सर्ग), पुनःसृष्टि (प्रतिसर्ग), विभिन्न मनु का युग (मन्वतर), देवताओं और ऋषियों की वंशावली (वंश), तथा राजवंशों की सूची (वंशानुचरित)। बाद में तीर्थों (पवित्रस्थान) और उनके महात्म्य (धार्मिक महत्व) का वर्णन भी पुराण साहित्य में शामिल कर लिया गया।

पुराणों में वर्णित काल से जुड़ी अवधारणा भी महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार कृत, त्रेता, द्वापर और कलि चार युग हैं और इसमें से प्रत्येक की अवधि सहस्त्रादिक वर्षों की है। एक महायुग में चारों युग व्यतीत होते हैं तथा 1000 महायुगों का एक कल्प होता है। प्रत्येक कल्प 14 मनवन्तरों में विभाजित है, जिसमें से प्रत्येक, एक के प्रतिनिधि मनु हैं। प्रत्येक युग के अन्त में सृष्टि का विनाश हो जाता है तथा दूसरे युग में पुनः सृष्टि की रचना होती है। काल के इस क्रम का चक्रवत विनाश और अभ्युदय होता है।

पुराणों में प्राचीन भारत के इतिहास के पुर्ननिर्माण के लिए उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, हरिवंश, मत्स्य और विष्णु पुराणों में प्राचीन राजनीतिक इतिहास के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध हैं। इनमें हर्यंक, शैशुनाग, नंद, मौर्य, शंगु, कण्व और आन्ध्र (सातवाहन) जैसे ऐतिहासिक वंशों की चर्चा है। पुराणों में कुछ नाग अंतसर्ग लगाने वाले शासकों का उल्लेख किया गया है जो पहली शताब्दी के दौरान उत्तर और मध्य भारत मे राज करते थे। दिलचस्प बात यह है कि किसी भी अन्य स्रोत में इन राजाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। गुप्त राजाओं के साथ पुराणों की वंशवलियाँ समाप्त होती है जो यह दर्शाता है कि लगभग चौथी—छठी शताब्दी ईस्वी में पुराण लिपिबद्ध किए गए। लेकिन कुछ ऐसे पुराण भी है जो बाद में रचे गए जैसे भागवत पुराण (10वीं शताब्दी में) और स्कन्दपुराण (लगभग 14वीं शताब्दी)। इनमें प्रायः 16वीं शताब्दी तक के राजवंशों की चर्चा की गई है।

पुराण पर्वत, नदियों, स्थान और ऐतिहासिक भूगोल के पुर्ननिर्माण के स्त्रोत के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त इनमें शिव, विष्णु, और शक्ति से जुड़े भक्ति पर आधारित सम्प्रदायों के विकास की जानकारी भी उपलब्ध है। देवासुर संग्राम, देवताओं और ऋषियों से जुड़ी पौराणिक कथाएं भी इनमें मिलति हैं। विद्वान इनकी व्याख्या उस काल में चल रही संस्कृतिकरण की प्रक्रिया से जोड़कर करते हैं। जैसे विभिन्न पंथ प्रमुख, धार्मिक परम्पराओं के भीतर किस प्रकार एकीकृत हो गए और गणपति, कृष्ण, ब्रह्मा, कार्तिकेय आदि जैसे छोटे पंथ कैसे उभरकर सामने आ गए। किस प्रकार इन पंथों को ब्राह्मणों ने अपने

सामाजिक और धार्मिक मूल्यों के प्रसार हेतु एक साधन के रूप में प्रयोग किया।

1.2.3 जीवनी, नाटक एवं काव्यग्रन्थ

प्राचीन भारत नाटक और कविता की कृतियों का भण्डार है। इतिहासकारों द्वारा इन ग्रन्थों का उपयोग समकालीन सांस्कृतिक इतिहास के स्रोत के रूप में किया जाता रहा है। सबसे पहले संस्कृत के कवियों और नाटककारों में अश्वघोष और भास विशेष स्थान रखते हैं। बुद्धचरित, सारिपुत्रप्रकरण और सौन्दरनंद अश्वघोष द्वारा रचित ग्रन्थ हैं। भास एक नाटककार थे जिन्होंने पंचरात्र, दूतवाक्य, बालचरित और स्वप्न–वासवदत्ता की रचना की। काव्य रचनाकारों में कालिदास की रचनाएं सर्वोष्कृष्ट मानी जाती हैं। इन्होंने लगभग चौथी–पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में अभिज्ञानशाकुन्तलम् मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय जैसे अभूतपूर्व नाटक और रघुवंश, कुमार सम्भव तथा मेघदूत जैसे उत्कृष्ट काव्यों की रचना की। कालिदास के ग्रन्थ गुप्तकाल के सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि प्रदान करते हैं। मालविकाग्निमित्र पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल की घटनाओं पर प्रकाश डालती है।

इसके पश्चात् ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है। सातवी–आठवीं सदी में लिखी विशाखदत्त की कृति मुद्राराक्षस चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा नंदों के मंत्री राक्षस पर विजय प्राप्त करने की घटना का वर्णन करती है। तत्कालीन समाज और संस्कृति का ज्ञान भी इसके अध्ययन से हो जाता है। विशाखदत्त के एक अन्य नाटक देवीचंन्द्रगुप्तम् से गुप्त शासक रामगुप्त के शासनकाल की घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। एक अन्य कवि शूद्रक ने भी ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटकों की रचना की।

प्रसिद्ध राजाओं की जीवनियाँ साहित्यिक स्रोतो में महत्वपूर्ण हैं। इन्हें दरबारी–कवियों और लेखकों द्वारा अपने शाही संरक्षकों की प्रशंसा में लिखा गया। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित भारत की सबसे प्राचीन संरक्षित जीवनी है जिससे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। बिल्हण के विक्रमांकदेव चरित से चालुक्य शासक विक्रमादित्य चतुर्थ के विषय में सूचना प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जयसिंह की कुमारपालचरित, पद्मगुप्त की नवसंहसांकचरित कुछ अन्य जीवनी से सम्बन्धित रचनाएं हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 12वीं सदी के कल्हण द्वारा रचित राजतंरगिणी को आधुनिक इतिहासकारों ने प्राचीन भारत के इतिहास लेखन का सर्वोकृष्ट ग्रन्थ स्वीकार किया है। प्रारम्भिक किवदंतियों, रीतिरिवाजों और काश्मीर के इतिहास के स्त्रोत के रूप में कल्हण की यह कृति बहुत मूल्यवान है।

1.2.4 संगम साहित्य

दक्षिण भारत का प्राचीनतम साहित्य प्रारम्भिक तमिल भाषा की रचनाओं के रूप में उपलब्ध है जिन्हें संगम साहित्य के रूप में जानते हैं। ये ग्रन्थ चौथी सदी ईसा पूर्व से दूसरी सदी के बीच संकलित किए गए। यह उन कवियों का संकलन है, जिन्होंने तीन से चार शताब्दियों की अवधि में छोटी और लंबी कविताओं की रचना की, जो प्रमुखों और राजाओं द्वारा संरक्षित थी । इनका संकलन सम्मेलनों में हुआ जिसे संगम कहा जाता था और इसमें रचित साहित्य को संगम साहित्य। सातवीं सदी के बाद की एक रचना में तीन संगम (विद्वत्जनों की संगति) का वर्णन है। इनमें से प्रथम व तृतीय का आयोजन मदुरई में, और दूसरा कपाटपुरम में सम्पन्न हुआ था। हालांकि इन सम्मेलनों की ऐतिहासिकता के बार में कुछ संदेह है। इसलिये, कुछ विद्वान संगम साहित्य (उपिन्दर सिंह, 2008) की अपेक्षा इनको 'क्लासीकल तमिल साहित्य' की संज्ञा देना अधिक तर्कसंगत मानते हैं। एत्तुतोकई (पद्यों का आठ संगह), पत्तुपाट्टु (पद्यों का दस संग्रह), तोलकाप्पियम (तमिल व्याकरण का ग्रन्थ) का उल्लेख प्रमुख संगम साहित्यों में किया जाता है। इन ग्रन्थों से सुदूर दक्षिण में शासन करने वाले चोल एवं पल्लव राजाओं के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है।

1.2.5 कौटिल्य का अर्थशास्त्र

साहित्यिक स्रोतो की श्रेणी में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' भी एक लोकप्रिय रचना है। परम्परागत रूप से मान्यता है कि अर्थशास्त्र की रचना, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में कौटिल्य ने की थी, जिसे विष्णुगुप्त या चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री थे और उन्होंने नंदों को अपदस्थ करने में चन्द्रगुप्त मौर्य की मदद की थी। अर्थशास्त्र,समाजशास्त्र पर लिखित एक विषद् रचना है। 15 अधिकरण एवं 180 प्रकरणों में विभाजित यह पुस्तक एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य, इसके साम्राज्य तथा पाटलिपुत्र की कहीं भी चर्चा नहीं की गई है बल्कि साम्राज्य के प्रशासन तंत्र उसकी संरचना, अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों तथा अन्य मिश्रित विषयों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

1.2.6 बौद्ध एवं जैन साहित्य

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के सन्दर्भ में बौद्ध एवं जैन साहित्य एक महत्वपूर्ण श्रेणी है। इन ग्रन्थों की भाषा क्रमशः पाली एवं प्राकृत संस्कृत का ही एक रूप था। जिसमें प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों की रचना की गई। अधिकांश प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थ पाली भाषा में लिखे गए।

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् रचित पाली ग्रन्थ 'त्रिपिटक' बौद्धग्रन्थों में सबसे महत्वपूर्ण हैं। ये ग्रन्थ बुद्ध और 16 महाजनपदों के समय के भारत के बारे में हमें बताते हैं। वर्तमान में त्रिपिटक के पाली, चीनी, तिब्बती और जापानी संस्करण उपलब्ध हैं। उनके तीन खण्ड है–सुत्त, विनय और अभिधम्म। बौद्ध सन्दर्भ में 'सुत्त' उन धार्मिक सिद्धान्तों को कहते हैं, जिन्हें बुद्ध ने उपदेश के रूप में कहा था। इस प्रकार सुत्त पिटक में बुद्ध के धार्मिक उपदेशों को संवाद के रूप में संकलित किया गया है। विनयपटिक में संघ सम्बन्धी नियम तथा आचार की शिक्षाओं का संगह किया गया है। इसमें पतिमोख भी जुड़ा हुआ है, जिसमें संघ के अनुशासन को तोड़ने पर किए जाने वाले प्रायश्चितों की सूची दी गई है। अभिधम्मपटिक में दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें सूचियाँ, सारांश और प्रश्न शामिल हैं। सुत्त पिटक के पाँच निकाय शामिल हैं जिनमें से खुद्दक निकाय प्रवचनों का एक संग्रह है जिसमें थेरगाथा (बौद्ध भिक्षुओं के गीत) और थेरीगाथा (बौद्ध भिक्षुणियों के गीत) और जातक कथाएं शामिल है जो एक इतिहासकार के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

जातक ग्रन्थों में बुद्ध के पुर्व जन्म की कहानी है। कुछ जातक ग्रन्थों से बुद्ध के समय की राजनीतिक अवस्था का परिचय भी मिलता है। इसके साथ–साथ समाज और सभ्यता के विभिन्न पहलुओं के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो जाती है। जातक कथाओं का अंकन भरहुत, सांची, नागार्जुनकोंडा और अमरावती की मूर्तिकला में भी मिलता है। इस प्रकार जातक कथाएं बौद्ध धर्म के इतिहास की एक झलक प्रदान करती है।

दीपवंश और महावंश नामक पाली ग्रन्थों से मौर्यकालीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। धर्म वैधानिक बौद्ध साहित्य में मिलिन्दपन्ह (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व–प्रथम शताब्दी ईस्वी) महत्वपूर्ण है जिससे हिन्द–यवन शासक मेनाण्डर के विषय में सूचना मिलती है। बौद्ध साहित्यों के समान जैन साहित्य भी प्राचीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों के इतिहास के पुर्ननिर्माण में सहायक हैं।

जैन साहित्यों को सामूहिक रूप से सिद्धान्त अथवा आगम की संज्ञा दी जाती है। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों को अर्धमागधी भाषा में संकलित किया गया। दिगम्बरों के साहित्य शौरसेनी में है जबकि श्वेतांबर साहित्य अर्धमागधी की दो उपभाषाओं में है। महावीर द्वारा शिष्यों को दिये गए उपदेश 14 पूर्वों के रूप में संकलित किए गए हैं। श्वेताम्बरों की मान्यता है कि स्थूल भद्र द्वारा पाटलिपुत्र में

आयोजित जैन संगति में 12 अंगों में जैन साहित्य का पुर्ननिर्माण किया गया। इसके पश्चात् पाँचवीं–छठीं सदी में आयोजित संगति में सम्पूर्ण जैन साहित्य को लिपिबद्ध किया गया।

जैन धर्म की श्वेताम्बर शाखा द्वारा स्वीकार किए गए धार्मिक सिद्धांत 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 चेदसूत्र, 2 सूत्र और 4 मूलसूत्र में संकलित हैं। इन ग्रन्थों से आचार संहिता, विभिन्न किवदंतियों, जैन सिद्धान्तों और तत्व मीमांसा के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त होता है। दिगम्बरों की मान्यता है कि अधिकांश मूल पर्व खो गए हैं। उनके द्वारा भी अंगों को धर्म के मौलिक स्त्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से जैन धर्म के इतिहास और धार्मिक सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक सूचनाओं के सन्दर्भ में परिशिष्टपर्वन्, भद्रबाहुचरित, आवश्यकसूत्र, आचरांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कालिकापुरण आदि जैन ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भद्रबाहु द्वारा रचित कल्पसूत्र (लगभग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) से जैन धर्म के प्रारम्भिक इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। परिशिष्टपर्वन् और भद्रबाहुचरित से चन्द्रगुप्तमौर्य के जीवन की घटनाओं की सूचना मिलती है।

1.3 पुरातात्विक स्रोत

भौतिक अवशेषों द्वारा अतीत के अध्ययन को पुरातत्व कहते हैं। इस दृष्टि से पुरातत्व का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मंदिरों के भग्नावेश से लेकर दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाले मृदभाण्ड के ठीकरों तक का महत्व पुरातत्व में है। मानव निर्मित उपकरण, अस्थि, अवशेष, घर के अवशेष, मुद्रा, सिक्के, मूर्तियाँ, अभिलेख, अनाज, मिट्टी के बर्तन आदि अवशेष हैं जो पुरातत्व विज्ञान की विषयवस्तु के रूप में हमारे सामने है।

भौतिक अवशेषों से मानव सभ्यता को समझने में बहुत सहायता मिलती है। यह पुरातात्विक साक्ष्य ही है जिसके आधार पर प्रागैतिहासिक काल का पुर्ननिर्माण किया गया है। साथ ही साथ ऐतिहासिक काल के लेखन में भी पुरातत्व का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उदाहरण के लिए अशोक का इतिहास उसके अभिलेखों पर आधारित है इसी प्रकार इण्डोग्रीक शासकों के इतिहास को सिक्कों के आधार पर ही पूरी तरह समझा गया है।

भारतीय पुरातत्व विभाग को अस्तित्व में आए कुछ वर्ष ही हुए हैं। प्राचीन भारतीय वस्तुओं के अध्ययन के कार्य को 'सर विलियम जोंस' ने शुरू किया था। 1784 में सर विलियम जोंस ने एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल की स्थापना की और विभिन्न शिलालेखों को भारी संख्या में एकत्रित किया किन्तु तब तक लिपि ज्ञान न होने के कारण उन्हें पढ़ा न जा सका। 1837 में जेम्स प्रिंसेप द्वारा ब्राह्मी लिपि के अनुसंधान के पश्चात् पढ़ने का कार्य सुगम बन गया

परिणामस्वरूप विद्वानों ने इस दिशा में भारी कार्य किया। इस सन्दर्भ में कनिंघम, मार्शल जैसे विद्वानों का महत्वपूर्ण सहयोग रहा। कनिंघम ने व्यक्तिगत अनुसंधानो के आधार पर प्राचीन भारत की भूगोल सम्बन्धी विस्तृत एवं उपयोगी जानकारी प्रस्तुत की है। बहुत से सिक्कों को इन्होंने एकत्रित किया और गया,

भरहुत, साँची, सारनाथ जैसे स्थलों की खुदाई का कार्य भी आरम्भ करवाया। आगे चलकर लार्ड कर्जन ने भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना की इसी विभाग के नेतृत्व में आज भी भारत के विभिन्न भागों में पुराविधा सम्बन्धी कार्य किये जा रहे हैं। इतिहास की पुरातत्व शाखा मे उत्खनन और अन्वेषण जैसे पुरातात्विक तरीके भी महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में पुरातात्विक स्थलों का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण के द्वारा अध्ययन किया जाता है और कभी–कभी इनकी खुदाई की जाती है। खुदाई अथवा उत्खनन सामान्यतः दो प्रकार से किया जाता है (1) क्षैतिज उत्खनन (2) लम्बवत् उत्खनन। क्षैतिज उत्खनन के अर्न्तगत बड़े क्षेत्रों में प्रत्येक स्तर पर प्राप्त अवशेषों का अध्ययन किया जाता है जबकि लम्बवत् उत्खनन में सीमित क्षेत्र का ऊपर से नीचे तक उत्खनन किया जाता है तथा सावधानी पूर्वक अभिलेख, मानचित्र लेखन, छविचित्र, अंकन और हस्त कृतियों के संरक्षण की सहायता से उत्खनन कार्य सम्पन्न किया जाता है, और फिर उत्खनन की रिपोर्ट तैयार कर प्रकाशित की जाती है।

इस प्रकार पुरातात्विक साक्ष्य इतिहास अध्ययन के अत्यंत प्रमाणिक साधन हैं। जहाँ साहित्यिक साक्ष्य मौन हैं वहाँ इतिहासकार की सहायता पुरातात्विक साक्ष्य करते हैं। प्रमुख पुरातात्विक साक्ष्यों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

1.1.3.1 सिक्के

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुर्ननिर्माण के सन्दर्भ में सिक्कों का महत्वपूर्ण स्थान है। मुद्रा भण्डार के रूप मे प्राप्त सिक्के भारत तथा विश्व के विभिन्न संग्रहालयों में जमा किए गए हैं। प्राचीन सिक्के ज्यादातर आकस्मिक रूप से प्राप्त होते है जो इतिहास को समझने में पर्याप्त सहायता देते हैं।

सिक्का एक धातु (सोना, चाँदी और ताँबा) मुद्रा है जिसका एक निश्चित आकार और वजन होता है। सिक्कों के अध्ययन को मुद्राशास्त्र कहा जाता है। कभी–कभी प्राचीन सिक्कों पर जारी करने वाले प्राधिकरण की मुहर भी मिल जाती है। प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं, मुख्य अभिलेख वाले हिस्से को चित तथा इसके पृष्ठ तल को पट्ट कहते हैं। प्राचीन मुद्राओं के माध्यम से राजाओं के शासन का परिचय प्राप्त होता है कि किस राजा ने कब–कब भारत के किन–किन भाग में राज्य किया। कुछ राजाओं का ज्ञान तो हमारा मात्र उनके

सिक्कों पर ही आधारित है, अन्यथा वे राजा अपनी मुद्राओं के अभाव में भारतीय इतिहास में अज्ञात ही रह जाते। मुद्राएँ कालक्रम के निर्धारण में ही सहायता करती हैं। मुद्राओं के विभिन्न प्राप्ति स्थानों से सम्बन्धित राजा के राज्य विस्तार और उस काल की आर्थिक दशा का ज्ञान होता है। प्राचीन भारतीय विदेशी व्यापार की सूचना भी मुद्राओं से मिल जाती है। जैसे भारत में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त रोमन सिक्कें भारत एवं रोम के मध्य व्यापार का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इससे भारतीयों की आर्थिक स्थिति और उनके समुद्र पार जाने का पता चलता है। कभी–कभी मुद्राओं के अध्ययन से हमें सम्राटों के धर्म तथा उनके व्यक्तिगत गुणों का ज्ञान प्राप्त होता है। गुप्त वंश के सिक्कों से पता चलता है कि हिन्दू धर्म के प्रति उनमें कितना उत्साह था। इस प्रकार सिक्कों के माध्यम से प्राचीन भारत के इतिहास की प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। सिक्कों के अभिलेखों से भाषा और लिपि का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

भारत के प्राचीनतम् सिक्कें आहत सिक्के है जिनका अस्तित्व छठी शताब्दी ईसा पूर्व से हमें देखने को मिलता है। ये ज्यादातर चाँदी के और कभी–कभी ताँबा धातु का उपयोग कर बनाए जाते थे। आहत मुद्राओं पर किसी भी प्रकार का लेख नहीं मिलता। इन पर केवल प्रतीकों का अंकन किया जाता था। ये सिक्के पूरे देश में तक्षशिला से मगध तक मैसूर या उससे भी आगे दक्षिण में पाए गए है।

उत्तर भारत में प्रचलित आहत सिक्कों को इनकी कुछ विशेषताओं (वजन, संख्या और प्रचलन क्षेत्र) के आधार पर चार प्रमुख श्रृंखलाओं में बाँटा जाता है–

(1) तक्षशिला गांधार (इसका प्रचलन क्षेत्र उत्तर पश्चिम भारत था)

(2) कोसल (मध्यगंगा मैदान, वजनदार, मानक, अत्यधिक आहत चिन्ह)

(3) अवंति (पश्चिम भारत, कम वजनदार, एक आहत चिन्ह)

(4) मगध (मगध क्षेत्र, कम वजनदार, मानक, बहुत आहत चिन्ह)।

कालान्तर में मगध साम्राज्य के विस्तार के साथ मगध श्रृंखला के सिक्कों ने अन्य चार श्रृंखलाओं के सिक्कों को प्रतिस्थापित कर दिया। यद्यपि, आहत सिक्के लेख रहित हैं, किन्तु संभवतः सभी सिक्के, किसी ना किसी राजसत्ता द्वारा निर्गत किए गए हैं। कालान्तर में श्रेणियों एवं निगमों द्वारा भी आहत सिक्के निर्गत किए गए।

आहत सिक्कों के पश्चात् भारतीय सिक्कों के इतिहास में दूसरी–पहली शताब्दी ईसा पूर्व में तब महत्वपूर्ण मोड़ आया जब से इण्डोग्रीक शासकों द्वारा

निर्गत सिक्कों का प्रचलन शुरू हुआ। सर्वप्रथम सिक्कों पर लेख लिखवाने का कार्य इन्हीं शासकों द्वारा शुरू किया गया। कुछ मुद्राओं पर तिथियाँ भी अंकित है। जिससे कालक्रम निर्धारण में सहायता मिलती है। इन सिक्कों पर प्रेषक राजा के नाम और तस्वीर का चित्रण मिलता है। केवल इन सिक्कों के माध्यम से हम 40 से अधिक इण्डो–ग्रीक शासकों के बारे में जानते हैं जिन्होंने उत्तर पश्चिम भारत में शासन किया था। इसके साथ–साथ इन सिक्कों से हम कई ऐसे शक–पहलव राजाओं के बारे में भी जानते हैं जिनके बारे में हमें किसी भी अन्य ऐतिहासिक स्त्रोतों से कोई जानकारी नहीं मिलती।

कुषाण शासकों द्वारा सर्वप्रथम भारतीय उपमहाद्वीप में स्वर्ण सिक्के निर्गत किये गए। हालांकि चाँदी और ताँबा धातु का चयन भी सिक्कों के लिए किया गया। उनके सिक्के उत्तर भारत के अधिकांश हिस्सों में वर्तमान बिहार तक पाए जाते हैं। सिक्कों की बहुलता इस काल के समृद्ध वाणिज्य को दर्शाती है । कुषाण सिक्कों पर भारतीय प्रभाव शुरू से ही दिखाई देता है। कुषाण राजा विमकडफिसेस के सिक्के पर एक बैल के साथ खड़े शिव की आकृति मिलती है। तथा उस पर उत्कीर्ण लेख उस राजा को महेश्वर अर्थात् शिव भक्त बताता है। इसी प्रकार कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव आदि सभी राजाओं के सिक्कों पर भारतीय देवी–देवताओं का अंकन मिलता है। ग्रीक देवताओं का अंकन भी इन शासकों के सिक्कों पर प्राप्त होता है। यदि देखा जाए तो सिक्कों के प्रचलन ने हमें सत्तारूढ़ राजवंशों के इतिहास का पुर्ननिर्माण करने में सक्षम बनाया है। सिक्कें राजनीतिक संगठन पर बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं उदाहरणार्थ यौधेय और मालव गणराज्यों के सिक्के उनकी विरासत को लेकर आगे आते हैं जो हमारा परिचय उनके गैर राजतंत्रीय स्वरूप से कराते हैं। दक्कन में सातवाहन शासकों द्वारा जारी सिक्कों पर जहाज का अंकन समृद्ध समुद्री व्यापार की गवाही देता है। मौर्येत्तर कालीन सिक्कें सीसा, पोटीन एवं तांबा, कांस्य, चांदी और सोने के बने होते थे । इन्हें बड़ी संख्या में जारी किया गया जिससे व्यापार में हुई वृद्धि का संकेत मिलता है।

गुप्त शासकों द्वारा जारी की गई मुद्राएं भी भारतीय राजनीतिक इतिहास की जानकारी का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। गुप्त शासकों ने अपने सिक्कों का पूर्णरूप से भारतीयकरण किया। गुप्त सम्राटों द्वारा संस्कृत अभिलेख वाली उत्कृष्ट स्वर्ण मुद्राएँ निर्गत की गई। 'दीनार' नाम से प्रसिद्ध इन सिक्कों को सम्पूर्ण उत्तर भारत से प्राप्त किया गया है। इन सिक्कों पर राजा की धार्मिक आस्था के अनुरूप प्रतीक चिन्हों के साथ–साथ राजाओं को शेर या गैंडे का शिकार करते हुए, संगीत वाद्य बजाने या अश्वमेघ यज्ञ करने जैसी गतिविधियों को भी उत्कीर्ण किया गया है।

पूर्वमध्यकाल की मुद्राव्यवस्था विद्वानों के बीच विवाद का विषय है। पूर्वमध्यकाल के प्रथम चरण में सिक्कों का अभाव सा है। इसी आधार पर कुछ विद्वान इसे व्यापार वाणिज्य की गिरावट का संकेत मानते हैं जबकि दूसरे चरण में सिक्कों के मिलने को व्यापार वाणिज्य के पुनरूत्थान का सूचक स्वीकार किया जाता है।

1.3.2 शिलालेख

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुर्ननिर्माण में अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय पुरातात्विक स्त्रोत है। इसके अध्ययन को पुरालेखशास्त्र या एपिग्राफी कहा जाता है। अभिलेखों के साथ स्थायीत्व की अवधारणा जुड़ी हुई है, क्योंकि पाण्डुलिपियों की अपेक्षा ये अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं और इनमें हुए परिवर्तनों को आसानी से चिन्हित किया जा सकता है।

शिलालेख मुहरों, शिलाओं, स्तम्भों ताम्रपत्रों, दीवारों, मुद्राओं और प्रतिमाओं पर खुदे हैं जिनपर अलग–अलग लिपियों में लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। शिलालेखों पर अंकित लिपि भी इतिहासकारों की कई प्रकार से सहायता करती है। भारतीय उपमहाद्वीप की अगर बात करें तो अशोक के अभिलेखों की लिपि सर्वप्रथम पढ़ी गई। । जबकि इस उपमहाद्वीप के प्राचीनतम् शिलालेखों पर अंकित हड्प्पा लिपि (लगभग 2500 ईसा पूर्व) अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। ब्राह्मी, खरोष्ठी, यूनानी और अरमाइक लिपि में खुदे अशोक के अभिलेखों से उसके साम्राज्य की सीमा, उसके धम्म, शासन नीति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

अशोक के बाद भी अभिलेख उत्कीर्ण कराए गए। कालान्तर में शासकों की अनेक प्रशास्तियाँ मिलने लगती है जो कवियों तथा लेखकों द्वारा अपने संरक्षकों की प्रंशसा में लिखी गई हैं। कलिंग (ओडिशा) के राजा खारवेल का हाथी गुम्फा शिलालेख और गुप्त शासक समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भलेख, शकक्षत्रप रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति इसी श्रेणी में रखा जाती है। कुछ शिलालेखों में राजा और उसके पूर्वजों के सम्बन्ध में बहुत कुछ मिलता है। क्षहरत, शक–क्षत्रप और कुषाणों के शिलालेख दो या तीन पीढ़ियों के नाम दर्शाते हैं चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय की एहोल प्रशस्ती में,स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख, तथा अधिकांश गुप्त शासक अपने अभिलेखों में अपनी वंशवली देते है। कुछ शिलालेख भारत में धार्मिक विकास का विवरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे हेलियोडोरस का बेसनगर (बिदिशा) से प्राप्त गरूड़ स्तम्भ लेख द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में मध्य भारत में भागवत् धर्म विकसित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

कुछ शिलालेख भूमि अनुदान की सूचना देते हैं जिसमें मंन्दिरों, मठों, विद्यालयों, ब्राह्मणों, को भूमि तथा गाँव का दान देना अंकित है। शिलालेखों से स्थाई निधि के रूप में दान का भी विवरण प्राप्त होता है। इस धन से गरीबों और ब्राह्मणों का निर्वाह होता था और मंदिरों में दीपक जलाए जाते थे। इस तरह विभिन्न प्रकार के शिलालेखों के अलावा, मूर्तियों, ताम्रपत्रों और मुहरों पर भी लेखन कार्य मिलते हैं जिससे इतिहास लेखन की उपयोगी सामग्रियाँ प्राप्त हो जाती है। मध्यप्रदेश के एरण से प्राप्त वाराह प्रतिमा पर हूणराज तोरमाण का लेख उसके बारे में ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करता है। सोहगौरा के तीसरी शती ईसा पूर्व का ताम्रलेख प्रशासनिक शिलालेख के रूप में देखा जा सकता है। हर्ष के बाँस खेड़ा के ताम्र–पत्र अभिलेख से भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है।

1.3.3 स्मारक

मुद्राशास्त्र और पुरालेखशास्त्र के स्त्रोतों के अतिरिक्त भी कई पुरातन अवशेष हैं जो हमारे अतीत के बारे में विश्वसनीय जानकारी प्रदान करते हैं। विभिन्न स्थलों की खुदाई से ऐसे नवीन तथ्य प्रकाश में आए जो पहले अन्धकार में थे। सिन्धु सभ्यता के स्थलों, तक्षशिला, कौशाम्बी, नालन्दा, सारनाथ इत्यादि की खुदाई ने प्राचीन भारत के इतिहास का रूप ही बदल दिया। इसी प्रकार गुप्तकाल से लेकर वर्तमान काल तक देश भर में मंदिरों एवं मूर्तियों के अवशेष प्राप्त होते रहें हैं। ये अवशेष मंदिर स्थापत्य की विकास यात्रा एवं भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों से हमारा परिचय कराते हैं। अजन्ता एवं एलोरा के अवशेषों में कई चैत्य एवं विहार मिले हैं, जो प्राचीन धार्मिक जीवन की महत्वपूर्ण सूचना देते हैं। इसके साथ–साथ एलोरा का कैलाश मंदिर, मामल्लपुरम के रथ–मंदिर, तंजौर का राजराजेश्वर मंदिर, खजुराहों तथा उड़ीसा से प्राप्त बहुसंख्यक मंदिर हिन्दू वास्तु एवं स्थापत्य के उत्कृष्ट स्वरूप तथा क्षेत्रिय शैलियों के प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं।

पुरातात्विक खुदाइयों में भारतीय सीमा के बाहर दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक द्वीपों से हिन्दू संस्कृति से सम्बन्धित स्मारक प्राप्त हुए हैं इसमें जावा के बोरोबुदुर स्तूप तथा कम्बोडिया के अंकोरवाट मंदिर का नाम महत्वपूर्ण है। जो इन द्वीपों में भारतीय संस्कृति के पर्याप्त रूप से विकसित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

1.4 विदेशी विवरण

भारतीय उपमहाद्वीप कभी भी अन्य भौगोलिक क्षेत्रों से पूर्णरूप से पृथक

नहीं रहा। प्रारम्भिक काल से ही भारतीय व्यवसायी, यात्री, धर्मप्रवर्तक, सैनिक तथा वस्तुओं और विचारों का आदान प्रदान विश्व के अन्य क्षेत्रों से होता रहा। इसलिए स्वाभाविक है कि विदेशी रचनाओं में भारत का उल्लेख किया जाता था। यदि इन ग्रन्थों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो इनमें बहुत अधिक ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। इन रचनाओं से पता चलता है कि दूसरे भू–भाग के लोगों ने भारत को किस प्रकार देखा और भारत की किन विशेषताओं का उल्लेख अपने ग्रन्थों में करना महत्वपूर्ण समझा।

यूनानी स्त्रोतों में पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में पहली बार भारत का उल्लेख प्राप्त होता है। यूनान के प्राचीन लेखकों में टेसियस और हेरोडोटस के नाम प्रसिद्ध है। इनकी जानकारी का आधार यूनानी स्त्रोत थे। हेरोडोटस के ग्रन्थ में ईरानी और यूनानी आक्रमणों तथा इण्डो–ईरानी संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है उसका लेखन उत्तर–पश्चिम भारत की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्रदान करता है। ग्रीक राजाओं द्वारा पाटलिपुत्र में भेजे गए तीन राजदूत–मगस्थनीज, डायमेकस, और डायोनिसियस थे। सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज का ग्रन्थ इण्डिका चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में अपने ठहरने का विवरण है। हालाँकि ये वृत्तांत अब लुप्त हो चुका है लेकिन बाद के यूनानी लेखकों ने इसके कुछ भागों का उल्लेख किया है। जिससे मौर्य कालीन प्रशासनिक संरचना, सामाजिक वर्गों और आर्थिक गतिविधियों का पुर्ननिर्माण संभव हो पाया। सिकन्दर के साथ आने वाले इतिहासकारों के विवरण भी लुप्त हो गए है। अब वे केवल खण्डों में उपलब्ध हैं।

द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी ईस्वी के बीच भारत के विवरण से सम्बन्धित बहुत सारी यूनानी और लैटिन रचनाएं उपलब्ध हैं। इनमें एरियन, स्ट्रैबो, तथा प्लिनी के अतिरिक्त अज्ञात लेखक द्वारा लिखित 'पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी' जैसे ग्रन्थ प्रमुख हैं। ये विवरण प्रारम्भिक भारत में हिन्द महासागर के व्यापार के बारे में उपयुक्त जानकारी देते हैं। टालमी के ग्रन्थ जियोग्राफी से प्राचीन भारत के भूगोल और व्यापार को समझने में सहायता मिलती है।

चीन से दुर्गम स्थल मार्गों को तय कर बौद्ध ग्रन्थों की प्रामाणिक पाण्डुलिपियाँ देखने, भारत के बौद्ध स्थलों का भ्रमण करने तथा बौद्ध अध्ययन केन्द्रों को देखने के लिए प्राचीन काल से ही बहुत से चीनी यात्री भारत आते रहे। इन यात्रियों के विवरण भारतीय इतिहास के पुर्ननिर्माण में विशेष उपयोगी रहे हैं। इनमें चार नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है–फाह्यिान, सुंगयुन, हुएनसांग

तथा इत्सिंग। फाह्यान ने 399–414 ईस्वी के बीच उत्तर भारत यात्रा की और मध्यदेश के समाज एवं संस्कृति का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया। ह्वेन–त्सांग ने 629 ईस्वी से लेकर 10 वर्षों तक सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। अपने यात्रा विवरण में ह्वेन–त्सांग ने हर्षवर्धन के समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किया है।

बाद के समय में कुछ अरब यात्रियों ने भी भारत के बारे में अपने विवरण दिए, जिससे हमें पूर्वमध्यकालीन भारत के समाज एवं संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ऐसे लेखकों में अल्बरूनी नाम सर्वप्रसिद्ध है। वे खिव (आधुनिक तुर्कमेनिस्तान) के क्षेत्र के थे और महमूद गजनवी के समकालीन थे। भारत के लोगों के विषय में जानने के उद्देश्य से उन्होंने भारत के प्राचीन ग्रन्थों का उनकी मूल भाषा में अध्ययन किया। उन्होंने जो लिखा वह उनके भारतीय समाज और संस्कृति के ज्ञान पर आधारित है। हालाँकि, अल्बरूनी अपने समय की कोई राजनीतिक जानकारी अपने ग्रन्थ में नहीं देते। लेकिन उनकी रचना तहकीक–ए–हिन्द में भातरीय लिपियों, विज्ञान, भूगोल, खगोलशास्त्र, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, धर्म, उत्सव, कर्मकाण्ड, सामाजिक संरचना और कानून जैसे विषयों को शामिल किया गया है। 11वीं सदी के भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए अल्बरूनी की रचना महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इसके अलावा उन्होंने ही पहली बार गुप्तकाल की प्रारम्भिक तिथि का आकलन भी किया। अल्बरूनी के अतिरिक्त पूर्वमध्य काल में अरबी भाषा में बहुत सारे भौगोलिक और यात्रा वृत्तांत लिखे गए। इब्नखुर्दद्‌ब (नवीं शती) के ग्रन्थ 'किताबुल–मसलिक वल मामलिक' में भारतीय समाज तथा व्यापारिक मार्गों का विवरण प्राप्त होता है। अबूजैद ने भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का वर्णन किया है। अनेक फारसी ग्रन्थों में भी भारत का विवरण प्राप्त होता है। भारत का विवरण देने वाले ग्रीक विवरणों में से कुछ सुनकर लिखे गए वृत्तांत है और कुछ अनुभव के आधार पर संकलित किए गए हैं। अतः इनका उपयोग करते समय सर्तक रहना चाहिए। क्योंकि इन ग्रन्थों में कई बार भारत के विषय में सोच समझकर सही–सही लिखा गया और कई बार बिल्कुल त्रुटिपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए, मेगस्थनीज अपने प्रवास के समय भारत में सात जातियों का उल्लेख करता है। ये जातियाँ 'व्यवसायिक वर्गों' के साथ भ्रम पैदा करती हैं। इसी प्रकार चौथी शताब्दी ई0पू0 में टेसियस द्वारा दिए गए विवरण में भारत के सम्बन्ध में बहुत सी कपोलकल्पित बातें लिखी गई, जिन्हें लेखक ने ईरान में राजकीय वैध होते समय एकत्रित की थी।

1.5 सारांश

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों का कुशलता से किया गया विश्लेषण ही इतिहास का आधार होता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में उपलब्ध साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों की पृथक–पृथक संभावनाएँ भी है और सीमाएँ भी हैं, जिनकी समझ इतिहासकारों के लिए आवश्यक है। लेकिन पुरातात्विक एक साहित्यिक साक्ष्य दोनों ही इतिहास के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं। बहुत से पुरातात्विक उत्खनन अभी तक प्रकाशित नहीं हुए है साथ ही साथ बहुत से शिलालेखों का अध्ययन अभी बाकी है। परिणामस्वरूप अतीत की हमारी जानकारी अभी पूर्ण नहीं है।

1.6 बोध प्रश्न

- प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के सन्दर्भ में उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
- इतिहास लेखन में पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में शिलालेखों का क्या महत्व है?

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह,उपिन्दर : ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.2008
- विन्टरनित्ज,एम.: हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर. 3 वाल्यूम, 1985–1993.

इकाई 2 छठी शताब्दी ई0 पू0 का राजनीतिक इतिहास

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 सोलह महाजनपद

2.3 गणराज अथवा गणसंघ एवं उनकी शासन पद्धति

2.4 सारांश

2.5 बोध प्रश्न

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई0 पू0 का काल सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक स्तर पर हुए परिवर्तनों के सन्दर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से देखें तो यह वह काल है, जब भारतीय इतिहास राजे–रजवाड़ो के इतिहास में पर्दापण करता है। छठी शताब्दी ई0 पू0 के बाद से ही उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होने लगता है। यद्यपि विभिन्न जनपदों का अस्तित्व हमें उत्तर वैदिक काल में भी देखने को मिलता है, परन्तु वह जनजातीय अथवा कबीलाई व्यवस्था पर आधारित थे। छठी शताब्दी ई0 पू0 में लौह तकनीक के विकास से जुड़े भौतिक जीवन के परिवर्तनों ने स्थाई जीवन–यापन की प्रवृत्ति को सुदृढ़ किया और प्राचीन जनजातीय अथवा कबीलाई व्यवस्था को कमजोर कर छोटे–छोटे जनों के स्थान पर जनपदों और फिर महाजनपदों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- छठी शताब्दी ईसा पूर्व तथा उसके पहले की राजनीतिक संरचना के अंतर को समझ सकेंगे।
- छठी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान विकसित महाजनपदों एवं संघों के सन्दर्भ में

जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

- संघो अथवा गणराज्यों की शासन पद्धति के विषय में जान सकेंगे

2.2 सोलह महाजनपद

छठीं शताब्दी ई0 पू0 में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संरचनाओं में हुए परिवर्तनों के फलस्वरुप उत्तर–पश्चिम भारत में गांधार से लेकर पूर्व में अंग तक कई राज्यों का उदय हुआ। यह प्रक्रिया मालवा से लेकर विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में गोदावरी नदी घाटी तक चली।

बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय एवं जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र में इस काल के सोलह महाजनपदों की विस्तृत चर्चा की गई है, जो छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में अस्तित्व में आये। अंगुत्तर निकाय में महाजनपदों की सूची इस प्रकार से दी गई है– काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि या वृज्जि, मल्ल, चेतिय (चेदी), वंश (वत्स), कुरू, पांचाल, मच्छ (मत्स्य), शरूसेन, अस्सक, अवंति, गांधार तथा कम्बोज (इस सूची में दिए गए नाम पाली में है और उनके संस्कृत शब्द कोष में दिये गये हैं)। भगवती सूत्र में उपलब्ध सूची उपरोक्त सूची से कुछ अलग है, इसके अनुसार सोलह महाजनपदों में अंग, बंग (वंग), मगह (मगध), मलय, मालव, अच्छ, वच्छ (वत्स), कोच्च, लाढ़ (लता या रारोढ़), पधा (पांड्य या पौंड्र) वज्जि मोली (मल्ल), काशी (कासी), कोसल,अवह तथा संभुत्तर। उपरोक्त बौद्ध और जैन ग्रन्थों

में उपलब्ध सूची में से कुछ नाम तो दोनों में एक समान है। लेकिन भगवती सूत्र में उपलब्ध सूची को अधिक विश्वसनीय माना जाता है।

इन महाजनपदों में अधिकांश राजतंत्र थे, साथ ही गैर राजतांत्रिक गण अथवा संघ भी विधमान थे। इनके बीच सम्बन्ध बनता और बिगड़ता रहता था। इनमें युद्ध, मैत्री, संधि सभी प्रकार के उतार चढाव देखे जा सकते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. **काशी**–वर्तमान वाराणसी (बनारस) तथा उसके आस–पास का क्षेत्र ही प्राचीन काल में काशी महाजनपद का निर्माण करते थे। उत्तर में वरूणा और दक्षिण में असी नदियों के बीच स्थित वाराणसी नगरी इस महाजनपद की राजधानी थी। जातक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि काशी का विस्तार 300 लीग था और यह महान, समृद्धशाली तथा साधन सम्पन्न राज्य था। जातक कथाओं में काशी के कई राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने अपने प्रयासो से राजनीतिक सर्वोच्चता को प्राप्त किया। इन कथाओं में काशी और कोसल के बीच हुए संघर्ष का वर्णन मिलता है। मगध एवं अंग के साथ भी काशी का संघर्ष होता रहा किन्तु सोलह

महाजनपदों में आरंभिक काल में काशी उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य था। कालांतर में कोसल ने काशी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

2. **कोसल** –वर्तमान उत्तर प्रदेश में अवध का क्षेत्र (फैजाबाद मण्डल) प्राचीन काल में कोसल महाजनपद का निर्माण करता था। यह उत्तर में नेपाल से लेकर दक्षिण में सर्पिका अथवा स्थान डिक (सई) नदी तक तथा पश्चिम में पांचाल से लेकर पूर्व में सदानीरा (गंडक) नदी तक फैला हुआ था। सरयू नदी इस महाजनपद को उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में विभाजित करती थी। उत्तरी कोशल की राजधानी श्रावस्ती तथा दक्षिणी कोसल की राजधानी कुशावती थी। इसके अन्य प्रमुख नगर अयोध्या तथा साकेत थे। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे प्रमुख नगर अयोध्या तथा साकेत थे। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे नगरों में सेतव्य, उपकठ तथा कतागिरी का नाम मिलता है। साहित्यिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कोशल का उदय कई इकाइयों और वंशों के सामंजस्य से हुआ। उदाहरणार्थ एक समय में कपिलवस्तु के शाक्य एवं केसपुत्त के कलाम पर कोसल का नियंत्रण था। अपने राजनैतिक विकास क्रम में कोसल ने काशी को भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

कोसल का प्रसिद्ध राजा प्रसेनजीत बुद्ध का समकालीन था, बुद्ध तथा प्रसेनजीत के सम्बन्धों की चर्चा पालि स्रोतों में मिलती है। प्रसेनजीत ने मगध के शासक बिम्बिसार के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया किन्तु बिम्बिसार की मृत्यु के पश्चात् काशी ग्राम के प्रश्न पर दोनों राज्यों के बीच घमासान युद्ध हुआ जिसमें प्रारम्भ में मगध का राजा अजातशत्रु बन्दी बना लिया गया परन्तु बाद में प्रसेनजीत की पुत्री वाजीरा से विवाह के कारण उसे कोसल की शत्रुता से मुक्ति मिली। प्रसेनजीत की मृत्यु के बाद कोसल को मगध में मिला लिया गया।

3. **अंग**–अंग राज्य मगध के पूर्व में स्थित था जिसकी पहचान आधुनिक भागलपुर तथा मुंगेर जिले से की जाती है। गंगा नदी इसके उत्तर में बहती थी और चम्पा नदी (आधुनिक चंदन नदी) द्वारा यह मगध राज्य से अलग होता था। इसकी राजधानी चम्पा को महाभारत तथा पुराणों में मालिनी कहा गया है, जो उस काल के व्यापारिक मार्ग पर स्थित एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र भी था। चम्पा की गणना बुद्धकालीन छः प्रमुख नगरों में भी की जाती है। प्रारम्भ में अंग राज्य राजनीतिक दृष्टि से एक शक्तिशाली महाजनपद था। अंग तथा मगध के बीच सत्ता के लिए

दीर्घकालीन संघर्ष के प्रमाण प्राप्त होते है जिसमें प्रारम्भ में अंग के शासक ब्रह्मदत्त द्वारा मगध के राजा भट्टीय को पराजित कर मगध के कुछ भागों (राजगृह) पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु अंग राज्य का वैभव लम्बा न चल सका। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में मगध के युवराज बिम्बिसार श्रोणिक ने अंग के अन्तिम शासक ब्रह्मदत्त की हत्या कर उसकी राजधानी चम्पा पर अधिकार कर लिया।

4. **मगध**– वर्तमान दक्षिणी बिहार के पटना तथा गया जिले ही प्राचीन काल में मगध महाजनपद का निर्माण करते थे। यह राज्य उत्तर में गंगा नदी, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत श्रृंखला, पूर्व में चम्पा नदी और पश्चिम में सोन नदी से घिरा हुआ था। मगध की प्राचीन राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी जो गया की समीपवर्ती पाँच पहाड़ियों से घिरी हुई थी। महाभारत मे इस नगर के अन्य नाम (बार्हद्रथपुर, मगधपुर,) भी मिलते हैं। कालान्तर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित हो गई। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख वैदिक साहित्यों में मिलता है। महाभारत आए विवरणानुसार मगध के आदिवंश का संस्थापक बृहद्रथ था। पुराणों में उपलब्ध मगध के राजाओं की सूची भी बृहद्रथ से शुरू होती है। यह वंश छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में समाप्त हो गया तत्पश्चात् मगध में हर्यक वंश की स्थापना हुई। कालान्तर में यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया।

5. **वज्जि**– गंगा नदी के उत्तर में वज्जि या वृजि प्रदेश नेपाल की पहाड़ियों के बीच विस्तृत था। पश्चिमी सीमा पर गण्डक नदी इसे मल्ल राज्य या कोसल से पृथक करती थी। यह आठ राज्यों का संघ था जिसमें विदेह, लिच्छवी, ज्ञात्रिक तथा वृज्जि प्रमुख थे। शेष राजवंशों में उग्र के भोग, कौरव, ऐच्छवक इत्यादि के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। अंगुत्तरनिकाय में वृज्जि गणराज्य की राजधानी वैशाली को बताया गया है, इसकी पहचान उत्तरी बिहार के बसाढ़ से की गई है। बौद्ध ग्रन्थों में लिच्छिवियों का उल्लेख मिलता है जिनका कोसल और मल्ल के साथ मधुर संबंध था, लेकिन मगध के साथ इनके भी संघर्ष का उल्लेख मिलता है। वज्जि गणसंघ के शासक चेटक का निकट संबंध जैन तिर्थंकर महावीर के साथ था और मगध के राजा के साथ भी चेटक ने पुत्री चेलना का विवाह किया था। बुद्ध के समय में यह एक शक्तिशाली संघ था।

6. **मल्ल**–मल्ल गणतंत्र वज्जियों के पश्चिम में, आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश के

देवरिया जिले में स्थित था। यह नौ कुलों का एक सूमह था जिसमें पावा (पडरौना), तथा कुशीनारा (कसया) दो प्रमुख राजनीतिक केन्द्र थे। विदेह की भाँति मल्ल में भी प्रारम्भिक दौर में राजतंत्र शासन प्रणाली थी। कुस जातक में ओक्काक को यहाँ राजा बताया गया है। बिम्बिसार के पूर्व मल्लों के राज्य में राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना हो गई। अन्ततः मल्ल राज्य को मगध द्वारा अपने राज्य में मिला लिया गया।

7. **चेदि**—चेदि राज्य आधुनिक बुंदेलखंण्ड तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश में स्थित था। इसकी राजधानी सोत्थिवती थी जिसकी पहचान महाभारत में उल्लिखित शुक्तिमती से की जाती है। चेदी राज्य की प्राचीनता ऋग्वेद के समतुल्य स्वीकार की जाती है। महाभारत काल में यहाँ का प्रसिद्ध शासक शिशुपाल था। चेतीय जातक में यहाँ के राजा का नाम 'उपचर' मिलता है।

8. **वत्स**—वंश या वत्स राज्य गंगा नदी के दक्षिण में स्थित था। जो अपने उत्कृष्ट सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी कौशाम्बी (आधुनिक कोसाम) इलाहाबाद के दक्षिण—पश्चिम में 33 मील की दूरी पर यमुना नदी के दाहिने तट पर स्थित है। वत्स के शासक उदयन तथा अवंती के राजा प्रद्योत के संघर्ष और उदयन एवं प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता की प्रणय कथा इतिहास में काफी लोकप्रिय है। उदयन द्वारा अंग एवं मगध से भी वैवाहिक संधियां की गई।

9. **कुरू**—पाली ग्रन्थों के अनुसार, कुरू के राज्य पर युधिष्ठिला—वंश (युधिष्ठिर के वंश) के राजाओं का शासन था। इस महाजनपद की राजधानी इन्दपत्त (इन्द्रप्रस्थ) या इन्द्रपत्तन आधुनिक दिल्ली के पास स्थित थी। बुद्ध के समय कुरू एक छोटा—सा राज्य था जिसका मुखिया कोरव्य था। जैन ग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र में कुरू के राजा ईशुकर का उल्लेख मिलता है। कुरूओं द्वारा यादवों, भोज और पांचालों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए गए। आगे चलकर कुरू राज्य में गणतंत्र की स्थापना हो गई।

10. **पांचाल**—प्राचीन पांचाल महाजनपद में आधुनिक रूहेलखण्ड के बरेली, बदायूँ तथा फर्रूखाबाद जिले शामिल थे। महाभारत के अनुसार यह महाजनपद गंगा नदी द्वारा दो भागों में विभाजित था (1) उत्तरी पांचाल जिसकी राजधानी अहिच्छत्र (बरेली स्थित वर्तमान रामनगर) थी और (2) दक्षिणी पांचाल जिसकी राजधानी काम्पिल्य (फर्रूखाबाद स्थित कम्पिल) थी। महाउम्मग्ग जातक, उत्तराध्ययन सूत्र, स्वप्न—वासवदत्ता तथा रामायण

में पांचाल के राजा चुलानि ब्रह्मदत्त का उल्लेख मिलता है। उत्तराध्ययन सूत्र में काम्पिल्य के राजा संजय का नाम मिलता है जिन्होंने राजपद त्याग दिया था। इतिहासकारों के अनुसार विदेह, मल्ल तथा कुरू राज्यों की भाँति पांचाल में भी संघीय शासन प्रणाली थी।

11. **मत्स्य (मच्छ)**—मत्स्य महाजनपद राजस्थान प्रान्त के जयपुर क्षेत्र में स्थित था, और वर्तमान अलवर और भरतपुर जिले तक फैला हुआ था। विराट नगर (आधुनिक जयपुर राज्य का बैराट) मत्स्य राज्य की राजधानी था जिसकी स्थापना विराट नामक राजा ने की थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मत्स्य राज्य उन राज्यों की श्रेणी में नहीं रखा गया है, जहाँ पर राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र बने थे। बौद्ध स्रोतों में मत्स्यों और शूरसेनों को जोड़कर देखा गया है।

12. **शूरसेन**—आधुनिक ब्रजमण्डल में स्थित शूरसेन महाजनपद की राजधानी मथुरा थी, जो यमुना के तट पर बसी थी। महाभारत तथा पुराणों में मथुरा के यदु अथवा यादव वंश का उल्लेख मिलता है। बौद्ध परम्परा में अवंती पुत्र को शूरसेनों का शासक बताया गया है, जो बुद्ध का अनुयायी था। राजा अवन्तिपुत्र के नाम से ऐसा लगता है कि इनका सम्बन्ध अवन्ति के राजवंश से भी था। शूरसेन मेगस्थनीज के समय तक एक सशक्त प्रभावशाली राज्य के रूप में विद्यमान थे।

13. **अस्सक**—यह महाजनपद गोदावरी नदी के तट पर बसा हुआ था। इसकी राजधानी पोटक/पोदन या पोटलि थी, जिसकी पहचान हैदराबाद के निजाम क्षेत्र में स्थित बोधन से की जाती है। महाजनपदों में एकमात्र अश्मक महाजनपद दक्षिण भारत में स्थित था। सोननन्द जातक में अश्मक का सम्बन्ध अवंती से बताया गया है। पुराणों के अनुसार ईक्ष्वाकुवंशी शासकों ने अश्मक के राजतंत्र की स्थापना की थी। चुल्लकलिंग जातक से ज्ञात होता है कि अश्मक शासक अरूण ने कलिंग के राजा पर विजय प्राप्त की थी। अंततः बुद्धकाल में अवन्ति राज्य द्वारा अश्मक को विजित कर अपने राज्य में समाहित कर लिया गया।

14. **अवन्ति**—पश्चिमी तथा मध्य मालवा के क्षेत्र में अवन्ति महाजनपद फैला हुआ था। विन्ध्याचल पर्वत के कारण यह महाजनपद दो भागों में विभाजित हो गया था। उत्तरी अवन्ति जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी तथा दक्षिणी अवन्ति जिसकी राजधानी महिष्मती थी। बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में अवन्ति के कुछ अन्य नगरों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें—कुररघर, मक्करकट, सुदर्शनपुर प्रमुख हैं। अवन्ति का प्रसिद्ध शासक प्रधोत था,

जिसके समय में अवन्ति का संघर्ष वत्स, मगध तथा कोशल के साथ चला। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में अवन्ति मगध में मिला लिया गया।

15. **गान्धार**—प्राचीन गान्धार राज्य में पाकिस्तान के आधुनिक पेशावर, रावलपिंडी जिला और कश्मीर की घाटी सम्मिलित थी। इसकी राजधानी तक्षशिला थी जो प्राचीन काल का महत्वपूर्ण एवं प्रख्यात नगर था। तक्षशिला में दूर–दूर देशों से लोग अध्ययन और व्यापार के लिए आते थे। छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य में यहाँ पुक्कुसती या पुश्करसरिन नामक राजा शासन कर रहा था जिसका मगध के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। पुक्कुसती ने अवन्ति के शासक प्रधोत को युद्ध में परास्त किया था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गान्धार को ईरान के शासकों ने जीतकर अपने नियंत्रण में कर लिया।

16. **कम्बोज**—विभिन्न साहित्यों एवं अभिलेखों में कम्बोज एवं गान्धार को एक–दूसरे से सम्बद्ध कहा गया है। इसकी राजधानी हाटक अथवा राजपुर थी। महाभारत में कम्बोज के राजा चन्द्रवर्मन तथा सुदक्षिण का नाम मिलता है। कालान्तर में यहाँ भी राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र स्थापित हो गया।

इस तरह छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत की राजनीति में विकेन्द्रीकरण के तत्व प्रबल थे। इन 16 महाजनपदों में परस्पर संघर्ष होते रहते थे। गणराज्यों का अस्तित्व राजतंत्रों को स्वीकार नहीं था, प्रत्येक राज्य विस्तारवादी नीति का अनुसरण कर रहा था। अंततः इस प्रक्रिया में छोटे राज्य शक्तिशाली राज्यों में सम्मिलित कर लिये गये जिसके फलस्वरूप भारत में राजनैतिक एकीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

2.3 गणराज अथवा गणसंघ एवं उनकी शासन पद्धति

गण अथवा संघ राज्य :

प्राचीन भारतीय साहित्यिक ग्रन्थों के विवरण राज्यो ंएवं गण अथवा संघ राज्यों की राजनीतिक संरचना और उनके स्वरूप के बीच अंतर को स्पष्ट करते है। जिससे यह तथ्य उद्घाटित होता है कि प्राचीन भारत में राजतन्त्रों के साथ–साथ गण अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था। इस सन्दर्भ में अवदानशतक आचरांगसूत्र का विवरण महत्वपूर्ण है। 16 महाजनपदों में भी वज्जि और मल्ल संघ राज्य ही थे। बौद्ध साहित्यों में कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलिय, अलकप्प के बुलि, केसपुत्र के कलाम, पिप्पलीवन के मोरिय, सुमसुमार पर्वत के भग्ग, पावा के मल्ल, इत्यादि की चर्चा मिलती है। इस सन्दर्भ में

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गण पूर्वी भारत में हिमालय की तराई में स्थित थे जबकि अन्य सभी प्रमुख राज्य गंगा घाटी के मैदानों में स्थित थे।

1903 में सर्वप्रथम रिज डेविड्स द्वारा साम्राज्यवादी दृष्टिकोण (जिसमें प्राचीन राजव्यवस्था में निरंकुश शासन व्यवस्था पर बल दिया गया) को चुनौती देते हुए गणराज्यों की खोज की गई। के.पी. जायसवाल (1953) के अनुसार राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपने प्रारम्भिक अध्ययन गणतांत्रिक प्रणाली की विशेषताओं को बढ़ा–चढ़ा कर बताया और इनकी तुलना आधुनिक प्रजातांत्रिक सरकारों, और ग्रीस, यूनान एवं रोम के गणतंत्रों से की। गणों के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि ये प्रारम्भिक जन्मजातीय संगठनों का ही विकसित रूप थे।यद्यपि की इन राजनीतिक संगठनों में कॉरपोरेट तत्व दिखाई देता है, फिर भी निश्चित रूप से ये गणतंत्र आधुनिक प्रजातंत्र के समान नहीं थे। आधुनिक शब्दावली में इन्हें 'कुलीनतंत्र' या 'अभिजाततन्त्र' कहा जा सकता है जिसमें शासन का संचालन प्रजा द्वारा न होकर किसी कुल विशेष के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। कुछ गणराज्य कई कुलों के समूह के रूप में भी देखने को मिलते है।

1. **कपिलवस्तु के शाक्य,** स्वयं को सूर्य वंश का उत्तराधिकारी मानते थे। इनका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में रोहिणी नदी, दक्षिण और पश्चिम में राप्ती नदी से घिरा हुआ था, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी, कपिलवस्तु की स्थिति के सन्दर्भ में विद्वतजन एकमत नहीं है, कुछ विद्वान तिलौराकोट को कपिलवस्तु मानते है जबकि अन्य विद्वान पिपहरवा गनवरिया से कपिलवस्तु की पहचान करते है। गौतम बुद्ध का सम्बन्ध इसी कुल से था अतः बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यों के विषय में काफी चर्चा की गई है। यह गणराज्य कोसल की अधीनता स्वीकार करता था बाद में इसका विनाश भी कोशल नरेश विडूडभ द्वारा किया गया था।

2. **रामग्राम के कोलियों** का राज्य शाक्य गणराज्य के पूर्व में अवस्थित था, इन दोनों राज्यों के बीच रोहिणी नदी बहती थी। कोलियों की राजधानी रामग्राम की पहचान गोरखपुर जिले के रामगढ़ताल से की गई है। **भग्ग या भर्ग** संघ की स्थिति मिर्जापुर जिले के चुनार में यमुना और सोन नदियों के बीच में स्वीकार की जाती है। ये वत्सों की अधीनता स्वीकार करते थे।

3. **अलकप्प के बुलियों** का गणराज्य आधुनिक बिहार राज्य के शाहाबाद, आरा और मुजफ्फरपुर जिलों के बीच अवस्थित था। बुलि लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी एवं संरक्षक थे महापरिनिर्वाण सूत्र से ज्ञात होता है कि बुद्ध

के अवशेषों से इन्होंने एक स्तूप का निर्माण करवाया था।

4. **कुशीनारा के मल्ल** गणराज्य की पहचान देवरिया जिले के वर्तमान 'कसया' तथा **पावा के मल्लों** की पहचान इसी जिले के 'पडरौना' नामक स्थान से की जाती है। मगध के राजा अजातशत्रु ने मल्लों को पराजित किया था। अन्य गणों और संघों के विषय में काफी कम जानकारी उपलब्ध है।

गणराज्यों की शासन–पद्धति

गणराज्यों के विधान एवं शासनपद्धति के विषय में बहुत अधिक ज्ञात नहीं है। इतना तो स्पष्ट है कि बड़े गणराज्यों की शासन प्रणाली छोटे राज्यों से भिन्न रही होगी। इन गणराज्यों में शक्ति उस क्षेत्र विशेष के शक्तिशाली क्षेत्रीय परिवारों के समूह में नीहित रहती थी। यहाँ वंशपरम्परा पर आधारित राजा की बात नहीं की जाती थी। यहाँ गणपति, गणराज या संघमुखिया का उल्लेख मिलता है जो कुलीन परिवारों के प्रतिनिधियों की सभा का मुखिया होता था। जिसके सदस्य एक सभागार में एकत्रित होकर सभा करते थे। समिति के सदस्यों को भी राजा कहा जाता था। राजनीतिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से गणों को सभा द्वारा संचालित प्रशासन और सभा के भीतर एक कुलीन तंत्र के द्वारा संचालित प्रशासन के बीच समझौते या सहमति के रूप में देखा जा सकता है।

लिच्छवी गणराज्य जिसकी गणना बड़े गणराज्यों में की जाती है, उनके प्रशासन की बहुत चर्चा साहित्यों में मिलती है, उदाहरणार्थ एकपण्ण जातक में उल्लिखित है कि लिच्छिवियों की राजधानी वैशाली में 7707 राजाओं द्वारा शासन चलाया जाता था और इतनी ही संख्या में उपराजा, सेनापति, भण्डागारिक (कोष के अधिकारी) आदि पदाधिकारी भी कार्यरत थे। 'चुल कलिंग जातक' में भी लिच्छिवियों के शासन की बागडोर को 7707 राज्य परिवारों द्वारा संचालित बताया गया है। इसी प्रकार शाक्य गणराज्य के संस्थागार के सदस्यों की संख्या 500 बताई गई है।

यद्यपि की साहित्यिक साक्ष्यों में उपलब्ध इन संख्याओं को सहज स्वीकारना संभव नहीं है, परन्तु यह तो कहा जा सकता है कि लिच्छवी गणराज्य में एक बड़ी सभा होती थी जिसमें क्षेत्र विशेष के सभी प्रमुख क्षत्रिय परिवार का प्रतिनिधित्व होता था– जो राजा कहलाते थे। राजा अपने अधीन पदाधिकारियों की सहायता से प्रशासन चलाते थे। इनमें महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय चर्चाओं एवं वाद–विवाद द्वारा लिये जाते थे। लिच्छवियों के इसी प्रकार की सभा के दौरान वैशाली की नगर वधु आम्रपाली को सम्मानित करने या प्रसंग आता है।

शाक्यों और कोलियों के बीच भी रोहिणी नदी के जल–वितरण के विवाद को सुलझाने में इसी प्रकार की सभा की भूमिका देखने को मिलती है। इन सभाओं में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व नहीं था। लिच्छवी गणराज्य में सेनापति के चुनाव का भी विवरण प्राप्त होता है। तदनुसार सेनापति खण्ड की मृत्यु के पश्चात् सेनापति सिंह की नियुक्ति संस्थागार के सदस्यों द्वारा निर्वाचन के आधार पर की गई थी। कुशीनारा के मल्लों ने बुद्ध की अत्येष्टि तथा उनकी धातुओं के सन्दर्भ में अपने संस्थागार में विचार–विमर्श किया था। ये उल्लेख इस तथ्य को उद्घाटित करते है कि गणराज्यों के शासन का आधार जनतंत्रात्मक प्रणाली था। ऐसा भी माना जा सकता है कि बौद्ध संघ इन्हीं गण अथवा संघों की कार्यप्रणाली पर आधारित थे। विशेषतः बौद्ध संघ लिच्छवियों की व्यवस्था से प्रभावित प्रतीत होता है।

संस्थागार की कार्यवाही की तुलना आधुनिक, प्रजातन्त्रात्मक संसद से की जाती है। सभा के पहले संस्थागार में एक प्रोटोकॉल तय किया जाता था, फिर पदानुसार प्रत्येक सदस्य के बैठने की व्यवस्था की जाती थी। कोरम की पूर्ति, प्रस्ताव रखने, मतगणना आदि के लिये सुनिश्चित नियम निर्धारित किए गए थे। संस्थागार में रखे जाने वाले प्रस्ताव सामान्यतः तीन बार दोहराये जाते थे और विरोध ना होने पर उसे स्वीकृत मान लिया जाता था। विरोध की स्थिति में बहुमत को स्वीकार किया जाता था। गुप्त मत प्रणाली का अनुसरण करते हुए मतदान 'शलाका' नामक लकड़ी के टुकड़ों से किया जाता था। शलाका–गहपक नामक अधिकारी मतदान को एकत्रित करते थे और गण–पूरक कोरम अथवा गणपूर्ति का दायित्व वहन करते थे, जो महत्वपूर्ण निर्णयों के सन्दर्भ में आवश्यक माना जाता था। गणराज्यों में एक मंत्रिपरिषद भी होती थी जिसमें चार से लेकर बीस तक सदस्य होते थे। इनका प्रधान गणाध्यक्ष कहलाता था। केन्द्रीय समितियों द्वारा न्यायिक कार्य सम्पादित किए जाने के साक्ष्य भी प्राप्त होते है। सुमंगलविलासिनी में वज्जि संघ के आठ न्यायालयों और उनकी कार्यप्रणाली का उल्लेख मिलता है। दण्ड का अधिकार मात्र राजा को प्राप्त था।

इस प्रकार गणों अथवा संघों का प्रशासन भारतीय राजनैतिक इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है। वस्तुतः इन संघों की शक्ति इनके संगठन में ही निहित थी।जब इनका संगठन कमजोर पड़ा और आपसी फूट बढ़ी तब इनका पतन हो गया।

2.4 सारांश

हमने छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत में विधमान राजनैतिक परिस्थितियों की समीक्षा की। यह काल प्रारंभिक ऐतिहासिक काल था जब पूर्व की शताब्दियों

में शुरू हुई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप निर्दिष्ट भू–भागों में अनेक राजनीतिक शक्तियों का उद्भव हुआ जिन्हें जनपद या महाजनपद कहा गया। इस काल में भारत में राजतन्त्रों के साथ–साथ गण अथवा संघ राज्यों का भी अस्तित्व था। सोलह महाजनपदों में सात महाजनपद–काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, और वत्स– मध्य गंगा घाटी में स्थित थे। क्योंकि कोई प्राकृतिक बाधा इस अंचल में वस्तुतः नहीं थी। राजनीतिक क्षमता के विस्तार और एकीकरण के लिए यह आर्दश भू–भाग था। इसी प्रकार राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गण पूर्वी भारत में हिमालय की तराई में स्थित थे। गणराज्यों का अस्तित्व राजतंत्रों को स्वीकार नहीं था, प्रत्येक राज्य विस्तारवादी नीति का अनुसरण कर रहा था। अंततः इस प्रक्रिया में छोटे राज्य शक्तिशाली राज्यों में सम्मिलित कर लिये गये कालान्तर में इन्ही महाजनपदों में से मगध बाद के कालों में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के रूप उभरा, जिसके फलस्वरूप भारत में राजनीतिक एकीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

2.5 बोध प्रश्न

1 निम्न पर संक्षेप में टिप्पणी लिखें

अ काशी

ब अंग

स अश्मक ।

2 प्राचीन भारत के गणराज्यों की शासन पद्दति पर प्रकाश डालिए।

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झा डी. एन. और कृष्णा मोहन श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास,1984
- कोसाम्बी,डी.डी.ः एन इंट्रोडक्शन टू स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, 1956
- राय चौधरी, एच. सी.ः प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,19

इकाई 3 मगध साम्राज्य का उत्कर्ष

इकाई की रूपेरखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 हर्यक वंश—बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदायिन या उदयभद्र

3.3 शिशुनाग वंश—शैशुनाग, कालाशोक (काकवर्ण)

3.4 नंद वंश—महापद्म नंद, एवं उसके उत्तराधिकारी

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 प्रस्तावना

इस इकाई में आप गंगा घाटी के बड़े भू—भाग में फैले हुए गणराज्य एवं महाजनपद के बारे में जान चुके हैं जिसका आधार प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ हैं। इसमें महत्वपूर्ण महाजनपद मगध साम्राज्य के उत्कर्ष पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे है। वर्तमान दक्षिणी बिहार के पटना तथा गया जिले की भूमि में स्थित मगध, बुद्धकाल में एक शक्तिशाली राजतंत्र के रूप में उभर कर सामने आया। कालान्तर में मगध का उत्तरोतर विकास हुआ और राजनीतिक सर्वोच्चता को प्राप्त कर चुके मगध के इतिहास ने प्राचीन भारतीय इतिहास के केन्द्रबिन्दु के रूप में स्थान प्राप्त कर लिया।

डॉ.एच.सी. रायचौधरी के अनुसार, ''मगध का प्राचीन राजवंशीय इतिहास अन्धकार पूर्ण है। कहीं—कहीं योद्धा और रणनीतिज्ञ दिखाई दे जाते है जिनमें से कुछ तो बिल्कुल काल्पनिक थे और कुछ वास्तविक नेता प्रतीत होते है। मगध का वास्तविक इतिहास हर्यक वंशीय बिम्बिसार से प्रारम्भ होता है।''

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप —

- मगध साम्राज्य के उत्कर्ष एवं उसके सामरिक महत्व को समझ सकेगें।
- मगध साम्राज्य के उत्थान हेतु विभिन्न राजवंशों के शासकों द्वारा किए गए प्रयासों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

3.2 हर्यक वंश (544 ईसा पूर्व से 412 ई0 पू0 तक)

मगध साम्राज्य पर शासन करने वाले प्रथम राजवंश के सन्दर्भ में पुराण, बौद्ध एवं जैन स्त्रोतों में उपलब्ध सूचनाओं में काफी भिन्नता है। महाभारत एवं पुराणों के अनुसार मगध के प्राथमिक राजवंश का संस्थापक बृहद्रथ था जो जरासंघ का पिता एवं वसु का पुत्र था। बृहद्रथ ने ही गिरिब्रज को अपनी राजधानी बनाया था।

बौद्ध ग्रन्थों में बृहद्रथ का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनके अनुसार हर्यक वंश का बिम्बिसार मगध का प्रथम शासक था जिसने मगध राजसत्ता की नींव डाली । जैन लेखक राजगृह के प्रथम दो शासकों में समुद्रविजय और गया का उल्लेख करते है।

उपरोक्त तथ्यों की आलोचनात्मक समीक्षा के पश्चात् मगध की राजनीतिक सर्वोच्चता की दिशा में यहाँ शासन करने वाले प्रथम राजवंश के रूप में हर्यंक वंश का नाम लिया जा सकता है। जिसका प्रथम शासक बिम्बिसार था। महावंश के एक कथनानुसार बिम्बिसार का राज्याभिषेक, उसके पिता द्वारा 15 वर्ष की आयु में सम्पन्न किया गया। इससे अप्रत्यक्ष रूप से यह ज्ञात होता है कि बिम्बिसार अपने राजवंश का संस्थापक नहीं था। बिम्बिसार द्वारा 'श्रेणिक' या 'सेणिय' की उपाधि धारण की गई थी जिसका उल्लेख हमें बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है।

बिम्बिसार मगध के प्रारम्भिक शासकों के क्रम में एक कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी शासक था। जिसे राज्य की सम्पूर्ण परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान था। यूरोप के हैब्सबर्ग्स तथा बोरबन्स की तरह बिम्बिसार ने भी अपने समय के प्रमुख राजवंशों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत किया। उसकी यह नीति तत्कालीन राजनीति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा मद्र, कोसल, वैशाली जैसे सैन्यशक्ति प्रधान राज्य बिम्बिसार के मित्र बन गए, वरन् उन्होंने मगध को पश्चिम तथा उत्तर की ओर विस्तार करने में भी मदद की। इस क्रम में कोसल नरेश प्रसेनजीत की बहन महाकोसला देवी बिम्बिसार के साथ विवाह के बाद अपने साथ 1 लाख भू–राजस्व वाला काशी ग्राम भी लाई। इस सम्बन्ध ने वत्स की ओर से भी मगध को सुरक्षित बना दिया, क्योंकि कोसल एवं वत्स में परस्पर मित्रता थी। लिच्छवि गणराज्य के शासक चेटक की पुत्री चेलना (छलना) से हुए विवाह से भी तत्काल कुछ परिणाम निकले। इसके पश्चात् बिम्बिसार ने मद्र देश (कुरू के समीप) की राजकुमारी क्षेमा के साथ विवाह द्वारा मद्रों का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त कर लिया। बिम्बिसार द्वारा अन्य वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए जाने की संभावना है

क्योंकि महावग्ग में चर्चा है कि उसकी 500 पत्नियां थी।

वैवाहिक संधियों से अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेने के पश्चात् बिम्बिसार ने साम्राज्य विस्तार के लिए विजय अभियान आरम्भ किये। बिम्बिसार ने अंग के विरूद्ध एक सैन्य अभियान का नेतृत्व किया और वहाँ के शासक ब्रह्मदत्त को पराजित कर अपने पिता की हार का प्रतिशोध लिया। इस अभियान के बाद अंग मगध साम्राज्य में मिला लिया गया। बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु (कुनिक या कुणिक) को चंपा का गर्वनर नियुक्त किया। डॉ. रायचौधरी के अनुसार, ''बिम्बिसार की विजय ने मगध की उस विजय तथा विस्तार का दौर प्रारम्भ किया जो अशोक द्वारा कलिंग विजय के बाद तलवार रख देने के साथ समाप्त हुआ।'' अंग राज्य की विजय के पश्चात् मगध पूर्वी भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया। अवन्ती के राजा प्रद्योत के पाण्डु रोग से ग्रसित होने पर बिम्बिसार ने उसकी चिकित्सा हेतु अपने राजवैद्य जीवक को भेजा था, और अवन्ति के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में वह सफल रहा।

इस प्रकार बिम्बिसार एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहा। बुद्धघोष एवं महावग्ग में उसके साम्राज्य में 80 हजार गाँव होने की बात उल्लिखित है, जिसका विस्तार 300 लीग तक था। बिम्बिसार एक कुशल प्रशासक भी था। बिम्बिसार ने राज्य के अधिकारियों के प्रति पुरस्कार एवं दण्ड की नीति का अनुसरण किया। उसकी इस नीति के कारण ही वस्सकार एवं सुनीथ जैसे योग्य अधिकारियों को प्रशासन में उच्च स्थान प्राप्त हो सका। बौद्ध साहित्य में उसके राज्य के कुछ अधिकारियों के नाम इस प्रकार दिये गए है–

सब्बत्थक– यह सामान्य प्रशासनिक मामलों का प्रमुख अधिकारी था।

सेनानायक महमत्त तथा वोहारिक महामत्त– यह प्रधान सेनानायक तथा प्रधान न्यायधीश होता था। इसके साथ–साथ प्रान्तों में राजकुमारों की वायसराय अर्थात् उपराजा के पद पर नियुक्ति की जाती थी। प्रान्तों में काफी मात्रा में स्वशासन स्थापित था। अजातशत्रु अपने पिता के शासनकाल में चंपा का उपराजा था।

साम्राज्य निर्माता एवं कुशल प्रशासक होने के साथ–साथ बिम्बिसार एक निर्माता भी था। परम्परानुसार उसने राजगृह नामक नगर की स्थापना की और यातायात एवं संचार व्यवस्था को भी विकसित किया। ह्वेनसांग अपने यात्रा विवरण में बिम्बिसार–मार्ग तथा बिम्बिसार–सेतु का उल्लेख करता है।

जैन स्रोत बिम्बिसार को महावीर का अनुयायी बताते हैं जबकि विनयपिटक में उल्लिखित है कि महात्मा बुद्ध से मिलने के बाद बिम्बिसार बौद्ध धर्म का

अनुयायी बन गया और वेलुवन नामक उद्यान बुद्ध तथा संघ के निमित्त दान दिया।

बिम्बिसार ने लगभग 52 वर्षो तक मगध पर राज्य किया। उसका अन्त दुखद हुआ। बौद्ध तथा जैन स्त्रोतों के अनुसार, बिम्बिसार अपने पुत्र कुणिक के शडयन्त्रों का शिकार हुआ। अजातशत्रु ने उसे बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया जहाँ भीषण यातनाओं से उसकी मृत्यु हो गई।

अजातशत्रु

बिम्बिसार के पश्चात् उसका पुत्र कुणिक–अजातशत्रु मगध का राजा बना। उसने भले ही शडयंत्र से सिंहासन प्राप्त किया, किन्तु वह एक सशक्त शासक सिद्ध हुआ जिसके अधीन मगध का सतत् विकास होता रहा। राजगृह की किलेबन्दी कर उसने साम्राज्य की प्रतिरक्षा की व्यवस्था मजबूत की तथा सोन और गंगा के संगम के निकट पाटलिग्राम की नींव रखी, जो उसके साम्राज्य का नवीन गढ़ बन गया।

अजातशत्रु ने अपने पिता की ही साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करते हुए केवल कोसल को ही नतमस्तक नहीं किया, वरन् काशी के एक भाग और वैशाली को भी मगध साम्राज्य में मिला लिया। उसके और कोसल के बीच संघर्ष का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है जिसके अनुसार बिम्बिसार की मृत्यु के पश्चात् उसके वियोग में रानी कोसलादेवी की भी मृत्यु हो गई। प्रसेनजीत इस घटना से अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहन के विवाह में दिया काशीग्राम अजातशत्रु से वापस ले लिया। मगध तथा कोसल के बीच संघर्ष का यही कारण बना, संयुक्त निकाय में इन दोनों राज्यों के बीच हुए दीर्घकालीन संघर्ष का विवरण मिलता है। इस संघर्ष में पहले प्रसेनजीत पराजित हुआ और उसने भागकर श्रावस्ति में शरण ली। किन्तु दूसरी बार में अजातशत्रु पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। किन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण प्रसेनजीत ने अजातशत्रु को छोड़ दिया। और अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह उससे कर दिया। इस विवाह के पश्चात् काशीग्राम पुनः मगध को दे दिया गया जिससे शान्ति स्थापित हो गई। और काशी अन्तिम रूप से मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

अजातशत्रु की सफलताओं में लिच्छवियों पर उसकी विजय को अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। मगध और वैशाली के बीच हुए युद्ध का वर्णन जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। बौद्ध स्त्रोतों के अनुसार, लिच्छवियों ने ही इस संघर्ष के लिए मगध को उकसाया था। सुमंगलविलासिनी में इसके पीछे का

कारण बताया गया है कि 'लिच्छवियों ने गंगा तट पर स्थित रत्नों की खान का बराबर भाग अजातशत्रु को देने का वादा किया था, जिससे वे मुकर गए। जैन ग्रन्थों में इस संघर्ष का कारण अजातशत्रु के सौतेले भाईयों हल्ल और बेहल्ल (चेलना के पुत्र) द्वारा सेयनाग (हाथी) तथा अठारह लड़ियों वाले मोतियों का एक मूल्यवान हार, जिसे बिम्बिसार ने उन्हें दिया था, को देने से इनकार करने को माना है। हल्ल और बेहल्ल इन दोनों वस्तुओं को लेकर अपने नाना चेटक के पास भाग गए। अजातशत्रु ने लिच्छवी सरदार से अपने सौतेले भाइयों को वापस देने को कहा जिसे चेटक ने अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप मगध नरेश ने लिच्छवियों के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया। ऐसा लगता है कि इस संघर्ष में अन्य गणों ने भी मगध के विरूद्ध लिच्छवियों का साथ दिया था। उस समय लिच्छवियों की शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी और उन्हें परास्त करना सरल नहीं था। अजातशत्रु ने अपने मंत्री वस्सकार की सहायता से लिच्छवियों के सामाजिक सौहार्द में शड्यंत्र द्वारा फूट डालने का प्रयास किया ओर वह उसमें सफल भी रहा। फलतः असंगठित लिच्छवि अजातशत्रु का सामना नहीं कर सके। अजातशत्रु ने एक बड़ी सेना के साथ लिच्छवियों पर आक्रमण कर दिया, इनके बीच यह संघर्ष दीर्घकाल तक चला जिसका काल 484–468 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है। अंत में मगध विजयी हुआ और लिच्छवियों का भू–भाग मगध–साम्राज्य में मिला लिया गया। वज्जि संघ को पराजित करने के बाद अजातशत्रु ने मल्लों को भी पराजित किया और पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक बड़े भू–भाग पर उसका अधिकार हो गया। अजातशत्रु ने अवंती के चण्डप्रद्योत को भी पराजित किया।

महान विजेता, अजातशत्रु धार्मिक दृष्टि से भी एक उदार शासक था। बिम्बिसार की भाँति उसे भी जैन ग्रन्थ महावीर का अनुयायी बताते है, ओर बौद्ध ग्रन्थों में उसे बुद्ध का अनुयायी कहा गया है। जैन ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु वैशाली और चंपा में महावीर से मिले थे और उससे बहुत प्रभावित हुए थे। बौद्ध ग्रन्थों में अजातशत्रु को बुद्ध के समक्ष जा कर अपने पितृहन्ता होने का प्रायश्चित करते हुए दिखाया गया है। उसकी बौद्ध धर्म में आस्था का पुरातात्विक प्रमाण भरहुत स्तूप की एक वेदिका के ऊपर उत्कीर्ण मिलता है, जिसमें 'अजातशत्रु भगवान बुद्ध की वन्दना करता है' (अजातशत्रु भगवतो वन्दते) उत्कीर्ण है। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् अजातशत्रु उनकी अस्थियों को कुशीनारा से अपने साथ ले आया और उन पर राजगृह में एक स्तूप का निर्माण करवाया। उसके शासनकाल में ही प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन राजगृह में किया गया। सिंहली अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि लगभग 32 वर्षों तक शासन करने के पश्चात् अजातशत्रु की हत्या उसके पुत्र उदायिन् द्वारा कर दी गई। बौद्ध स्त्रोत यह भी

बताते है कि अजातशत्रु के बाद चार शासक हुए और ये सभी पितृहन्ता कहे गये, इन्होंने मगध पर 56 वर्षों तक शासन किया।

उदयभद्र या उदायिन् (लगभग 460–444 ई0पू0)

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु के तुरंत बाद उदयभद्र मगध का शासक बना। पुराणों में उदयन् से पहले दर्शक नामक राजा का नाम भी मिलता है। जैन ग्रन्थों में उसकी माता का नाम पद्मावती मिलता है। इन ग्रन्थों में उसे पितृहन्ता नहीं बताया गया है बल्कि उसका चित्रण पितृभक्त के रूप में किया गया है जिसने अपने पिता के शासनकाल में चंपा के गर्वनर के रूप में शासन किया था। उदायिन् के शासनकाल में ही पाटलिपुत्र नामक नगर की स्थाना हुई और पाटलिपुत्र को मगध राज्य की राजधानी बनाया गया। उदायिन् को जैन मतानुयायी बताया जाता है जो जैन परम्परा का निष्ठापूर्वक पालन करता था। जैन स्त्रोतों के अनुसार उदायिन् की हत्या अवन्ति नरेश पालक द्वारा नियुक्त गुप्तचर ने तब की जब वह ध्यानपूर्वक किसी धर्म उपदेश को सुन रहा था।

उदायिन् के उत्तराधिकारी तथा हर्यंक कुल का अन्त–पुराणों में उल्लिखित है कि उदायिन् के पश्चात् नंदिवर्धन् और महानंदन मगध के शासक हुए। बौद्ध स्त्रोतों में इस सूची में अनिरूद्ध, मुंडक और नागदशक के नाम मिलते हैं जिन्होने बारी–बारी से मगध पर शासन किया। ये तीनों शासक इतिहास में पितृहन्ता कहे गए जो अत्यन्त निर्बल और विलासी थे। कहा जाता है कि इनके निर्बल शासन से ऊबकर मगध की जनता ने इस राजवंश के राजा को अपदस्थ कर दिया और शिशुनाग नामक योग्य अमात्य को राजगद्दी पर बैठाया। शिशुनाग के राज्यारोहण से मगध में एक नवीन राजवंश, 'शैशुनाग वंश' की स्थापना हुई।

3.3 शिशुनाग वंश –(लगभग 412–444 ईसा पूर्व)

शिशुनाग, नाग वंश से सम्बन्धित था। पुराण उसे क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित बताते है जबकि महावंश टीका में उसे लिच्छवि राजा का पुत्र बताया गया है। शिशुनाग ने अंवति के प्रद्योत राजवंश को समाप्त कर अवंति को मगध साम्राज्य में मिला लिया। यह विजय एक महान सफलता थी जिसके परिणामस्वरूप मगध की पश्चिमी सीमा मालवा तक जा पहुँची। वत्स जो अंवति के अधीन था उस पर भी शिशुनाग का अधिकार हो गया। आर्थिक दृष्टि से भी वत्स और अंवति पर अधिकार लाभप्रद रहा क्योंकि पाटलिपुत्र से भड़ौच जाने वाले व्यापारिक मार्ग के रूप में पश्चिमी विश्व के साथ जुड़ने वाला मार्ग प्राप्त हो गया। कोसल को भी शिशुनाग ने मगध में मिला लिया। इस प्रकार मगध में उत्तर भारत के बुद्धकालीन सभी प्रमुख राजतंत्र सम्मिलित हो गये।

कालाशोक (काकवर्ण)—बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार शिशुनाग का पुत्र कालाशोक उसके बाद मगध का राजा बना। पुराण उसे काकवर्ण कहते हैं। उसके शासनकाल में पाटलिपुत्र मगध की राजधानी बनी और इसी के काल में वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया। इस संगीति में बौद्ध संघ में विभेद उत्पन्न हो गया तथा वह दो सम्प्रदायों (1) स्थविर तथा (2) महासांधिक में विभाजित हो गया।

शिशुनाग वंश का अंत भी हत्या से ही हुआ। हर्षचरित के अनुसार राजधानी के समीप घूमते हुए काकवर्ण की हत्या कर दी गई और यह राजहन्ता नंद वंश का संस्थापक महापद्मनंद था।

3.4 नंद वंश (344 ईसा पूर्व – 324–23 ईसा पूर्व)

पुराणों में नंद वंश का संस्थापक महापद्मनंद को बताया गया है जबकि बौद्ध ग्रन्थों में उसका नाम उग्रसेन उल्लिखित है। देशी तथा विदेशी साक्ष्य नंदो की निम्नकुल की उत्पत्ति की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन के अनुसार नंद वंश का पहला राजा गणिका और नापित पिता से उत्पन्न संतान था। पुराणों में महापद्मनंद को शैशुनाग वंश के एक राजा की 'शूद्र स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र' बताया गया है। यही कारण है पुराण नंद राजाओं को अधार्मिक श्रेणी में रखते है। महावंश टीका में महापद्मनंद को अज्ञात कुल का बताया गया है जो सीमांत प्रदेश में डकैतों का मुखिया था और अवसर का लाभ उठाकर उसने मगध पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया।

बौद्ध परम्परा, जैन परम्परा और पुराणों में समान रूप से स्वीकार किया गया कि नंद वंश में कुल नौ राजा हुए इसी कारण इन्हें 'नवनंद' कहा जाता है। महाबोधि वंश में इनके नाम इस प्रकार मिलते है—(1) उग्रसेन (2) पण्डुक (3) पण्डुगति (4) भूतपाल (5) राष्ट्रपाल (6) गोविषाणक (7) दशसिद्धक (8) कैवर्त (9) धन। इनमें से उग्रसेन को पुराण महापद्मनंद कहते है, जबकि शेष आठ को उसी का पुत्र मानते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में इन आठ शासकों को उग्रसेन के आठ भाइयों के रूप में बताया गया है।

महापद्मनंद पुराणों में 'एकराट' अर्थात् 'सार्वभौम शक्ति से सम्पन्न' या सर्वक्षत्रान्तक या 'क्षत्रियों को समूल नष्ट करने वाला' के रूप में वर्णित है। नंद शासक द्वारा कलिंग पर किये गये सैन्य अभियान की चर्चा खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में मिलती है, जिसके अनुसार, किसी नंद राजा ने कलिंग के एक भाग को जीता और वहां से एक जैन मूर्ति को उठाकर मगध ले गया। सोमदेव के कथासरित्सागर से महापद्मनंद द्वारा कोसल विजय की पुष्टि होती

है। नौ नंद डेहरा (नानदेड़) जो गोदावरी के किनारे स्थित है, विद्वानों का मानना है कि इस क्षेत्र पर नंदों का अधिकार था, यद्यपि कि विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में नंद साम्राज्य का विस्तार अन्य स्त्रोतों से समर्थित नहीं है। लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि वह उत्तर भारत का प्रथम महान ऐतिहासिक सम्राट था।

महापद्मनंद के उत्तराधिकारी एवं नंद सत्ता का अंत

पुराण एवं बौद्ध ग्रन्थ महापद्मनंद के उत्तराधिकारियों की संख्या आठ बताते हैं परन्तु उनके शासन काल के विषय में हमारा ज्ञान अत्यल्प है। सिकंदर के आक्रमण के समय मगध का शासक घनानंद था जो इस वंश का अंतिम शासक था। यूनानी स्त्रोतों में उसे एग्रैमीज या जैन्ड्रैमीज कहा गया है। यूनानी लेखकों के अनुसार उसके पास एक विशाल सेना और अतुल संपत्ति थी। कर्टियस कहता है कि उसके पास 20 हजार अश्वारोही, 2 लाख पैदल, 2 हजार रथ तथा तीन हजार हाथी थे। जेनोफोन ने उसे 'बहुत धनाढ्य व्यक्ति' बताया है। ये बढ़ा–चढ़ा कर बताई गई संख्या हो सकती है, लेकिन निश्चित रूप से यूनानी लेखकों के अनुसार नंद सेना अत्यंत शक्तिशाली थी। तमिल, संस्कृत तथा सिंहली ग्रन्थों में घनानंद की समृद्धि की चर्चा की गई है। उसे व्यसनी, लोभी और शोषणकारी राजा बताया गया है, जिसके कारण उसकी लोकप्रियता बिल्कुल खो चुकी थी। उसके राज्य की प्रजा उससे घृणा करती थी। घनानंद ने अपने शासनकाल में जनमत की उपेक्षा की और अपने समय के प्रतिष्ठित विद्वान और ब्राह्मण चाणक्य को अपमानित किया। घनानंद जनता से अत्याधिक करारोपण द्वारा धन वसूलता था। परिणामस्वरूप जनता नन्दों के शासन के विरूद्ध हो गई और साम्राज्य में घृणा और असन्तोष का वातावरण व्याप्त हो गया। इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त मौर्य ने घनानन्द की हत्या कर नंद वंश का अन्त कर दिया।

इस प्रकार मगध के शक्तिशाली राजवंश का अंत हुआ जिसने हर्यंक और शिशुनाग राजवंशों की आधारशिला पर मगध को उत्तर भारत के एकछत्र साम्राज्य के रूप में परिणित कर दिया था। इस वंश के उत्थान को सामाजिक दृष्टि से निम्न वर्ग के उत्थान का प्रतीक माना जा सकता है। इनके काल में ऐसा सैन्य संगठन तैयार हुआ जिसका उपयोग परवर्ती मगध राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने तथा भारतीय सीमा में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए किया।

नन्दों के समय में मगध राजनीतिक दृष्टि से सशक्त और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली राज्य बन गया। मगध की समृद्धि के कारण ही इसकी

राजधानी पाटलिपुत्र शिक्षा एवं साहित्य का प्रमुख केन्द्र बन गई। व्याकरणाचार्य पाणिनि महापद्मनंद के मित्र थे और उन्होने पाटलिपुत्र में रहकर अध्ययन किया था। वर्ष, उपवर्ष, वररूचि, कात्यायन जैसे विद्वानों का सम्बन्ध भी इस काल से है।

नन्द शासक जैन धर्म के पोषक थे। जैन स्त्रोतों में उनके द्वारा नियुक्त जैन मंत्रियों का उल्लेख मिलता है। कालपक महापद्मनंद का मंत्री था जिसकी सहायता से उसने समस्त क्षत्रियों का विनाश कर डाला था। घनानंद के समय जैन अमात्य शाकटाल तथा स्थूलभद्र थे। जैन ग्रन्थों के अनुसार, नंदों के अधीन मंत्री के पद वंशानुगत थे। उदाहरणार्थ नवे नंद शासक के मंत्री शाकातल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र स्थूलभद्र को मंत्री बनाया गया। परन्तु जब उसने पद लेने से इंकार कर दिया तब उसके भाई श्रीयक ने इस पद को स्वीकार किया।

3.5 सारांश

इस प्रकार हर्यंक वंश, शिशुनागवंश और अंततः नंद राजाओं के काल में मगध साम्राज्य राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ। और बुद्धकालीन राजतंत्रों में अन्ततोगत्वा सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरकर सामने आया। यद्यपि राजनैतिक कारकों के साथ–साथ भौगोलिक एवं प्राकृतिक कारकों की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। मगध की दोनों राजधानियाँ अत्यंत सुरक्षित भौगोलिक स्थिति में थी। राजगृह पहाड़ियों से घिरा होने से सुरक्षित था तो पाटलिपुत्र नदियों से घिरा हुआ था। इस प्रकार पर्वतों और नदियों ने मगध की सुरक्षाभित्ति का कार्य किया । नदियों से सिंचित उपजाऊ भूमि मगध के पास थी इसके साथ–साथ समीपवर्ती वनों से प्राप्त हाथियों से एक शक्तिशाली गज–सेना तैयार करने में मदद मिली। डी. डी. कोसाम्बी के अनुसार, मगध का लौह अयस्क के स्त्रोतों पर एकाधिकार था। जिसके कारण मगध अपनी विस्तारवादी एवं साम्राज्यवादी नीतियों को सफल बना सका।यद्यपि कि अन्य विद्वान इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते लेकिन निश्चित रूप से आर्थिक समृद्धि ने भी साम्राज्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आगे चलकर मगध महत्वपूर्ण राजनीतिक सत्ता का केन्द्र लम्बे समय तक बना रहा। एक कदम बाद मगध का नंद राज्य, मौर्यो सम्राटों के अखिल भारतीय साम्राज्य में परिणित होने वाला था।

3.5 बोध प्रश्न :

(1) मगध साम्राज्य की उत्पत्ति की विवेचना कीजिए।

(2) मगध साम्राज्य के उदय में हर्यंक शासकों की भूमिका का वर्णन कीजिए

।

(3) मगध के उत्कर्ष में बिम्बिसार के योगदान की चर्चा कीजिए ।

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मजूमदार, R.C. (Ed.) : The Age of Imperial Unity
- रायचौधरी, एच.सी. : प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,1971
- स्मिथ, बी.ए. : अर्लि हिस्ट्रि ऑफ इण्डिया
- नीलकण्ठ शास्त्री, के.ए. : द एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज, 1952

इकाई 4 हखामनी आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 साइरस या कुरूष

4.3 दारावयुष या दारा प्रथम

4.4 क्षयार्ष या जरक्सीज

4.5 क्षयार्ष या जरक्सीज के उत्तराधिकारी और पारसीक साम्राज्य का अंत

4.6 हखामनी आक्रमण का प्रभाव

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 प्रस्तावना

इधर एक ओर जिस समय भारत के अनेक राज्य और गणतंत्र मगध की विस्तारवादी नीति का शिकार हो रहे थे, उस समय उत्तर पश्चिमी भारत अराजकता एवं अव्यवस्था के कारण तरह–तरह की मुसीबतों का सामना कर रहा था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रथमार्ध में अन्य क्षेत्रों की तरह देश का उत्तरी भाग अनेक छोटे–बड़े राज्यों में विभक्त था जिसमें कम्बोज, गान्धार और मद्र के राज्य प्रमुख थे। इस राज्यों में उग्रसेन और महापद्म जैसा कोई योग्य शासक नहीं था जो परस्पर संघर्षरत राज्यों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकता। यह सम्पूर्ण प्रदेश एक ही समय में समृद्ध किन्तु बड़ा ही अंसगठित था। इन परिस्थितियों में विदेशी आक्रान्ताओं का ध्यान इस भारतीय भू–भाग की ओर आकर्षित होना स्वभाविक था। अतः देश का यह भाग पर्सिया के हरवामनी आक्रमणों का शिकार हो गया।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर पाएगें–

- भारत और फारस के बीच संबंधों का परीक्षण

- भारत पर फारस के प्रभाव का आकलन

4.2 साइरस या कुरूष (558–529 ईसा पूर्व)

हखामनी साम्राज्य के संस्थापक कुरूष अथवा साइरस ने पश्चिमी एशिया में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद भारत के विरूद्ध अभियान किया। अपने प्रारम्भिक प्रयासों में वह सफल नहीं रहा, उसकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गई और बड़ी कठिनाई से ही अपने सात सैनिकों तथा अपने आप को बचा सका। अपनी प्रारम्भिक असफलताओं से साइरस निराश नहीं हुआ और उसने काबुल घाटी से होकर भारत पर पुनः आक्रमण किया। इस अभियान में साइरस को कुछ सफलता मिली। साइरस ने निश्चितरूप से भारत के किन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी, यह ठोस सन्दर्भो के अभाव में ज्ञात नहीं है। इस विषय में क्लासिकल लेखक एरियन के कथानुसार सिन्ध के पश्चिमी जिलों से लेकर काबुल नदी तक अष्टक तथा अश्वक नामक कुछ भारतीय जातियाँ निवास करती थी। आरम्भ में ये लोग असिरियन के और बाद में मेदियों (मिडियनों) के तथा अंत में फारस (पारसिकों) के अधीन हो गये। ये लोग बादशाह सीरस की प्रशंसा करते थे और उसे अपना सम्राट स्वीकार करते थे। जेनोफोन ने साइरस की जीवनी (साइरोपेडिया) में कहा है कि 'साइरस ने बैक्ट्रियनों तथा भारतीयों को विजित कर अपने विशाल साम्राज्य के अधीन कर लिया तथा अपना प्रभाव क्षेत्र एरिथ्रियन सागर (हिन्द महासागर) तक बढ़ा लिया।

साइरस का शासनकाल 558 ई0पू0 से 529 ई0पू0 तक स्वीकार किया जा सकता है। उसकी मृत्यु कैस्पियन क्षेत्र में डरबाइक नामक जनजाति के विरूद्ध युद्ध में लड़ते हुए हुई। उसके बाद उसका पुत्र कम्बुजीय गृहयुद्धों में ही व्यस्त रहा और उसे भारत पर अभियान का अवसर नहीं मिला।

4.3 दारावयुष अथवा दारा प्रथम (522–486 ईसा पूर्व)

दारावयुष के समय से भारत पर पारसिक आधिपत्य सम्बन्धि हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हो जाता है। दारावयुष या डेरियस–प्रथम के शासनकाल के तीन अभिलेखों–बेहिस्तून,पर्सिपोलिस तथा नक्श–ए–रूस्मत से भारत पारसिक सम्बन्धों की महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। बेहिस्तून शिलालेख (520–518 ई0पू0) में दारा प्रथम के 23 प्रान्तों का उल्लेख हुआ है। इसमें गांधार वासियों को ईरान साम्राज्य का नागरिक माना गया है लेकिन इसमें हिन्दुओं और सिंधु के निवासियों का उल्लेख नहीं मिलता है। हमादान अभिलेख में हिंदस या हिन्दुओं की चर्चा की गई है और उन्हें सिंधु नदी घाटी प्रदेश का निवासी बताया गया है। डेरियस प्रथम के पर्सिपोलिस (518–515 ई0पू0) तथा नक्श–ए–रूस्तम (515

ई0पू0) शिलालेखों में ईरान की प्रजा के अन्तर्गत हिन्दुओं और गांधारों को रखा गया है। और 'हिन्दु' का उल्लेख साम्राज्य के एक प्रान्त के रूप में हुआ है। इस आधार पर यह धारणा बनाई जा सकती है कि डेरियस ने 519 ईसा पूर्व तथा 513 ईसा पूर्व के बीच भारतीय साम्राज्य पर विजय प्राप्त की थी। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने भी इस जीत की बुनियादी बातों का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि 'भारत ईरानी साम्राज्य का बीसवां और सबसे समृद्धशाली प्रांत था तथा इससे काफी आय होती थी। हेरोडोटस बताता है कि डेरियस ने स्कीलक्स के नेतृत्व में जहाजों का एक बेड़ा, सिंधु नदी के मुहाने की खोज के लिए रवाना किया था। वह जानना चाहता था कि यह नदी समुद्र में कहाँ गिरती है। भारत के सन्दर्भ में हेरोडोटस का जो विवरण है उससे स्पष्ट होता है कि सिंधु घाटी और राजपुताना का पश्चिमी भाग ही भारत माना जाता था। इतिहासकार कर्टियस भी लिखता है कि ''भारत के पूर्व में बालू ही बालू है। वे भारतवासी जिन्हें हम जानते हैं, एशिया वासियों में सबसे पूर्व मे बसने वाले लोग है।'' इस प्रकार डेरियस के अभियानों ने समस्त सिंधु घाटी को एकता के सूत्र में आबद्ध कर भारतियों के सम्पर्क को पाश्चात्य जगत से जोड़ दिया। उसका काल भारत में पारसीक आधिपत्य के चरमोत्कर्ष को अभिव्यक्त करता है। पूर्व और पश्चिम के इस सम्पर्क से सांस्कृतिक क्षेत्र में काफी प्रगति हुई।

4.4 क्षयार्ष या जरक्सीज – 486–465 ईसा पूर्व

डेरियस के पुत्र तथा उत्तराधिकारी क्षयार्ष या जरक्सीज ने गान्धार, शतगु और सिन्धु प्रदेशों पर अपना कब्जा कायम रखा। उसकी विशाल सेना में गांधार और 'इंडिया' के सैनिक भी भर्ती किए गए थे। पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि क्षयार्ष ने अपने साम्राज्य के एक विद्रोही प्रदेश का दमन किया जहाँ देवों को शरण मिली हुई थी। इस सन्दर्भ में गांधार क्षेत्र का अनुमान लगाया जा सकता है किन्तु क्षयार्ष की मृत्यु के बाद ईरानी साम्राज्य समाप्त हो गया। लेकिन गांधार–निवासी और इंडियन्स' ईरानी साम्राज्य की प्रजा बने रहे।

4.5 क्षयार्ष या जरक्सीज के उत्तराधिकारी और पारसीक साम्राज्य का अंत

जरक्सीज के बाद अर्तजरक्सीज (405–359 ईसा पूर्व) और डेरियस (335–220 ईसा पूर्व) के काल तक ईरानी सेना में भारतीय सैनिकों की भर्ती होती रही। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय तक ईरानी साम्राज्य का प्रभाव भारत पर बना रहा। अराबेला के युद्ध में डेरियस तृतीय की सेना को सिकन्दर ने बुरी तरह पराजित कर उसकी विशाल सेना को नष्ट ,भ्रष्ट

कर दिया और इसी पराजय के साथ भारत में पारसीक आधिपत्य समाप्त हो गया।

4.6 हखामनी आक्रमण का प्रभाव

भारत के समीपवर्ती प्रदेशों में लगभग दो शताब्दियों तक ईरानियों के राजनीतिक वर्चस्व से कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ें होंगे। सर्वप्रथम पूर्व और पश्चिम के इस सम्पर्क से सांस्कृतिक आदान प्रदान का मार्ग प्रशस्त हो सका। भारतीय विद्वान एवं दार्शनिक पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से परिचित हुए। स्काईलैक्स जैसे विद्वानों ने भारत की यात्रा की और हेरोडोटस और टेसियस जैसे इतिहासकारों अपने ग्रन्थों में भारत के बारे में लिखा जिससे इतिहास लेखन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त हो सकी।

ईरानी विजेताओं द्वारा भौगोलिक खोजों एवं व्यापारिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहन दिया गया। ईरानी लोग भारत से न केवल सोना ले गए वरन् कीमती लकड़ी और हाथी दाँत भी ले गये। भारतीय व्यापारी भी पश्चिम में गये और वहाँ से प्रभूत धन अर्जित किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से प्राप्त ईरानी सिक्कों (डारिक एवं सिग्लोई या शैकल्स) से ईरान के साथ होने वाले भारतीय व्यापार की पुष्टि हो जाती है।

भारतीय उपमहाद्वीप में खरोष्ठी लिपि के प्रचलन का श्रेय भी ईरानियों को दिया जाता है। जिसका विकास ईरानी ऐरामेइक लिपि से हुआ था। अशोक के अभिलेखों में दिपि (राजाज्ञा) और निविष्ट (लिखित) शब्द मिलते है। इस प्रकार सम्राट अशोक के अभिलेखों की भूमिका में ईरानी प्रभाव दिखाई देता है।

मौर्य प्रशासन एवं कला के विभिन्न तत्वों में ईरानी प्रभाव दृष्टिगत होता है। सम्राटों द्वारा ईरानी नरेशों की दरबारी शान–शौकत तथा कुछ परम्पराओं का अनुकरण किया गया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जन्म दिन पर बाल धोने की क्रिया ईरानी राजाओं से ही अपनाई। इसी प्रकार मंत्री परिषद के सभा कक्ष में पवित्र अग्नि को जलाना संभवतः ईरान से ही लिया गया था। शायद अशोक ने शिलालेखों पर शासनादेश खुदवाने की शैली दारा प्रथम के लेखों से ही ग्रहण की हो, क्योंकि अशोक एवं दारा के अभिलेखों की प्रारम्भिक पंक्तियों में समानता दिखाई देती है।कला के क्षेत्र में ईरानियों ने भारतीयों को पत्थर चमका देने का उत्तम ढंग सिखाया। भारतीय कला पर यूनानी प्रभाव ईरान के मार्ग से ही आया। अशोक कालीन स्तम्भों के घण्टी के आकृति के फलक और शेर या बैल वाले स्तम्भ शीर्ष भी ईरानी मूल के स्वीकार किये जाते हैं।

पारसीकों द्वारा विकसित क्षत्रप शासन प्रणाली को शकों और कुषाणों ने अपनाया और भारत को प्रदेशों में विभाजित करके ही अपने–अपने राज्यों को संगठित किया।

4.7सारांश

इस प्रकार यदि देखें तो भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में दो शताब्दियों तक आधिपत्य स्थापित करने वाले पारसीक साम्राज्य का राजनैतिक दृष्टि से कोई ठोस प्रभाव नहीं पड़ा। तथा उत्तरी भारत इस प्रभाव से पूर्णतया अछूता रहा। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने ईरान को प्रभावित किया और ईरानी संस्कृति से भारतीय जन प्रभावित हुए। परन्तु जब सिकन्दर का भारत पर आक्रमण हुआ उस समय तक भारतीय प्रांतों पर ईरान को साम्राज्य का प्रभाव नाम मात्र का रह गया था।

4.8 बोध प्रश्न

(1) हखामनी साम्राज्य के विषय में विवेचना कीजिए।

(2) हखामनी साम्राज्य के आक्रमण के प्रभावों का वर्णन कीजिए ।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- रैप्सन, ई.जे. : एन्शियंट इंण्डिया,
- स्मिथ वी.ए.: ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया
- रैप्सन, ई.जे : कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया

इकाई 5 सिकन्दर का आक्रमण और उसका प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 स्रोत

5.3 सिकन्दर का आक्रमण

5.4 सिकन्दर (अलेक्जेंडर) के आक्रमण का प्रभाव

5.5 सारांश

5.6 बोध प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में से एक में आपने लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उत्तर भारत में उभरे संघराज्यों एवं महाजनपदों की जानकारी प्राप्त की और एक में आपने राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण में भारत के उत्तर पश्चिम में हुए फारस या ईरान के आक्रमण और उसके प्रभाव के बारे में जाना। इस इकाई में आप भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र की परिस्थितियों को जानेगें कि किस प्रकार यह चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में सिकन्दर के आक्रमण और उससे सम्बन्धित घटनाओं के कारण जीवंत गतिविधियों का केन्द्र बन गया। सिकन्दर का आक्रमण भारतीय इतिहास की एक युग प्रर्वतक घटना है। सिकन्दर मात्र 19 महीने भारत में रहा लेकिन उसके आक्रमण के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परिणाम देखने को मिलते हैं।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पश्चिमोत्तर भारत में सिकन्दर के आक्रमण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सिकन्दर के बारे में जानकारी के स्त्रोतों और उनके महत्व का ज्ञान होगा।
- हाइडेस्पीज युद्ध और विभिन्न गणराज्यों से सिकन्दर के युद्ध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सिकन्दर के भारत पर आक्रमण में पीछे हटने के कारण को जान पाएगें

- सिकन्दर की मृत्यु के बाद यूनानियों की स्थिति का विश्लेषण कर पायेगें।

5.2 स्रोत

विभिन्न स्रोतों द्वारा अलेक्जेंडर युग के इतिहास की पुर्नरचना की जाती है। प्रारम्भिक तौर पर ये साक्ष्य प्रभावशाली और सक्षम दिखते हैं। एरियन और कर्टियस रूफस द्वारा लिखित इसकाल का लंबा इतिहास, प्लूटार्क द्वारा लिखित जीवनी, डायोडोरस सिसिलस के ग्रन्थ और स्ट्रैबो की जियोग्राफी ;ळमवहतंचीलद्ध के अंत के अनुभागों में इस सन्दर्भ की पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। परन्तु ये सभी वृतांत इस घटना के बहुत बाद में लिखे गये थे, इसलिए पर्याप्त होने के बावजूद इन प्राथमिक स्त्रोतों पर प्रश्न उठाया जाता है। इनमें से कुछ विवरणों पर यह आरोप लगाया जाता है कि यह काल्पनिक तथा बढ़ा–चढ़ा कर लिखे गए वृतांत है जो अपनी प्रमाणिकता सिद्ध करने में पर्याप्त नहीं है। फिर भी भारतीय इतिहास के संदर्भ में विश्वनीय एवं उपयोगी जानकारी प्रदान करने में ये साक्ष्य/स्त्रोत महत्वपूर्ण हैं। एरियन का ग्रन्थ अलेक्जेंडर युग के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है। वह एक साधारण सैनिक था जिसने सिकन्दर के सन्दर्भ में विश्वनीय स्त्रोतों का चयन करते हुए अपने लेखन को पूरा किया। उसका ग्रन्थ *हिस्ट्री ऑफ अलेक्जेंडर*, टॉलेमी, निर्याकस, एरिस्टोबुलस के

विवरणों पर आधारित था। क्योंकि ये सभी सिकन्दर के अभियानों के प्रत्यक्षदर्शी थे और कभी–कभी इन्होंने अभियान में सक्रिय भूमिका भी निभाई थी।

5.3 सिकन्दर (अलेक्जेंडर) का भारतीय अभियान

हखामनी आक्रमण के बाद पश्चिमोत्तर भारत ने महान् यूरोपीय विजेता सिकन्दर के नेतृत्व में मैसीडोन आक्रमण का सामना किया जो पहले की अपेक्षा अधिक भयावह सिद्ध हुआ।

सिकन्दर मैसीडोन के क्षत्रप फिलिप द्वितीय का पुत्र था। उसका जन्म 356 ईसा पूर्व हुआ था। फिलिप द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् 20 वर्ष की अवस्था में सिकन्दर मैसीडोन का राजा बना। प्रारम्भिक वर्षों में मैसीडोन एवं यूनान में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद उसने विश्व विजय की एक व्यापक योजना तैयार की। कहा जाता है कि सिकन्दर को विश्व विजेता बनने की प्रेरणा अपने पिता से ही मिली थी। अपनी विजय यात्रा में सिकन्दर ने एशिया माइनर सीरिया, मिस्र, बेबीलोन, बैक्ट्रिया, सोग्डियाना आदि को जीता। 331 ईसा पूर्व में सिकन्दर ने आरबेला के युद्ध में दारा तृतीय को पराजित किया। आरबेला के इस युद्ध में हखामनी साम्राज्य को ध्वस्त करने के बाद उसने अफगानिस्तान और बैक्ट्रिया को भी विजित किया और फिर सिकन्दर दूध तथा मधु की भूमि अर्थात्

भारत विजय की ओर निकल पड़ा। 327–326 ईसा पूर्व में जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय तक भारतीय प्रांतों पर ईरानी साम्राज्य का प्रभाव बहुत कम हो गया था। यूनानी स्त्रोतों के अनुसार उस समय उत्तर पश्चिम भारत छोटे–छोटे गणतंत्रों तथा राज्यों में बँटा हुआ था। पारस्परिक घृणा और प्रतिस्पर्धा के कारण वे किसी भी बाह्य शक्ति अथवा आक्रमणकारी के विरूद्ध संगठित नहीं कर सकते थे। डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी ने इस काल की 28 शक्तियों का उल्लेख किया है, जो पंजाब और सिंध के क्षेत्र में विधमान थी। इनके नाम इस प्रकार है–

(1) आस्पेशियन (अलिशंग–कुनार–बाजौर घाटी)–यह गणतन्त्रात्मक राज्य काबुल नदी के उत्तर के पहाड़ी भागों में विस्तृत था। आस्पेशियन लोग अश्वकों की ही शाखा माने जाते है।

(2) गुरेअन्स प्रदेश–इस गणराज्य की स्थिति आस्पेसियन और अस्सकेनियन (अश्वक) राज्यों के बीच थी।

(3) अस्सकेनोस राज्य–यह राज्य सिन्धु नदी तक फैला था और इसकी राजधानी मेगासा (मसग) थी।

(4) नीसा–यह पहाड़ी राज्य काबुल और सिंधु नदियों के बीच मरास पर्वत की तलहटी में बसा हुआ था। ऐसा माना जाता है कि सिकन्दर के आक्रमण से कुछ समय पूर्व यूनानी उपनिवेशवादियों ने इसकी स्थापना की थी।

(5) प्यूकेलाओटिस–प्यूकेलाओटिस शब्द संस्कृत के पुष्कलावति का ही रूपांतर है जो प्राचीन गान्धार राज्य का एक अंग था। ऐसा अनुमान है कि पेशावर से 17 मील दूर, उत्तर पूर्व में स्थित, मीर जियारत तथा चारसद्द नगर प्यूकेलाओटिस की राजधानी था।

(6) तक्षशिला–स्ट्रैबो के कथनानुसार, तक्षशिला का राजतन्त्र सिन्धु और झेलम के बीच बसा हुआ था। यह राज्य प्राचीन गान्धार राज्य का पूर्वी भाग था जो वर्तमान में पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित है।

(7) अरसेक्स राज्य–पाकिस्तान के हजारा जिले में स्थित यह राजतन्त्र तक्षशिला का ही एक भाग कहलाता था। इसे संस्कृत में ''उरशा'' भी कहते थे। कुछ खरोष्ठी अभिलेखों में ''उरशा'' नाम का उल्लेख मिलता है।

(8) अभिसार–स्ट्रैबो के अनुसार, तक्षशिला के उत्तर में पहाड़ों का मध्यवर्ती प्रदेश ही अभिसार राज्य कहलाता था। स्टीन ने इसके लिए 'दर्वाभिसार' शब्द का प्रयोग किया है और बताया है कि यह राज्य झेलम और चिनाब नदियों के

बीच स्थित था। संभवतः यह राज्य प्राचीन कम्बोज राज्य का ही एक भाग था।

(9) पुरू राज्य–यह राजतंत्र झेलम तथा चिनाब नदियों के बीच अवस्थित था जिसमें प्राचीन कैकेय भी सम्मिलित था।

(10) ग्लौगनिकाय प्रदेश–यह गणराज्य चिनाब नदी के पश्चिम में स्थित था। इसकी सीमा और पुरू राज्य की सीमा एक ही थी।

(11) गान्दारिस–गान्दारिस राज्य चिनाब और रावी नदी के बीच स्थित था। यह गान्धार महाजनपद का ही पूर्वी भाग था जहाँ राजा पुरू का कनिष्ठ भतीजा राज्य करता था।

(12) अद्रेस्ताई–यह गणराज्य रावी नदी के पूर्व में स्थित था और पिम्प्रमा इसकी राजधानी थी।

(13) कथाई अथवा कैथियन्स–इतिहासकार स्ट्रैबो ने इस गणराज्य की स्थिति झेलम और चिनाब के बीच बताई है। इस प्रदेश के निवासी अपने साहस और युद्धकला–प्रवीणता के लिए प्रसिद्ध थे।

(14) सोफाइटस (सौभूति) राज्य–यह भी संभवतः झेलम का तटवर्ती राज्य था। इतिहासकार कर्टियस के अनुसार, यह प्रदेश सोफाइटस द्वारा शासित था जो बहुत ही व्यवस्थित था।

(15) फेगेला–रावी और व्यास नदी के बीच फेगेला राज्य स्थित था।

(16) सिबोई–सिबोई लोग झांग नदी के शोरकोट–क्षेत्र में बसे हुए थे। उनका राज्य झेलम तथा चिनाब के संगम के नीचे स्थित था।

(17) अगलसोई–यह सिबोई का पड़ोसी गणराज्य था।

(18) सूद्रक (या आक्सीड्रके)–डायोडोरस और कर्टियस के अनुसार यह गणराज्य भी सिबोई का पड़ोसी था। यह व्यास नदी के तट पर बसा हुआ था। सूद्रक अथवा आक्सीड्रके शब्द संस्कृत के 'क्षुद्रक' का रूपान्तर है। एरियन ने अपने वर्णन में लिखा है कि यह जाति तथा इसके शासक देश के अगुआ है।

(19) मलोई (मालव)–रावी नदी के दोनों तटों पर मलोई अथवा मालवों का गणराज्य अवस्थित था। मालवों तथा क्षुद्रकों ने एक साथ संगठित होकर सिकन्दर का प्रतिरोध किया था।

(20) आबस्टनोई (अम्बष्ठ)–यह गणराज्य मालव देश के नीचे और चिनाब तथा सिन्धु नदियों के संगम के ऊपरी प्रदेश में अवस्थित था। इसका नाम संस्कृत के अम्बष्ठ अथवा आम्बष्ठ शब्द का ही रूपान्तर है। महाभारत में वर्णित

उत्तर भारत की जातियों में आम्बष्ठों का भी उल्लेख मिलता है। सिकन्दर के आक्रमण के समय आम्बष्ठ बहादुर तथा लोकतांत्रिक शासन–प्रणाली वाली जाति थी, जिनके पास स्वयं की एक विशाल सेना थी।

(21–22) जाथ्रोयी और ओसेडिओई–इन दोनों गणराज्यों का उल्लेख एरीयन के वर्णन में एक साथ मिलता है। ये गणराज्य चिनाब व रावी और सिन्धु व चिनाब के संगमों के बीच में विस्तारित थे।

(23–24) सोद्राई और मसनोई–ये दोनों गण जातियाँ उत्तरी सिंधु बहावलपुर और सिंधु की सहायक नदियों के संगम के नीचे निवास करती थी। सिकन्दर ने अपने आक्रमण के बाद वापस जाते समय सिकन्दरिया की स्थापना सिंधु के तट पर की थी।

(25) मोसिकनोस राज्य–यह राजतंत्र था, जिसमें वर्तमान सिन्ध प्रदेश का अधिकांश भाग शामिल था। स्ट्रैबो ने इस प्रदेश के निवासियों की विशेषताओं का वर्णन किया है।

(26) आक्सीकनोस राज्य–यह राजतंत्र था। जिसका क्षेत्र सिन्ध के पश्चिम में स्थित लरखान के आस–पास था।

(27) सम्बोस राज्य–मोसिकनोस राज्य के पास के पहाड़ी इलाकों का राज्य सम्बोस कहलाता था। दोनों राज्यों में आपसी शत्रुता थी।

(28) पलटेन (पाटल)–यह राजतंत्र सिन्धु नदी के डेल्टा क्षेत्र में स्थित था, जिसकी राजधानी पाटल थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय इस राज्य का शासक मोरेस था। यूनानी लेखकों के अनुसार यहाँ स्पार्टा के जैसी ही 'द्वै–राज्य–प्रथा'' थी।

ऊपर जिन 28 राज्यों की चर्चा की गई है उनमें पारस्परिक शत्रुता का उल्लेख सिकन्दर के समकालीन यूनानी लेखकों ने किया है। कर्टियस हमें बताता है कि तक्षशिला के राजा आम्भी की अबीसेयर्स तथा पुरू राज्य के शासकों से शत्रुता थी। एरियन के कथनानुसार पोरस एवं ओबीसेयर्स तक्षशिला के साथ–साथ अन्य पड़ोसी राज्यों के भी शत्रु थे एकबार इन दोनों राजाओं ने मिलकर मालवों और क्षुद्रकों पर आक्रमण किया था। एरियन यह भी बताता है कि पोरस तथा उसके भतीजे के आपसी सम्बन्ध खराब थे। सम्बोस और मसिकनोस के भी आपसी सम्बन्ध खराब थे। उस समय मगध पर नंद शासक शासन कर रहे थे परंतु उनके द्वारा भी इन छोटी रियासतों को अपने अधीन करने का प्रयास नहीं किया गया। अतः इस प्रकार के आपसी कलह, घृणा के वातावरण ने सिकंदर की राह आसान कर दी।

327–326 ईसा पूर्व में सिकंदर की सेना ने भारतीय अभियान के लिए सिंधु नदी को पार किया। उस समय तक्षशिला का राजा आम्भी था,उसने सिकंदर को अपना सर्मथन दिया और सिकंदर को बहुमूल्य वस्तुएं तथा हाथी भेंट किये। हिन्दुकुश के उत्तर में शशिगुप्त नामक एक अन्य भारतीय नरेश ने भी सिकंदर की अधीनता स्वीकार करते हुए उसकी सहायता का आश्वासन दिया। सिकंदर का प्रतिरोध केवल पुरू राज्य,(इसका राज्य झेलम तथा चिनाब नदियों के बीच अवस्थित था) अवेसीयर्स,मालव,क्षुद्रक तथा इनके पड़ोसियों ने ही किया। फिर भी आपसी द्वेष के कारण इसका कोई परिणाम नहीं निकला और अंत में इनकी हार हुई। 326 ईसा पूर्व में झेलम के तट पर राजा पुरू की वितस्ता या झेलम के प्रसिद्ध युद्ध में पराजय हुई। प्लूटार्क के कथनानुसार राजा पुरू से युद्ध में युनानी सेना के छक्के छूट गए और जब सिकंदर ने झेलम के बाद व्यास नदी की ओर प्रस्थान किया तब उसकी सेना ने लम्बे समय से युद्धरत रहने के कारण आगे बढ़ने से इंकार कर दिया, यूनानी सिपाही युद्ध के बाद थक चुके थे और घर वापस लौट जाना चाहते थे, अपने सैनिकों के उत्साह भंग से विवश होकर सिकन्दर ने सैनिकों की वापसी का आदेश दे दिया। सिकन्दर जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से वापस जाने का निश्चय किया। उसने व्यास और झेलम के बीच का सम्पूर्ण क्षेत्र पोरस के अधीन छोड़ दिया। आम्भि को झेलम के पश्चिम का प्रदेश, और अभिसार,अर्सेस राज्य के साथ काश्मीर के भू–भाग में शासन का अधिकार सौप दिया। सिकन्दर को चिनाब नदी पार कर झेलम तट पर मालव तथा क्षुद्रकों के संगठित प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इस मुकाबले में सिकन्दर बुरी तरह घायल हुआ परन्तु उसने मालव एवं क्षुद्रकों को परास्त कर दिया गया।

अपनी विजय के अन्तिम दौर में सिकन्दर ने पंजाब की नदियों के संगम के नीचे सिंधु नदी के निचले भागों को विजित किया। इस क्रम में सर्वप्रथम सोग्डोई के राजा द्वारा आत्मसर्मपण किया गया तत्पश्चात् मुषिक, सम्बोस ने भी सिकन्दर को अपना राजा स्वीकार कर लिया। इसके बाद सिकन्दर पाटल पहुँचा जहाँ पर उसने क्षत्रपी की स्थापना की। यह सिकन्दर की अंतिम विजय थी यहाँ से 325 ई0 पू0 में सितम्बर माह में सिकन्दर ने यूनान की ओर प्रस्थान किया। जेड्रोसिया होते हुए वह बेबीलोन पहुँचा जहाँ 323 ई0 पू0 में उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई।

5.4 सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव

सिकन्दर के आक्रमण के प्रभाव के सन्दर्भ में अलग–अलग मत देखने को मिलते है। यूनानी इतिहासकारों द्वारा सिकन्दर के आक्रमण का वृतांत बढ़ा–चढ़ा

कर लिखा गया। प्लूटार्क के कथनानुसार यदि सिकन्दर का आक्रमण न होता तो बड़े–बड़े नगर नहीं बसते। जूलियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने ही भारतीयों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया। उसका आक्रमण सभ्यता के प्रचार प्रसार से प्रेरित था।

जबकि दूसरी ओर इतिहासकारों का एक वर्ग इस आक्रमण को महत्वहीन मानता है जिसने तत्कालीन भारत के जन–जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डाला। उनके अनुसार सिकन्दर का आक्रमण आँधी की तरह क्षणिक था जो आया और चला गया। राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार भारत में अलेक्जेंडर का अभियान किसी शानदार सैन्य उपलब्धि का उदाहरण नहीं था, क्योंकि उसे किसी शक्तिशाली भारतीय सम्राट का सामना नहीं करना पड़ा। विन्सेट स्मिथ ने अनुसार 'भारत अपरिवर्तित रहा। युद्ध के घाव शीघ्र भर गए। जब धीर बैलों तथा उन्हीं के समान धीर किसानों ने अपना परिश्रम शुरू किया, तो उजड़े खेत फिर से लहलहा उठे। उन स्थानों पर जहाँ लाखों युद्ध में मारे गए थे वे फिर उमड़ते हुए जन समुदायों से भर गए। भारत का यूनानीकरण नहीं हुआ। वह अपना शानदार पृथकता का जीवन व्यतीत करता रहा और मेसोडोनियन झंझावत के प्रभाव को शीघ्र भूल गया। कोई भारतीय लेखक चाहे हिन्दू, बौद्ध अपवा जैन–सिकन्दर के आक्रमण और उसकी कृतियों का लेशमात्र भी संकेत नहीं करता।'

यद्यपि इतिहासकार के इस कथन से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत का यूनानीकरण नहीं हुआ परन्तु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सर्वप्रथम सिकन्दर के आक्रमण का स्थायी परिणाम यह हुआ कि भारत के उत्तर पश्चिम में यवन–बस्तियों की स्थापना हुई जिसमें काबुल के क्षेत्र में सिकन्दरिया, झेलम के पूर्वी तट पर बुकेफल, निकाइया तथा एलक्जेंड्रिया में कई यूनानी बस्तियाँ बसी। इन बस्तियों के माध्यम से भारत तथा यूनान के बीच घनिष्ठ सम्पर्क का मार्ग प्रशस्त हुआ, आवागमन के लिये समुद्री तथा स्थलीय मार्ग खुल गये जिसने दोनों देशों के बीच व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। भारत में मुद्रा निर्माण कला का विकास इस व्यापारिक सम्पर्क से जुड़ा हुआ है क्योंकि इसके बाद ही भारत में यूनानी मुद्राओं के अनुकरण पर 'उलूक शैली' के सिक्के ढाले गये।

यूनानी शासन पद्धति ने भारतीय शासन पद्धति को प्रभावित किया। यही वह समय था जब साम्राज्यिक (शाही) व्यवस्था हिन्दू–राजतन्त्र का स्थायी तत्व बन गई। मौर्य शासक अशोक ने भी अपने साम्राज्य के उत्तरी–पश्चिमी भाग में

यवन अस्तित्व को स्वीकार किया और (यवन तुषास्प जैसे) यवनों को प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया।

सिकन्दर के आक्रमण के परिणामस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत की छोटी–छोटी रियासतों का अस्तित्व समाप्त हो गया। और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय एकता को प्रोत्साहन मिला। चन्द्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश को उखाड़ फेकने के बाद बड़ी आसानी से सम्पूर्ण पंजाब और उत्तर भारत को एकजुट किया। उसने न केवल दक्षिणी राज्यों पर विजय प्राप्त की बल्कि चार क्षत्रपों–एरिया, अराकोशिया, गेड्रोशिया और पेरोपमिसेडिया को भी एकीकृत किया जिन्हे सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके प्रतिनिधि सेल्यूकस ने उसे सौंप दिया था। इस प्रकार इतिहासकार रायचौधरी के कथनानुसार पूर्वी भारत में यदि उग्रसेन महापद्म मगध की गद्दी पर चन्द्रगुप्त का अग्रज रहा तो उत्तर–पश्चिम भारत में सिकन्दर स्वयं सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का अग्रज शासक रहा।'

कला एवं ज्योतिष में भी भारतीयों ने यूनानियों से सीखा। निहाररंजन राय मौर्य कला के कुछ अंशों पर यूनानी प्रभाव की ओर हमारा ध्यानाकर्षित करते है। पश्चिमोत्तर प्रदेशों में विकसित गान्धार कलाशैली, यूनानी कला से ही प्रभावित थी। भारतीय दार्शनिकों के सम्पर्क में आने से यूनानी दर्शन भी लाभान्वित हुआ। यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस पर भारतीय दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

सिकन्दर के अभियान से यूरोप में भारत देश के विषय में जानकारी का विस्तार हुआ। सिकन्दर के अभियान में उसके साथ कई लेखक तथा इतिहासकार भी आए और भारत के विषय में लिखा। परिणामस्वरूप ये ग्रन्थ कालान्तर में इतिहास के पुर्ननिर्माण में सहायक बने। रोमिला थापर के अनुसार 'सिकन्दर के आक्रमण का सर्वाधिक उल्लेखनीय परिणाम न राजनीतिक था न सैनिक। उसका महत्व इस बात में निहित है कि वह अपने साथ कुछ ऐसे यूनानियों को लाया था जिन्होंने भारत के विषय में अपने विचारों को लिपिबद्ध किया और वे इसकाल पर प्रकाश डालने की दृष्टि से मूल्यावान हैं।'

5.5 सारांश

इस प्रकार पारस्परिक सम्पर्कों से दोनों देशों के ज्ञान–विज्ञान में प्रगति हुई। परन्तु वास्तव में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल स्वरूप पूर्णतया अप्रभावित रहा। इस सन्दर्भ में अंग्रेजी कवि मैथ्यू आरनाल्ड का कथन उल्लेखनीय है ''पूर्व (भारत) झंझा (विदेशी आक्रमण) के समाने धीर–गम्भीर घृणा के साथ नतमस्तक हुआ। सेना के गर्जन के निकल जाने के बाद वह (भारत)

पुनः विचार–सागर में निमग्न हो गया।

5.6 बोध प्रश्न

1 सिकंदर के आक्रमण और भारत पर उसके प्रभावों की चर्चा करें।

2 सिकंदर ने किस वर्ष भारत पर आक्रमण किया? उस समय प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति क्या थी?

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- टार्न, डब्लू . डब्लू रू एलेग्जेंडर दी ग्रेट, 1948
- मैक्रिडल, जे . डब्लू रू दी इन्वेजन ऑफ इंडिया बी एलेग्जेंडर,
- रायचौधरी, एच.सी. : प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,1971
- स्मिथ, बी.ए. : अर्लि हिस्ट्रि ऑफ इण्डिया

इकाई 6 मौर्य साम्राज्य–स्रोत एवं उत्पत्ति, चन्द्रगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार की उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मौर्य साम्राज्य के अध्ययन के स्रोंत

6.3 मौर्य साम्राज्य की उत्पत्ति

6.4 चन्द्रगुप्त मौर्य

6.4.1 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ

6.4.2 चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रशासन

6.5 बिन्दुसार

6.5.1 बिन्दुसार की उपलब्धियाँ

6.6 सारांश

6.7 बोध प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के दौरान, महापद्मनंद के अधीन मगध एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरा। नंदों के उत्तराधिकारी, अर्थात् मौर्यों के अधीन मगध का विकास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। मौर्य साम्राज्य के उदय को भारतीय इतिहास की एक अपूर्व घटना के रूप में देखा जाता है जब भारत में राजनैतिक स्तर पर पहली बार एकता की स्थापना हुई। सुदूर उत्तर पश्चिम तक फैले उपमहाद्वीप का एक बड़ा भू–भाग बृहत सत्ता के अधीन आ गया, परिणामस्वरूप देश की राजनीतिक, सांस्कृतिक और भौतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सका।

इस इकाई में आप मौर्य साम्राज्य और भारतीय राजनीतिक इतिहास में इसके महत्व से परिचित होगें। इस इकाई में मुख्य ध्यान चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार की राजनीतिक उपलब्धियों और प्रशासन व्यवस्था के प्रमुख पहलुओं पर होगा। अगली इकाई में मौर्य सम्राट अशोक उसके धम्म के अनूठे पहलुओं पर

ध्यान केन्द्रित करेगें।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगी

- प्रथम अखिल भारतीय राजवंश की उत्पत्ति, स्थापना और उससे सम्बन्धित स्रोतों के बारे में।
- मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य, उसके प्रारम्भिक जीवन, उपलब्धियों और उसकी प्रशासनिक संरचना के बारे में।
- बिन्दुसार के जीवन तथा उसकी उपलब्धियों के बारे में।

6.2 मौर्य काल के अध्ययन के स्रोत

मौर्य साम्राज्य और उसके काल के अध्ययन के लिए उपलब्ध स्रोत, इसके पूर्व के किसी भी काल की अपेक्षा अधिक वैविध्य रखते हैं। इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इनमें से कई स्त्रोत समीक्षाधीन अवधि के समकालीन है। पहले के किसी भी काल की तुलना में मौर्यकाल के अध्ययन के भौतिक प्रमाण भी अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इनमें अशोक के शिलालेखों के साथ–साथ सिक्कें, मूर्तिकला, स्थापत्य के पर्याप्त अवशेष आज भी बचे है।

मौर्य शासकों और उनके काल के पाठ्यात्मक स्रोतों में मेगस्थनीज की इण्डिका और कौटिल्य का अर्थशास्त्र सबसे महत्वपूर्ण है। मेगस्थनीज, सेल्युकस का राजदूत था जिसे चन्द्रगुप्त और सेल्युकस में हुई संधि के पश्चात् मौर्य दरबार में भेजा गया था। उसकी कृति 'इण्डिका' चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति और उसकी भारत यात्रा से जुड़े अनुभवों का संकलन है। हालांकि इण्डिका से सम्बन्धित मूल संकलन अब उपलब्ध नहीं है। इसका कुछ अंश डियोडोरस, स्ट्रैबो, एरियन और प्लिनी जैसे बाद के लेखकों की रचनाओं के उद्धरण में उपलब्ध है।

साहित्यिक स्रोतों की श्रेणी में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' भी एक लोकप्रिय रचना है। परम्परागत रूप से मान्यता है कि अर्थशास्त्र की रचना, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में कौटिल्य ने की थी, जिसे विष्णुगुप्त या चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री थे और उन्होंने नंदों को अपदस्थ करने में चन्द्रगुप्त मौर्य की मदद की थी। अर्थशास्त्र,राजशास्त्र पर लिखित एक विषद् रचना है। 15 अधिकरण एवं 180 प्रकरणों में विभाजित यह पुस्तक एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य, इसके साम्राज्य तथा पाटलिपुत्र की कहीं भी चर्चा नहीं की गई है बल्कि साम्राज्य के प्रशासन तंत्र उसकी संरचना,

अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों तथा अन्य मिश्रित विषयों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

दिव्यावदान, अशोकावदान, दीपवंश, महावंश जैसे बौद्ध ग्रन्थों में भी मौर्यो का उल्लेख मिलता है। उत्तरकालिक पुराणों में दी गई वंशावलियों में भी मौर्य राजाओं का उल्लेख है। लेकिन विभिन्न पुराणों में इस सन्दर्भ में एकरूपता का अभाव है। अन्य पाठ्यात्मक स्रोतों में भद्रबाहू का कल्पसूत्र, विशाखदत्त की मुद्राराक्षस भी महत्वपूर्ण है।

मौर्यकालीन इतिहास के बारे में महत्वपूर्ण स्रोत निःसन्देह अशोक के अभिलेख है। अशोक के लगभग 40 अभिलेख भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुए है। अशोक के अभिलेखों से भारतीय युगान्तर की शुरूआत मानी जाती है। इससे सम्राट की सोच, उसके विचारों और उसके शासन की समस्त घटनाओं का प्रमाणिक विवरण प्राप्त होता है। अधिकांश लेख प्राकृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि 110में लिखे गए है। केवल मानसेहरा एवं शहबाजगढ़ी में प्राकृत भाषा के साथ खरोष्ठी लिपि भी का प्रयोग किया गया है। कुछ शिलालेख ग्रीक तथा आरमेइक लिपि में भी प्राप्त हुए हैं।

अशोक के अभिलेख, जो धम्म लिपि (धर्मपरायणता) के रूप में निर्दिष्ट किए गए थे, इसे दो प्रमुख समूहों में बांटा गया है। इसके अन्तर्गत–

(1) चौदह प्रमुख शिलालेख

(2) दो पृथक शिलालेख / कलिंग शिलालेख

(3) दो लघु शिलालेख

(4) सात स्तम्भ लेख

(5) लघु स्तम्भ लेख

(6) बैराट (राजस्थान) से प्राप्त शिलालेख

(7) गया, बिहार के पास बराबर पहाड़ियों पर उत्कीर्ण लेख

प्रमुख शिलालेख और स्तम्भ लेख कतिपय संशोधनों के साथ विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इसके साथ–साथ विविध लघु शिलालेख, लघु स्तम्भ लेख तथा गुहा लेख भी पाए गए है। इनमें से लघु शिलालेखों को सबसे पुराना स्वीकार किया जाता है, इसके बाद के क्रम में प्रमुख शिलालेखों एवं स्तम्भ लेखों की तिथि निर्धारित की गई है।

मौर्य काल के अध्ययन के अन्य भौतिक स्रोतों में मौद्रिक साक्ष्य और पुरातात्विक अवशेष शामिल किये जा सकते है। भारत के प्राचीनतम, आहत

सिक्के ज्यादातर मौर्यकाल में ही जारी किये गए। इन सिक्कों में एकरूपता देखने को मिलती है क्योंकि ये सिक्कें केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए थे। अर्थशास्त्र में विविध मूल्यों वाले चाँदी के सिक्कों का नाम पण तथा ताम्र सिक्कों का नाम माषक मिलता है। इन सिक्कों पर मौर्य राजाओं से जुड़े कुछ प्रतीक चिन्ह जैस–वेदिका में वृक्ष, मेहराब में अर्धचन्द्र तथा मयूर का अंकन मिलता है। निश्चित रूप से इन प्रतिक चिन्हों का राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व उस युग में रहा होगा।

मौर्यो की राजधानी पाटलिपुत्र में कुम्रहार तथा बुलन्दीबाग से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य महत्वपूर्ण है। इस काल से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण स्थलों में तक्षशिला, मथुरा और भीटा का नाम आता है। ये खोजें उच्चस्तरीय पुरावशेषों का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें नगरीय जीवन की विविधताओं को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। अतः मौर्य काल के इतिहास की व्यापक और सार्थक समझ साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के संयुक्त विश्लेषण पर टिकी हुई है।

6.3 मौर्य साम्राज्य की उत्पत्ति

मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसने 321/324 ईसा पूर्व में नंद वंश की सत्ता का अंत कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। पुराणों के अनुसार मौर्यों ने कुल 137 वर्षों तक शासन किया, अर्थात् मौर्य शासकों का शासनकाल 187 ईसा पूर्व तक चला। यदि अनुमानित तिथियों को स्वीकार किया जाए तो कहा जा सकता है कि मौर्य काल चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की पहली तिमाही तक भारतीय एतिहासिक पटल पर विद्यमान रहा।

भारतीय इतिहास के अनेक महान राजाओं, की तरह चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्वजों, उनकी वंशावली और जाति के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से मालूम नहीं है। इस सन्दर्भ में अलग–अलग ग्रन्थों में अलग–अलग विवरण मिलता है। दीघनिकाय, महावंश, दीव्यावदान और महापरिनिब्बानसुत्त जैसे बौद्ध ग्रन्थ मौर्यों का सम्बन्ध मोरिय वंश के क्षत्रियों से बताते है, जो पिपहली वन में शासन करते थे। जैन साहित्य हेमचन्द्र कृत परिशिष्ट पर्वर्न और आवश्यकसूत्र की हरिभद्रीया टीका में उल्लिखित है कि चन्द्रगुप्त की माता मयूर पोषकों के किसी ग्राम के मुखिया की बेटी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में उसका सम्बन्ध शूद्र अथवा निम्नकुल से स्थापित किया गया है। मुद्राराक्षस में नन्दनवय कहा गया है और उसे समाज की निचली जाति में जन्मा बताया गया है। क्षेमेन्द्र और सोमदेव जैसे पूर्वमध्यकालीन लेखकों ने उसे पूर्व नन्दसुत (नंदों का वैधानिक पुत्र) कहा है। विष्णु पुराण के भाष्यकार धुंडीराजा के मतानुसार चन्द्रगुप्त नंद शासक सर्वार्थसिद्धि और मुरा, जो

एक वृषला अथवा आखेटक की बेटी थी, की ज्येष्ठ संतान था। मुरा से जन्मा होने के कारण वह चन्द्रगुप्त मौर्य कहलाया, जो आगे चलकर वंशवाद का प्रतीक बन गया। विदेशी लेखकों ने चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित जो विवरण दिए है उससे ज्ञात होता है कि इन लेखकों के अनुसार 'सैन्ड्रोकोटस' या एंड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त) किसी राजघराने का राजकुमार नहीं था।

उपर्युक्त विवरणों की आलोचनात्मक समीक्षा के बाद बौद्ध और जैन ग्रन्थों के विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक संतोषजनक प्रतीत होते हैं। उसको निम्न जाति का मानने का कोई ठोस आधार नहीं है। साथ ही बौद्ध ग्रन्थ विशेषकर महापरिनिब्बानसुत्त प्राचीनतम बौद्ध ग्रन्थ है, अतः इसकी सामग्री अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय मानी जा सकती है, जिसमें मौर्यो को क्षत्रिय वंश का स्वीकार किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि मौर्यो का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था।

6.4 चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक जीवन भी अंधकारपूर्ण है। प्राचीन ग्रन्थ इस बात पर सहमत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का संबंध मयूर–पोषकों के वंश से था जो विन्ध्य–वनों के शिकारी या पशुपालक भी थे। नंदों के क्रूर शासनकाल में, जब मगध की प्रजा उनके शासन से असन्तुष्ट थी, तब चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में जनता को नंदो के शासन से मुक्ति मिली और मौर्यवंश लोकप्रिय हो गया परम्पराओं के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम पंजाब को हस्तगत किया तथा फिर पूरब की ओर बढ़कर अंततः मगध पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। पुराणों के साथ–साथ मिलिन्दपन्ह, मुद्राराक्षस, महावंशटीका तथा परिशिष्टपर्वन जैसे ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त और नंद शासक के बीच हुए संघर्ष की चर्चा मिलती है। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के विद्वान ब्राह्मण चाणक्य, कौटिल्य अथवा विष्णुगुप्त की सहायता से नंद सम्राट घनानंद को अपदस्थ कर दिया।

इन घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में मेसीडोन के सिकन्दर द्वारा भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों पर किए आक्रमण को देखा जा सकता है। यूनानी स्रोत बताते है कि चन्द्रगुप्त और सिकन्दर के बीच एक मुलाकात हुई थी और उसने सिकन्दर से मगध के अत्याचार भरे शासन को समाप्त करने की बात की। जस्टिन के अनुसार सिकन्दर उसकी स्पष्टवादिता से बड़ा रूष्ट हुआ और उसका वध करने की आदेश दे दिया, किन्तु शीघ्रता से भागकर उसने अपनी जान बचाई और बाद में चन्द्रगुप्त ने भारत को यूनान तथा नंदो के अत्याचारी शासन से मुक्त कराने का निश्चय किया और वह उसमें सफल रहा।

6.4.1 चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने विशाल क्षेत्रों को जीतकर अपना साम्राज्य विस्तार किया। उसे नंद वंश के उन्मूलन और पंजाब की मुक्ति का ही श्रेय नहीं मिलता बल्कि प्लूटार्क हमें बताता है कि चन्द्रगुप्त ने 6 लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को अपने साम्राज्य का हिस्सा बना लिया।

यूनानी स्रोतों में सिकन्दर के साम्राज्य के पूर्वी प्रान्त के उत्तराधिकारी सेल्युकस तथा चन्द्रगुप्त के बीच हुए युद्ध का उल्लेख मिलता है। जो लगभग 301 ईसा पूर्व में लड़ा गया और जिसकी समाप्ति एक संधि के साथ हुई। पुराने ग्रन्थकार इस लड़ाई का कोई विशेष विवरण नहीं देते है वे केवल लड़ाई का परिणाम और संधि के बारे में बताते हैं। इस संधि की शर्तो के द्वारा अराकोशिया (दक्षिण—पूर्व अफगानिस्तान का कंधार क्षेत्र), गेड्रोशिया (दक्षिणी बलूचिस्तान), तथा पारोपोमिसदाई (भारतीय उपमहाद्वीप और अफगानिस्तान के बीच का भू—भाग) चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में शामिल हुआ और बदले में 500 हाथी उसने सेल्युकस को उपहार में दिये। संधि के तहत, भारतीयों और यूनानियों के बीच अंतर्विवाह के अधिकारों को भी स्वीकार किया गया। युद्ध के पश्चात् सीरियाई नरेश तथा भारतीय शासकों के बीच सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त के दरबार में अपने राजदूत मेगस्थनीज को भेजा, जिसने तत्कालीन भारत पर इण्डिका नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी।

चन्द्रगुप्त ने न केवल उत्तर पश्चिम भारत और अफगानिस्तान के एक बड़े भू—भाग पर बल्कि गंगा के मैदानों, पश्चिमी भारत और दक्कन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख पश्चिमी भारत में सुराष्ट्र तक के प्रदेश पर चन्द्रगुप्त के अधिकार को प्रमाणित करता है। जिसके अनुसार चन्द्रगुप्त के शासनकाल में सुराष्ट्र में सुदर्शन झील का निर्माण करवाया गया था।

अशोक के सिंहासनारूढ़ होने तक मौर्य साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में कर्नाटक तक के भू—भाग में हो चुका था। विद्वानों का मानना है कि तार्किक रूप से साम्राज्य विस्तार के क्रम में हुए सभी बड़े संघर्ष चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में ही पूरे हो चुके थे। जैन और तमिल स्त्रोत भी चन्द्रगुप्त की दक्षिण भारतीय विजय का संकेत देते हैं। चन्द्रगुप्त द्वारा विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के दक्षिण में किए गए विजय अभियानों का उल्लेख ग्रीको रोमन स्रोतों में भी मिलता है। प्लूटार्क और जस्टिन ने पूरे 'इण्डिया' को चन्द्रगुप्त के अधीन बताया है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं है की इण्डिया से इन लेखको का क्या तात्पर्य था।

इस प्रकार केरल, तमिलनाडु और उत्तर पूर्व भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर विशाल मौर्य साम्राज्य का निर्माणकर्ता चन्द्रगुप्त मौर्य ही था।

6.4.2 चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रशासन

चन्दग्रुप्त मौर्य एक साम्राज्य निर्माता, महान विजेता ही नहीं था वरन् एक महान प्रशासक के गुण भी उसमें विद्यमान थे। उसके नेतृत्व में भारतवर्ष ने पहली बार राजनीतिक केन्द्रिकरण के दर्शन किये और चक्रवर्ती सम्राट की परिकल्पना को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। उसकी शासन व्यवस्था के कुछ तत्व ईरानी और यूनानी शासन से प्रभावित थे, तथापि वह अपने पर्याप्त अंशों में अद्भुत और मौलिक थी।

चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध की महत्वपूर्ण जानकारी यूनानी राजदूत मेगस्थनीच के विवरण और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलती है जिसकी पुष्टि अशोक के अभिलेखों में हो जाती है। अभिलेखों मे रूद्रादामन का जूनागढ़ अभिलेख भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना के दो मुख्य भाग थे–(1) राजा (2) महामात्र, अमात्य तथा सचिव।

सम्राट–राजा सम्पूर्ण राज्य का प्रधान शासक होता था जिसमें सभी अधिकार और शक्तियाँ निहित थीं यद्यपि सम्राट स्वयं की दैवी उत्पत्ति में विश्वास नहीं करता था। परन्तु वह ईश्वर से वरदान प्राप्त और उसका प्रिय पात्र माना जाता था। राजा के अधिकार अत्यन्त व्यापक थे वह सैनिक, न्यायिक, वैधानिक तथा कार्यकारी मामलों में सर्वोच्च अधिकारी था। इस प्रकार वह सत्ता सम्पन्न और शक्तिमान था परन्तु वह प्रजा के पालन के लिए उत्तरदायी था। समकालीन ग्रन्थों में राजा के आवश्यक गुणों का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ–साथ राजा के कर्तव्यों का भी उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है। मेगस्थनीज के विवरण और अर्थशास्त्र के उल्लेखों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि मौर्य सम्राट द्वारा अपने विशेष कर्तव्यों का पालन किया जाता था। मेगस्थनीज हमें बताता है कि राजा सार्वजनिक कार्यों और प्रजा के प्रतिवेदनों के लिए सदैव सुलभ रहता था। इसी प्रकार का विवरण कौटिल्य भी देता है–प्रजा का सुख ही राजा का सुख है और प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण है.. ....राजा को अपनी प्रजा की प्रत्येक स्थिति में बेईमान शिल्पकार, व्यवसायी, चोर, हत्यारों, तथा प्राकृतिक आपदाओं में रक्षा करनी चाहिए। राजा को असहाय बच्चों, वृद्धजनों, महिलाओं और संकटग्रस्त लोगों को संरक्षण देना चाहिए।

सम्राट मुख्यतः विशाल राजभवन में निवास करता था जहाँ उसकी राजसभा ऐश्वर्य एवं शान–शौकत से पूर्ण होती थी। राजा की व्यक्तिगत सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। उसकी सुरक्षा के लिए धर्नुधारी अंगरक्षकों की नियुक्ति की जाती थी। राजा की विष, अग्नि और सर्पदंश से सुरक्षा के लिए भी विशेष प्रबंध किया गया था।

इस प्रकार मौर्य सम्राट का राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर पूर्ण नियंत्रण था।

अमात्य मंत्री तथा मंत्रिपरिषद–चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन में उच्चस्थ अधिकारियों अर्थात् अमात्य या सचिव के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। यूनानी लेखकों ने इन्हें सभासद या निर्धारक की संज्ञा दी है। जो सार्वजनिक कार्यो में राजा की सहायता करते थे। प्रशासन के प्रमुख पदाधिकारियों के चयन में इनके परामर्श का महत्वपूर्ण स्थान था। राजा अपने अमात्यों में से योग्य को मंत्री नियुक्त करता था।

अर्थशास्त्र मे स्पष्टतः उल्लिखित है कि राज्य का संचालन मंत्रियों की सहायता के बिना संभव नहीं है, अतः राजा को मंत्रियों को नियुक्त करके कार्यों को सम्पन्न कराना चाहिए। मंत्रिगण मंत्रिपरिषद के प्रमुख कार्य–अनारब्ध कार्यों को प्रारम्भ करना, आरम्भ हो चुके कार्यों को पूरा करना, पूरे हो चुके कार्यों में सुधार करना तथा राजकीय आदेशों का कठोरता से पालन करवाना बताए गए हैं।

केन्द्रीय अधिकारी तन्त्र–अर्थशास्त्र से मौर्यकालीन केन्द्रीय प्रशासन पर प्रकाश पड़ता है। सम्राट और उसकी सलाहकार समितियों के अतिरिक्त बहुत सारे अधिकारी थे जिनके अधीन महत्वपूर्ण संविभाग होता था। प्रत्येक विभाग को तीर्थ की संज्ञा दी गई थी। अर्थशास्त्र में **समाहर्ता** (राजस्व वसूलने वाला प्रधान अधिकारी जो आय–व्यय का विस्तृत ब्यौरा रखता था), **सन्निधाता** (यह राजकीय कोषाधिकरण का प्रधान होता था), **सेनापति** (युद्ध विभाग का मंत्री), **युवराज** (राजा का उत्तराधिकारी), **प्रदेष्टा** (फौजदारी न्यायालय का न्यायधीश), **कर्मान्तिक** (देश के उद्योग धन्धो का प्रधान निरीक्षक),**व्यवहारिक**(दीवानी न्यायालय का न्यायधीश), मन्त्रिपरिषदाध्यक्ष (मंत्रिपरिषद का प्रधान), **दण्डपाल** (सेना की सामग्रियों को एकत्रित करने वाला अधिकारी), का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में **दौवारिक** (महल के कर्मचारियों का प्रधान) तथा **अन्तर्वशिक** (राजप्रसाद के सुरक्षाकर्मियों का प्रधान) को मिलाकर कुल 18 तीर्थों का उल्लेख किया गया है जो उच्च श्रेणी के अधिकारी थे।

इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में अध्यक्षों (विभागीय प्रधानों), और उनके कार्यो का भी उल्लेख किया गया है। जिनके अधीन कोई न कोई सरकारी विभाग होता था। इन अध्यक्षों को ही संभवतः यूनानी लेखकों ने मजिस्ट्रेट कहा है। इनमें से कुछ प्रमुख के नाम इस प्रकार है—पण्याध्यक्ष (वाणिज्य का प्रधान), गणिकाध्यक्ष (वेश्याओं का निरीक्षक), सीताध्यक्ष (राजकीय कृषि विभाग का अध्यक्ष), अकाराध्यक्ष (खानों का अध्यक्ष), कोष्ठागाराध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष (वन तथा उसकी सम्पदा का अध्यक्ष), आयुधागाराध्यक्ष, शुल्कध्यक्ष, वीवीताध्यक्ष मुद्राध्यक्ष, नवाध्यक्ष, पत्तनाध्यक्ष, संस्थाध्यक्ष इत्यादि। इन अध्यक्षों की मौर्य प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। इनकी नियुक्ति 1000 पण वार्षिक वेतन पर होती थी।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विभागीय प्रधान भी अमात्यों से ही नियुक्त किये जाते थे। अतः कहा जा सकता है कि प्रथम श्रेणी के अमात्य मन्त्रिणः के सदस्य, द्वितीय श्रेणी के अमात्य मन्त्रिपरिषद के सदस्य और तृतीय श्रेणी के अमात्य विभागीय प्रधान होते थे।

प्रान्तीय शासन—चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित विशाल मौर्य साम्राज्य निश्चित रूप से प्रान्तों में विभाजित रहा होगा लेकिन उसके साम्राज्य के प्रान्तों की निश्चित संख्या हमको ज्ञात नहीं है। उसके पौत्र अशोक के शिलालेखों में चार प्रांतों का उल्लेख किया गया है—उत्तरी प्रांत जिसकी राजधानी तक्षशीला थी, दक्षिणी प्रांत जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी, पश्चिमी प्रांत जिसकी राजधानी थी उज्जयिनी और पूर्वी प्रांत जिसकी राजधानी तोसली थी ।

उपर्युक्त प्रान्तों में से उत्तरी प्रांत प्राच्य तथा पश्चिमी प्रांत निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य के समय विद्यमान थे। स्त्रोतों के आधार पर दक्षिणी प्रांत को भी उसके साम्राज्य का अंग स्वीकार किया जा सकता है। इन प्रान्तों के राज्यपाल पद पर प्रायः शाही राजकुमारों को नियुक्त करने की परम्परा थी। परन्तु कभी—कभी अन्य योग्य व्यक्तियों को भी यह पद दिया जाता था। चन्द्रगुप्त के काल में पुष्यगुप्त वैश्य काठियावाड़ का राज्यपाल था। अर्थशास्त्र के विवरणानुसार राज्यपाल को 12000 पण वार्षिक वेतन मिलता था और ये अपना प्रशासन अपनी मंत्रीपरिषद, अमात्यों और अध्यक्षों की सहायता से चलाते थे।

मण्डल, जिला और नगर प्रशासन—चन्द्रगुप्त के प्रशासन में प्रान्तों का विभाजन कई मण्डलों में किया गया था जिनकी समता आधुनिक कमिश्नरियों से स्थापित की जा सकती है। मण्डल के प्रधान अधिकारी को प्रदेष्टा अथवा प्रादेशिक कहा जाता था जिनका प्रमुख कार्य प्रांतीय प्रशासन पर नजर रखना और प्रत्येक पांच साल मे साम्राज्य का दौरा करना और आडिट करना था। मण्डल जिलों में विभाजित था जिसे 'आहार' या 'विषय' कहा जाता था। जिलों

के अन्तर्गत स्थानीय नामक प्रशासनिक इकाई होती थी जिसमें 800 ग्राम होते थे। स्थानीय के अन्तर्गत 'दो द्रोणमुख' होते थे। जिसमें प्रत्येक में 400–400 ग्राम होते थे। द्रोणमुख के नीचे खार्वटिक (प्रत्येक में 200 ग्राम) तथा खर्वाटिक के अन्तर्गत 20 संग्रहण (प्रत्येक में 10 ग्राम) होते थे। इन सभी प्रशासनिक इकाईयों के प्रधान, न्यायिक, कार्यकारी और राजस्व सम्बन्धी कार्यो को युक्त नामक पदाधिकारी की सहायता से सम्पादित करते थे।

मौर्यकालीन नगर प्रशासन के कई सन्दर्भ मेगस्थनीज ने प्रस्तुत किए है। नगर शासन का संचालन एक सभा के द्वारा होता था, जिसका प्रमुख 'नागरक' अथवा 'पुरमुख्य' कहलाता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन की नगर परिषद को छह उप–परिषदों या समितियों में विभाजित किया है जिसमें प्रत्येक मे पाँच सदस्य होते थे।

पहली समिति–उद्योग एवं शिल्प की देखभाल के लिए उत्तरदायी थी। इसका कार्य मजदूरी और कार्य का संतुलन स्थापित करना था।

दूसरी समिति नगर में आने वाले विदेशियों की देखभाल का कार्य करती थी। अर्थात् विदेशियों के रहने, भोजन, आराम और सुरक्षा की व्यवस्था करना इस समिति का कार्य था। तीसरी समिति के जिम्मे जन्म और मृत्यु के पंजीकरण का कार्य था।

चौथी समिति का सम्बन्ध व्यापार वाणिज्य से था। वस्तुओं का सही वजन, नाप–तौल और बाजारों का निरीक्षण आदि कार्य इस समिति की जिम्मेदारी था।

पाँचवीं समिति निर्मित वस्तुओं की देखभाल के लिए उत्तरदायी थी। निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण, उनकी बिक्री का प्रावधान तथा नए और पुराने सामान की गुणवत्ता व कीमत निर्धारण का कार्य यह समिति करती थी।

छठी समिति का कार्य बेची गई वस्तुओं पर कर वसूलना था जिसकी दर 1/10 थी।

यद्यपि अर्थशास्त्र में इन समितियों का उल्लेख नहीं है। लेकिन समितियों द्वारा सम्पादित कार्यों का वर्णन इसमें मिलता है। जैसे पण्याध्यक्ष चौथी समिति के कार्यों को करता था, करों का संग्रह (छठी समिति) शुल्काध्यक्ष की जिम्मेदारी थी, और जन्म–मृत्यु का पंजीकरण गोप नामक अधिकारी का कार्य था।

नगर प्रशासन का स्वरूप विस्तृत और सुनियोजित था। कौटिल्य ने नगरपालिका प्रशासन का वर्णन किया है। जिसके अनुसार विभिन्न अपराधों के लिए विभिन्न प्रावधान निर्धारित किए गए थे। कानून सर्वोपरी था। गलत कार्य

करने के लिए पुलिस को सजा देने का प्रावधान था। इसी प्रकार नियमों के उल्लघंन के दोषी पाए गए नागरिकों को भी दण्डित किया जाता था।

ग्राम प्रशासन–अर्थशास्त्र के अनुसार सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई ग्राम होता था। इसका प्रधान ग्रामणी होता था जो ग्रामनिवासियों द्वारा निर्वाचित राज्यकर्मचारी था। ग्रामिक वेतन भोगी नहीं होता था। अर्थशास्त्र में 'ग्रामवृद्धपरिषद' का उल्लेख आया है जिसमें गाँव के प्रमुख व्यक्ति होते थे जो ग्राम प्रशासन में ग्रामणी की सहायता करते थे। ग्रामीण प्रशासन का संचालन बड़ी कुशलता से किया जाता था।

न्याय प्रशासन–मौर्यो के एकतंत्रात्मक शासन में राजा न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। राजा के दरबार के अलावा सम्पूर्ण साम्राज्य के विभिन्न नगरों तथा जनपदों में भी अदालतें स्थापित थी। जिसमें व्यवहारिक महामात्र (नगरों में) और 'राजूक' (देहातों में) न्यायिक कार्यों को करते थे। यूनानी लेखकों ने विदेशियों के मामलों पर विचार करने वाली अलग अदालतों का उल्लेख किया है। गाँव के छोटे–छोटे मामले गाँव के मुखियों या बुजुर्गों द्वारा ही तय कर लिये जाते थे। तत्कालीन विवरणों से ज्ञात होता है कि उस समय दण्ड विधान अत्यन्त कठोर थे। सामान्य अपराधों में आर्थिक जुर्मानों का प्रावधान था। इस सन्दर्भ में कौटिल्य ने पूर्व साहस दण्ड (जुर्माने की दर 48–96 पण तक थी) मध्यम साहस दण्ड (200–500 पण) और उत्तम साहस दण्ड (500–1000 पण) का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कैद, अंग–भंग और मृत्युदण्ड का भी प्रावधान था। गलत बयान लिखने, निरपराध व्यक्ति को सजा देने, अपराधी को छोड़ देने के दोष में न्यायधीशों एवं न्यायालय के कर्मचारियों के लिए भी दण्ड का प्रावधान था।

गुप्तचर व्यवस्था–राजाओं और मजिस्ट्रेटों द्वारा प्रशासित मौर्य साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। गुप्तचरों को अर्थशास्त्र में गूढ़ पुरूष कहा गया है। यूनानी लेखकों ने इन्हें निरीक्षक तथा ओवरसिर्यस कहा है। इस पद पर अधिक विश्वस्त और कार्यकुशल लोगों की नियुक्ति की जाती थी। वे छद्‌मवेषों में भ्रमण किया करते थे तथा दिन–प्रतिदिन के कार्यों की सूचना सम्राट को देते थे। संस्था तथा संचरा नामक दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है जिसमें पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों की भी नियुक्ति की जाती थी। गुप्तचरों द्वारा गलत सूचना देने पर उन्हें दण्डित भी किया जाता था और उन्हें पद से मुक्त कर दिया जाता था।

गुप्तचरों के अतिरिक्त शान्ति व्यवस्था बनाये रखने और अपराधों की रोकथाम हेतु पुलिस भी थी जिसे अर्थशास्त्र में **रक्षिन्** कहा गया है।

राजस्व प्रशासन–मौर्य साम्राज्य की सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था में नागरिकों तथा सेना पर अत्यधिक व्यय होता था। अतः सरकार द्वारा समस्त आर्थिक कार्यकलापों पर पर्याप्त नियंत्रण स्थापित किया गया था। राज्य की आय प्रमुख स्त्रोत भूमिकर था जो साधारणतया उपज का छठा भाग था। जिसे उस समय भाग अथवा बलि के रूप में वसूल किया जाता था। पिण्डकर भी सरकार द्वारा वसूला जाता था जिसे पूरे गाँव के किसान देते थे। शराब बनाने वाले, नमक बनाने वाले, खानों, हथियारों, और घी–तेल इत्यादि का व्यवसाय करने वाले बिक्री कर अदा करते थे। जब सेना किसी गाँव से होकर निकलती थी तब गाँव वालो को सैनिकों के भोजन का प्रबन्ध करना पड़ता था जिसे सेना भक्त कर कहा जाता था। किसानों को सिंचाई कर भी देना पड़ता था। राज्य को चुँगी, पुलों, शिल्पियों तथा श्रेणियों से भी कर रूपी आय प्राप्त होती थी। अधिकाशतः कर धान्य या वस्तुओं के रूप में वसूल किये जाते थे। कौटिल्य मे अन्य करों में विष्टि का भी वर्णन किया है। संकटकाल में सरकार को प्रणयकर भी वसूलने का भी अधिकार कौटिल्य ने दिया है।

आय से प्राप्त धन राजपरिवार, रक्षा, धार्मिक कृत्य, वेतन, सेना भत्ता, भिक्षा वृत्ति, दान, सिंचाई, यातायात, भवन निर्माण तथा अन्य लोककल्याणकारी कार्यों में नियमित ढंग से व्यय होता था। कारीगर और कलाकार भी अपने गुजारे के लिए सरकार पर निर्भर थे। राज्य के चरवाहों तथा शिकारियों को जंगलों से वन्य पशुओं का सफाया करने हेतु अनाज दिया जाता था। इस प्रकार आय–व्यय में सामंजस्य मौर्य प्रशासन का महत्वपूर्ण अंश है।

सैन्य प्रशासन–अर्थशास्त्र के विवरण और यूनानी लेखकों वृतांत से स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पास एक विशाल सेना थी जिसमें पैदल सेना, घुड़सवार सेना, हाथी, रथ, परिवहन, और बेड़े शामिल थे। प्लिनी के अनुसार चन्द्रगुप्त की सेना में 9000 हाथी, 3000 घुड़सवार और 6000 पैदल सैनिक शामिल थे। प्लूटार्क ने अपने लेख में 6000 हाथियों, 8000 घोड़ों, 2000 पैदल सैनिकों और 8000 युद्ध रथों की चर्चा की है।

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में एक स्थायी सेना के चार प्रमुख विभागों–पैदल सेना, घुड़सवार सेना, रथ और हाथियों के बारे में बताया है। मेगस्थनीज ने भी नौसेना, पैदल सेना, घुड़सवार सेना, रथों और हाथियों की निगरानी हेतु पाँच–पाँच सदस्यों ही छह समितियों की व्यवस्था का वर्णन किया है। इस सैन्य प्रशासन में सैनिकों को नकद वेतन दिया जाता था। सेना के अधिकारियों का वेतन 4000 पण 48000 पण के बीच था। उनके अनुशासन और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके अलावा सेना की चिकित्सा सेवा का भी

प्रावधान था। अर्थशास्त्र में भर्ती नीति, युद्ध, योजनाओं और किलेबंदी का भी उल्लेख है।

लोककल्याण–यद्यपि चन्द्रगुप्त एक निरंकुश शासक था परन्तु प्रशासनिक सन्दर्भ में उसके द्वारा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को चरितार्थ किया गया। उदाहरणार्थ राज्य द्वारा सिंचाई को सर्वोपरि माना गया। चन्द्रगुप्त मौर्य के काल मे सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने सुदर्शन झील का निर्माण कराया था, कौटिल्य भी सिंचाई के लिए बाँध बनाने की आवश्यकता पर बल देता है। इसके साथ–साथ नागरिकों के लिए औषधालयों एवं विधालयों की स्थापना भी राज्य द्वारा करवायी गयी थी।

इस प्रकार आपने देखा कि चन्द्रगुप्त के प्रशासन में लोकोपकारी या प्रजाहित की धारणा सर्वोपरि थी। परन्तु प्रबल केन्द्रिय नियंत्रण में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन होता हुआ देखा जा सकता है।

6.5 बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र बिन्दुसार ने मौर्य शासन का पदभार संभाला और 297–293 ईसा पूर्व तक शासन किया। महाभाष्य में चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी का नाम अमित्रघात मिलता है। जबकि जैन परम्परा के अनुसार, चन्द्रगुप्त ने अपने सिंहसेन नामक पुत्र हेतु अपनी राजगद्दी का त्याग कर दिया था। इसी प्रकार यूनानी स्त्रोतों में इस सन्दर्भ में अमिट्रोकेटीस अथवा अलिट्रोकेटीस का नाम आया है। विद्वानों की मानें तो ये नाम संभवतः शाही शीर्षक थे, जो उनकी सैन्य क्षमता के बारे में सूचना देते हैं।

6.5.1 बिन्दुसार की उपलब्धियाँ

बिन्दुसार के जीवन तथा उसकी उपलब्धियों के सन्दर्भ में ज्यादा सूचना उपलब्ध नहीं है। उसकी उपलब्धि विरासत में मिले विशाल साम्राज्य को अक्षुण बनाए रखने में निहित है।

दिव्यावदान के विवरणानुसार बिन्दुसार के शासनकाल में तक्षशिला में एक विद्रोह हुआ था जिसे युवराज अशोक ने सफलतापूर्वक दबाया था। तारानाथ के वृतांत के अनुसार चाणक्य ने बिन्दुसार के काल में अपने अधिपति की तरफ से 16 नगरों के सामंत और राजाओं को परास्त किया था और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों के बीच की सम्पूर्ण भूमि को अपने अधिपति को समर्पित किया था। इस वृतांत के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने यह तर्क दिया है कि दक्कन को बिन्दुसार के शासनकाल में ही मौर्य साम्राज्य में मिल गया, जबकि कुछ

इतिहासकार इसे मात्र विद्रोह दमन की व्याख्या मानते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समान बिन्दुसार के शासनकाल में भी पश्चिम एशिया के यूनानी शासकों के साथ राजनयिक संबंध जारी रहे। स्ट्रैबो के अनुसार सीरिया के शासक एंटियोकस ने बिन्दुसार के दरबार मे डैमेकस को अपना राजदूत बनाकर भेजा था। प्लिनी के अनुसार, मिस्र के शासक टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्फस ने बिन्दुसार के दरबार में डायोनिसियस को भेजा था। एक प्रचलित कथा के अनुसार बिन्दुंसार ने एंटिओकस से अच्छी शराब, अंजीर और सोफिस्ट (दार्शनिक) भेजने का अनुरोध किया था। इस पर एंटिओकस ने जवाब दिया कि वह निश्चित रूप से शराब और अंजीर उसे भेजेगा परन्तु ग्रीक कानून उसे दार्शनिक भेजने की अनुमति नहीं देता।

बिन्दुसार के काल की अन्य बातें ज्ञात नहीं हैं। संभवतः उसने 25 वर्षों तक शासन किया और 273 ई0पू0 मे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद 4 वर्षो तक उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चला। दिव्यावदान के अनुसार, बिन्दुसार अपने पुत्र सुसीम को गद्दी पर बैठाना चाहता था किन्तु उसका मंत्रिपरिषद अशोक के पक्ष में प्रयास कर रहा था। राधगुप्त नामक मंत्री विशेष रूप से इन प्रयासों के पीछे था। दीपवंश, महावंश परम्परानुसार अशोक ने केवल तिस्स को छोड़कर अपने 99 भाइयों का वध कर राजगद्दी प्राप्त की।

6.6 सारांश

मौर्य शासकों ने भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में, प्रथम अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य ने ना केवल सैनिक विजयों के माध्यम से भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध किया बल्की एक सुदुढ़ प्रशासनिक संरचना का निर्माण कर आगामी शासकों के लिए सफल प्रशासन का आधार तैयार कर दिया। बिन्दुसार अपने पिता से मिले साम्राज्य को अक्ष्क्षुण बनाए रखने मे सफल रहा। यद्यपि इस सन्दर्भ में चन्द्रगुप्त की सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था को भूमिका के रूप में देखा जा सकता है। फिर भी उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता एवं सैन्य पराक्रम से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। बिन्दुसार विदेशी शासकों और पड़ोसी राज्यों से सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को स्थापित करने में भी सफल रहा। बिन्दुसार को चन्द्रगुप्त और अशोक के बीच उस कड़ी के रूप में देखा जा सकता है जिसने उत्तराधिकार में मिली विरासत को संभाल कर अशोक के महान शासन की आधारशिला तैयार कर दी।

6.7 बोध प्रश्न

1) मौर्य राजवंश के इतिहास के पुर्निर्माण के प्रमुख स्त्रोत क्या है?

2) चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन की मुख्य विशेषताओं का 100 शब्दों में वर्णन करें ।

6.8 सन्दभ ग्रन्थ सूची

- रायचौधरी,एच.सी.:प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,1971
- सिंह,उपिन्दर :ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.2008
- थापर, रोमिला : द मौर्याज रिविज़िटेड,1993.सखाराम गणेश दयोश्कर लेक्चर्स ओन इंडियन हिस्ट्री 1984

इकाई 7 अशोक महान धम्म एवं प्रशासन

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 अशोक महान

7.2.1 प्रारम्भिक जीवन एवं राज्यारोहण

7.2.2 राजनीतिक उपलब्धियाँ

7.2.3 साम्राज्य विस्तार

7.3 अशोक का धम्म

7.3.1 प्रमुख तत्व

7.3.2 धम्म का स्वरूप

7.3.3 धम्म प्रचार के उपाय

7.4 अशोक का प्रशासन

7.4.1 राजस्व प्रशासन

7.4.2 राजा, एवं परिषद

7.4.3 प्रान्तीय प्रशासन

7.4.4 न्याय प्रशासन

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्न

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 प्रस्तावना

मगध के नेतृत्व में भारतीय राजनीतिक जीवन को एक स्थिरता प्राप्त हुई। मौर्य साम्राज्य की स्थापना ने इस प्रक्रिया को और सुदृढ़ कर दिया जब उनके द्वारा मगध पर अधिकार कर भारत में प्रथम उपमहाद्वीपीय साम्राज्य की स्थापना से संगठित राजनीतिक जीवन का सूत्रपात किया गया।

यह इकाई भारतीय इतिहास में मौर्य वंश के तीसरे शासक सम्राट अशोक के

महत्व से परिचित कराएगी जिसमें मुख्य ध्यान अशोक की राजनीतिक उपलब्धियों, उसकी धम्म नीति के साथ अनूठे प्रयास और प्रशासनिक सुधारों पर केन्द्रित रहेगा।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- अशोक के राज्यारोहण और उसकी राजनीतिक उपलब्धियों के बारे में जानेगें
- अशोक के धम्म, और उसके स्वरूप को जान सकेगें
- अशोक के प्रशासन की संरचना को समझ सकेगें

7.2 अशोक महान

सम्राट अशोक, भारतीय इतिहास के साथ–साथ विश्व के इतिहास में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था जो 273 ई0 पू0 में बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य का शासक बना।

वैसे तो दिव्यावदान, अशोकावदान इत्यादि बौद्ध ग्रन्थ अशोक के विषय में बहुत कुछ बताते है। लेकिन धार्मिक प्रवृत्ति के कारण बौद्ध वृतांत न तो वस्तुनिष्ठ है और ना ही पूर्वाग्रह से रहित। जेम्स प्रिंसेप द्वारा सम्राट अशोक के अभिलेखों की खोज के पहले इस शासक के बारे में ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं थी। 1837 मे सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने एक ब्राह्मी लिपि में लिखित शिलालेख में देवानामं पिय पियदसि (देवताओं का प्रिय) नामक राजा के उल्लेख की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। और इस प्रकार अशोक भारतीय इतिहास के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया।

7.2.1 प्रारम्भिक जीवन एवं राज्यारोहण

अशोक के बहुत से अभिलेख भारतीय उपमहाद्वीप से प्राप्त हुए हैं। परन्तु हमें उसके प्रारम्भिक जीवन की जानकारी के लिए मुख्यतः बौद्ध साहित्यों–दिव्यावदान और सिंहली अनुश्रुतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। अशोकावदान के विवरणानुसार अशोक की माँ सुभद्रांगी चम्पा के एक ब्राह्मण की पुत्री थी। षडयंत्रों के कारण कुछ समय के लिए महल से उसका निष्कासन हो गया था। निष्कासन की स्थिति समाप्त हो जाने के बाद उसे महल में वापस बुला लिया गया और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। ऐसी सुखद घटना के बाद उसके मुख से सहज निकला 'मै शोक रहित हूँ', कदाचित इस कथन के आलोक में उसका नाम अशोक पड़ा। वंसत्थपकासिनी में अशोक की माँ का नाम धर्मा मिलता है।

अशोक 18 वर्ष का ही था कि उसके पिता बिन्दुसार ने उसे अवन्तिराष्ट्र का वायसराय नियुक्त कर,उसे अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी भेजा। यहीं पर अशोक का विवाह महादेवी नामक कन्या से हुआ। महेन्द्र और संघमित्रा महादेवी की ही संतान थे।

युवराज बनने से पहले अशोक ने तक्षशिला के विद्रोह को भी सफलतापूर्वक दबाया था। यह माना जाता है कि बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् अशोक ने अपने मन्त्री खल्लाटक या राधागुप्त की सहायता से सिंहासन के लिए अपने भाइयों की हत्या की थी। दिव्यावदान और सिंहलीपरम्परा में बिन्दुसार की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष की बात कही गई है। परन्तु इस सन्दर्भ में स्वतंत्र प्रमाणों का अभाव है। डा0 स्मिथ का मानना है कि अशोक के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के बीच 4 वर्ष के अन्तराल के आधार पर अशोक का उत्तराधिकार विवादग्रस्त स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इस आधार पर उत्तराधिकार युद्ध और अशोक को अपने भाइयों का हत्यारा नहीं माना जा सकता क्योंकि अशोक के अभिलेख जो मौर्य इतिहास के अध्ययन के प्रमाणिक साधन हैं, उसके जीवित भाईयों के परिवार की उपस्थिति पर प्रकाश डालते हैं। पुनः इस सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन में सावधानी की आवश्यकता है। ये ग्रन्थ धार्मिक प्रवृत्ति के हैं जो बौद्ध होने से पूर्व अशोक को निर्दयी एवं अत्याचारी शासक के रूप में चित्रित करते हैं।

राज्यारोहण (269 ई0पू0) के चार वर्ष पश्चात् अशोक का विधिवत् राज्याभिषेक हुआ और इस प्रकार 273 ई0 पू0 के लगभग अशोक मगध के सिंहासन पर बैठा। अशोक के अभिलेखों में सर्वत्र उसे देवानंपिय देवानंपियदसि तथा राजा की उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। मास्की तथा गुर्जरा के लेखों में उसका नाम अशोक मिलता है। पुराण उसे 'अशोक वर्धन' कहते हैं।

7.2.2 राजनीतिक उपलब्धियाँ

राज्याभिषेक के बाद अशोक ने प्रथम तेरह वर्षों में अपने पिता और पितामह की परम्परागत नीति का ही अनुसरण किया। अपने पिता की ही तरह अशोक को भी विरासत में भारतीय उपमहाद्वीप का विशाल भू–भाग साम्राजय के रूप में प्राप्त हुआ था। उसके पड़ोस का एकमात्र राज्य कलिंग (आधुनिक ओड़िशा) उसके अधिकार में नहीं था। कलिंग रणनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह वन संसाधनों में समृद्ध था और पूर्वी तट के माध्यम से प्रायद्वीपीय भारत के मौर्यकालीन व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। अतः राजनैतिक एवं आर्थिक कारकों से प्रेरित होकर अशोक ने 260 ईसा पूर्व में कलिंग के विरूद्ध अभियान कर उसे अपने राज्य मे मिला लिया। यह सैन्य अभियान

भारतीय इतिहास के विनाशकारी अभियानों में से एक था जिसमें भीषण रक्तपात एवं नरसंहार की घटनायें हुयी। कहा जाता है कि बड़े पैमाने पर विनाश ने सम्राट अशोक को पश्चाताप से भर दिया, हालांकि, तेरहवें शिलालेख में जहाँ कलिंग युद्ध और उसके परिणामों की चर्चा की गई है, अशोक ने लिखा है कि जब एक अजेय क्षेत्र की विजय की जाती है तो ऐसी मृत्यु और विनाश अवश्यंभावी हैं। विजित कलिंग में राजवंश के किसी राजकुमार को वहाँ का उपराजा नियुक्त किया गया जो तोसली नामक स्थान पर निवास करता था। इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि भले ही युद्ध के बाद अशोक का हृदय द्रवित हो गया परन्तु पश्चाताप करने के बावजूद कलिंग के जंगल के निवासियों के लिए चेतावनी जारी की और यह याद दिलाया कि अपने पश्चाताप की अवधि में भी वह दण्ड देने की शक्ति रखता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि कलिंग के किसी क्षेत्र में अपने पछतावे को शिलालेख द्वारा व्यक्त करने से अशोक परहेज करता दिखाई देता है। यहाँ शिलालेख 13 की जगह प्रतिस्थापित शिलालेख मिलते हैं जिसमें अशोक ने अधिकारियों को निर्देश और अच्छे प्रशासन के मूल्य पर जोर दिया है। अशोक के ये आदेश धौली एवं जौगड़ नामक स्थानों पर सुरक्षित है।

मगध तथा सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में कलिंग की विजय एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके पश्चात् मौर्यो की विजयों तथा साम्राज्य विस्तार का वह दौर समाप्त हो गया जो बिम्बिसार द्वारा अंग राज्य की विजय के बाद से आरंभ हुआ था। इसके बाद एक नया युग प्रारम्भ हुआ यह युग शान्ति, सामाजिक प्रगति और धार्मिक प्रचार का युग था। यहीं से सैन्य विजय से स्थापित राजसत्ता के स्थान पर आध्यात्मिक विजय से धम्म सत्ता की स्थापना का युग आरम्भ हुआ।

7.2.3 साम्राज्य विस्तार

अशोक के अभिलेख उसकी साम्राज्य सीमा से हमारा परिचय कराते हैं। उत्तर पश्चिम में शाहबाजगढ़ी(पेशावर जिले में स्थित) और मानसेहरा (हजारा जिले में स्थित)से अशोक के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त कन्दहार के समीप शरेकुना तथा जलालाबाद के निकट काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित 'लघमान' से अशोक के अरामेइक लिपि के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उनके वितरण से ज्ञात होता है कि अशोक का साम्राज्य उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान में कांधार तक विस्तृत था। इस बात का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि ये क्षेत्र चन्द्रगुप्त के समय में ही मौर्य साम्राज्य के अर्न्तगत हो गए थे। पश्चिम भारत में राजस्थान के बैराट और काठियावाड़ के जूनागढ़ से भी अशोक के अभिलेख मिले हैं। सौराष्ट्र क्षेत्र का उसकी साम्राज्य सीमा के अंर्तगत होने का

समर्थन रूद्रदामन की प्रशस्ति से भी होता है।कलिंग विजय का स्पष्ट उल्लेख तेरहवे शिलालेख में मिलता है।

इस प्रकार अशोक के साम्राज्य की पूर्वी सीमा उड़ीसा तक फैली हुई थी। वस्तुतः सुदूर दक्षिण के एक छोटे हिस्से को छोड़कर संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप मौर्य साम्राजय के अधीन था। सुदूर दक्षिण का यह क्षेत्र चोल तथा पांड्य (शिलालेख–13) तथा केरलपुत्रों और सतियपुत्रों (शिलालेख–2) द्वारा शासित था। उसके साम्राज्य में विविध मूल एवं संस्कृति के लोग निवास करते थे जैसे उत्तर पश्चिम में कम्बोज और यवन, तथा पश्चिम और दक्कन भारत में भोज, पितिनिका, आन्ध्र, तथा पुलिंद।

7.3 अशोक का धम्म

अशोक की लोकप्रियता उसके बौद्ध धर्म से सम्बन्ध और उसकी जनकल्याण की अवधारणा से जुड़ी हुई है। जिस पर बौद्ध साहित्य और उसके द्वारा निर्गत अभिलेख प्रकाश डालते हैं।

अशोक की धम्म नीति एक जटिल सामाजिक संरचना के सामने आने वाली कुछ समस्याओं को हल करने का एक ईमानदार प्रयास था। वस्तुतः अशोक की धम्म नीति और उसका प्रचार अशोक के विश्व इतिहास में प्रसिद्ध होने का मुख्य कारण है।

अशोक की धम्म नीति इतिहासकारों के बीच निरंतर चर्चा का विषय रही है। विशेषरूप से इतिहासकारों में यह मतभेद रहता है कि धम्म का स्वरूप क्या था? अशोक के व्यक्तिगत आस्था के साथ उसका क्या संबंध था?

7.3.1 प्रमुख तत्व

धम्म संस्कृत के शब्द धर्म का ही प्राकृत रूपान्तर हैं, परन्तु अशोक के लिए इस शब्द का विशेष महत्व है। उसके अधिकांश अभिलेख धम्म अभिलेख है जो सम्पूर्ण साम्राज्य के लोगों को धम्म के सिद्धान्तों से परिचित कराने के उद्देश्य से उत्कीर्ण कराए गए थे। यदि स्तम्भ अभिलेख संख्या छः के विवरण को देखें तो ज्ञात होता है कि धम्म अभिलेखों का व्यवहार जिसे अशोक धम्म लिपि कहा जाता है, उसके राज्याभिषेक के 12 वर्ष बीत जाने के बाद शुरू हुआ। प्रायः इस समय से लेकर अपने शासन के अंत तक अशोक ने बड़े प्रयत्नों से धम्म का प्रसार–प्रचार किया, उसकी व्याख्या की। अशोक के अभिलेख धम्म की संक्षिप्त एवं सटीक व्याख्या हमारे समक्ष प्रस्तुत करते है।

दूसरे और सातवें स्तम्भ लेख में अशोक ने स्वयं धम्म की व्याख्या की है और

धम्म के गुणों को विस्तार से बताया है। **धम्म**–अल्प पाप, अत्याधिक कल्याण है, दया है, दान है, सत्यवादिता है, पवित्रता है, मृदुता और साधुता है।

इसके साथ–साथ धम्म के विधायक एवं निषेधात्मक पक्ष को स्पष्ट करते हुए अशोक धम्म का पालन करने वालों की जीवहिंसा से बचने, माता–पिता की आज्ञा मानने, गुरूजनों के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करने, मित्रों, परिचितों, संबंधियों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों के प्रति दानशीलता दिखाने एवं उचित व्यवहार करने तथा दासों और भृत्यों के साथ अनुचित व्यवहार नहीं करने का आदेश देता है। वह यह भी कहता है कि धम्म का पूर्ण पालन तभी संभव है जब मनुष्य न केवल उसके गुणों का पालन करे बल्कि विकारों अर्थात् प्रचण्डता, निष्ठुरता, क्रोध, घमण्ड, ईर्ष्या से भी स्वयं को दूर रखें। धम्म की प्राप्ति हेतु इनसे बचना आवश्यक है क्योंकि आसिनव धम्म की प्रगति को रोकता है।

धम्म की प्राप्ति हेतु अशोक ने अभिलेखों में अन्य उपायों का भी चर्चा की है। प्रथम शिलालेखों के अनुसार "अत्यन्त धर्म कामना, अत्यन्त परीक्षा, अत्यन्त शुश्रुषा, अत्यन्त भय और अत्यन्त उत्साह के बिना ऐहिक और पारलौकिक उद्देश्य कठिनाईपूर्वक प्रतिपादित होने वाले है। अतः इस प्रयोजन हेतु अशोक ने धर्मगुरू, धर्मचारण, धर्म यात्रा, धर्ममंगल एवं धर्मदान की व्यवस्था की। इन गुणों के पालन से ही वास्तविक धम्म को प्राप्त किया जा सकता था।

उपरोक्त व्यवहारिक पक्षों के साथ–साथ अशोक ने धम्म के सैद्धान्तिक पहलूओं को भी बताया। वह परलोक में विश्वास करता था और अपनी प्रजा के भौतिक एवं इहलौकिक कल्याण की भी कामना करता था। इस हेतु उसने धम्म मंगल की श्रेष्ठता और धम्मदान की महत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रकार उसने धम्म को अपने शासन का आधार बना लिया।

7.3.2 धम्म का स्वरूप

अगर धम्म की व्याख्या की ध्यान से देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अशोक के धम्म में जिन सामाजिक और नैतिक आचारों का समावेश दिखाई देता है वह सभी सम्प्रदायों में समान रूप से श्रद्धेय माने जाते हैं। अशोक के धम्म की अवधारणा और उसके स्वरूप के संबंध में विद्वानों और इतिहासकारों में मतैक्य का अभाव देखने को मिलता है। अनेक विद्वानों की धारणा है कि अशोक का धम्म वस्तुतः बौद्धधर्म ही था।इस मत का आधार आरम्भ में अशोक का बौद्ध मतानुयायी होना है जिसकी पुष्टि महावंश से होती है। लेकिन गहनता से विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अशोक के धम्म को बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें न तो महात्मा बुद्ध के चार आर्य सत्यों का

उल्लेख है, न अष्टांगिक मार्ग हैं, और न आत्मा–परमात्मा संबंधि अवधारणायें ही हैं। कुछ इतिहासकार मानते है कि यह एक वैश्विक धर्म था जिसमें विभिन्न सम्प्रदायों के अच्छे तत्वों का समावेश किया गया था। कुछ इतिहासकारों ने इसकी व्याख्या राजधर्म की तरह की है। जहाँ अशोक ने सम्राट के रूप में राजनीतिक एवं अन्य नैतिक सिद्धान्तों पर बल दिया है और यह सिद्धान्त ब्राह्मण एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं से प्रभावित दिखाई देता है।

रोमिला थापर ने स्पष्ट किया है कि अशोक का धम्म न केवल मूलभूत मानवीयता का अद्‌भुत दस्तावेज है बल्कि उस समय की सामाजिक–राजनैतिक आवश्यकताओं का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत करने का सफलतम प्रयास था। कुछ अन्य विद्वान अशोक के धम्म को एक राजनैतिक चाल समझते है जिसका मूल उद्देश्य कलिंग युद्ध में हुए भारी नर–संहार से उत्पन्न जनाक्रोश को शान्त करना रहा होगा। लेकिन यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि 13वें शिलालेख में व्यक्त अशोक की भववनाओं से स्पष्ट है कि अशोक सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का भौतिक तथा नैतिक कल्याण करना चाहता था और उसकी धम्म नीति का मूल यही था। इसके पीछे कोई राजनैतिक चाल खोजना ठीक नहीं होगा।

7.3.3 धम्म प्रचार के उपाय

अशोक द्वारा धम्म प्रचार के लिए किए गए प्रयासों की जानकारी उसके सातवें स्तम्भाभिलेख से मिलती है। साथ ही प्रथम माइनर शिलालेख से पता चलता है कि बौद्ध धर्म ग्रहण करने के ढाई वर्षो तक वह साधारण उपासक ही रहा और इस दौरान प्रथम वर्ष में उसने धम्म प्रचार में कोई रूचि नहीं ली। उसके बाद उसने संघ में प्रवेश किया और धम्म प्रचार में काफी दिलचस्पी लेने लगा। उसने अपने साम्राज्य की चट्टानों तथा पाषाण–स्तम्भों पर अपने उद्देश्यों को अंकित करवाया।

अशोक ने अपने प्रशासनिक ढाँचे का प्रयोग धम्म प्रचार के लिए किया। उसने इस क्रम में धार्मिक घोषणाएँ करवाई, धर्मस्तम्भों का निर्माण करवाया तथा धर्म–महामात्रों की नियुक्ति की और धम्म महामात्रों को धम्माधिथान तथा धम्मवधि का कार्य सौपा गया।

अशोक ने अपने शासनकाल के 11वें वर्ष सम्बोधि का मार्ग ग्रहण करते हुए विहार यात्राओं के स्थान पर धर्म यात्राएं आरम्भ कीं। इन यात्राओं में अशोक ब्राह्मणों तथा साधुओं का बड़ी आदर भावना के साथ दर्शन करता था और गुरूजनों के पास स्वर्ण मुद्राओं की भेंट लेकर जाता था। अपने अभिषेक के 14वें

वर्ष अशोक ने नेपाल की तराई में स्थित निग्लीवा (निगाली सागर) की धार्मिक आस्था से यात्रा की और वहाँ स्थित कनकमुनि बुद्ध के स्तूप के आकार को द्विगुणित करवाया इसी क्रम में 20वें वर्ष बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनि ग्राम की यात्रा कर वहां शिलास्तम्भ की स्थापना की और पूजा करने के बाद वहाँ का भू–कर घटाकर 1/8 कर दिया।

अशोक ने अपने व्यक्तिगत कार्यों से भी धम्म का प्रचार किया। उसने जनता के समक्ष एक ऐसा आर्दश प्रस्तुत किया, जिससे प्रभावित होकर सभी धर्मानुशासित व्यवहार कर सकें। उसने अहिंसा की नीति का पालन करते हुए युद्ध बंद करवा दिया। स्वयं उसने मांस मदिरा का त्याग कर हिंसायुक्त सामाजिक उत्सवों पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके साथ ही साथ धम्म सभाओं की व्यवस्था की जिसमें विमानदर्शन, हस्तिदर्शन, अग्निस्कन्ध इत्यादि स्वर्ग की झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती थीं। जिसके परिणामस्वरूप धम्म के प्रति लोगों का अनुराग बढ़ा।

धम्म प्रचार के तहत अशोक ने देश के विभिन्न भागों एवं विदेशों में प्रचार–मिशन भी भेजे। चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्र, केरलपुत्र, काश्मीर तथा गांधार, महिषमण्डल, अपरान्तक, महाराष्ट्र, वनवासी के अतिरिक्त प्रचार–मिशन खोतान(मध्य एशिया),सिंहलद्वीप (श्रीलंका), सुवर्णभूमि (सुमात्रा), पश्चिम के यवन शासकों (सीरिया, मिस्र, मकदूनिया, साइरिन एपीरस) के पास धर्म प्रचारक भेजे गए। कहा जाता है कि तृतीय बौद्ध संगीति की समाप्ति के बाद अशोक ने इन धर्म प्रचारकों को विभिन्न स्थानों के लिए भेजा था। इन सभी मिशनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था अशोक द्वारा अपने पुत्र महेन्द्र और संघमित्रा को श्रीलंका भेजना। इसके परिणामस्वरूप भारतीय बौद्ध धर्म देश की सीमा के बाहर स्थापित हो सका।

अशोक ने धम्म प्रचार से तत्कालीन राजनीतिक जीवन एवं सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। वह प्रथम शासक था जिसने मानव के नैतिक उत्थान के लिए इतना अधिक प्रयास किया।

7.4 : अशोक का प्रशासन

अशोक भारतीय इतिहास में एक महान विजेता और सफल धर्म प्रचारक के रूप में ही विख्यात नहीं है। बल्कि उसकी ख्याति एक कुशल प्रशासक के रूप में भी है। उसने प्रशासन को अच्छी तरह से संचालित करने के लिए अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था में आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं सुधार किए।

7.4.1 : राजत्व का सिद्धान्त

अशोक का राजत्व से जुड़ा आर्दश कदाचित् अर्थशास्त्र में कौटिल्य द्वारा

प्रतिपादित आदर्शों से मेल खाता है, किन्तु प्रशासन में अशोक की विशिष्ट छाप उसके अभिलेखों में प्रतिबिम्बित होती है। अशोक ने राजत्व और देवत्व में सम्बन्ध स्थापित कर प्रशासन को कल्याणकारी बनाने का प्रयास किया है। उसकी देवानांप्रिय की उपाधि अशोक द्वारा दैवीय सत्ता से सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न था। अशोक ने सर्वजनहिताय का स्पष्ट संदेश दिया और अपनी प्रजा के ऐहिक और पारलौकिक कल्याण को महत्वपूर्ण माना। अशोक के पितृसत्तात्मक आर्दश शिलालेख संख्या–1 तथा 2 में प्रतिबिंबित है। जिसमें वह कहता है ''सारी प्रजा मेरी संतान है। जिस प्रकार अपनी संतान के लिए मैं कामना करता हूँ, उनका इस लोक में तथा परलोक में कल्याण हो, उसी प्रकार अपनी समस्त प्रजा के लिए भी कामना करता हूँ। अशोक का यह राजनीतिक आदर्श अत्यन्त उच्च कोटि का था। तत्कालीन विश्व के किसी अन्य सम्राट ने इतने स्पष्ट शब्दों में प्रजा के कल्याण के लिये व्यग्रता प्रकट नहीं की थी। अशोक सभी जीवों के प्रति अपने ऋणी होने की बात रखता है (शिलालेख संख्या–6) तथा उनके कल्याण की कामना करता है जो उसके सीमांत प्रदेश से बाहर निवास करते है (पृथक शिलालेख संख्या–2)। जनकल्याण के लिए अशोक ने सड़कों के किनारे वृक्षारोपण, कूप निर्माण, मनुष्य और पशुओं के लिए चिकित्सालयों की स्थापना की और लोगों को धम्म पालन का निर्देश दिया। परन्तु लोककल्याण के साथ–साथ अशोक द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसरण के सन्दर्भ में आवश्यकता एवं बाध्यता का स्वर भी देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ शिलालेख संख्या–2 में अशोक सीमांत प्रदेश के अविजित समुदायों को संबोधित करते हुए कहता है कि उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ में आ जानी चाहिए कि उनके वही अपराध क्षमा किये जा सकेगें जो क्षम्य हों।

7.4.2 राजा, एवं परिषद्

राजा–अशोक के अभिलेखों से स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट में ही राज्य की सभी शक्तियां निहित थीं। राज्य के सभी विभाग उसके नियंत्रण में थे। राज्य के सभी पदाधिकारी उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते थे और अपने कार्यो के लिए उसी के प्रति उत्तरदायी थे। परन्तु अशोक एक निरंकुश शासक न होकर प्रजावत्सल शासक था।

परिषद–अपने पूर्वजों की तरह अशोक ने भी मंत्रि–परिषदीय सरकार कायम रखी। उसने तीसरे तथा छठे शिलालेख में परिषा या परिषद का उल्लेख आया है। इसका मुख्य कार्य राजा को मंत्रणा देना, राजाज्ञा का पालन करवाना, राज्य की नीतियों को कार्यान्वित करना और विवादास्पद मामलों को राजा के पास फैसले के लिए भेजना था। सिद्धान्ततः परिषद राजा के अधीन थी परन्तु

व्यवहारिक रूप में यह राजा के अनुचित कार्यो पर नियंत्रण भी रखती थी। उदाहरणार्थ अशोकावदान में उल्लिखित है कि परिषद ने अशोक को कुक्कुटाराम विहार को दान देने से रोक दिया था।

पदाधिकारी—शिलालेखों में अशोक के अनके पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। पदाधिकारियों की विभिन्न श्रेणियाँ सम्राट तथा राजकुमारों की राजकाज में सहायता के लिए होती थी—

(1) महामात्र या अन्य मुख्य

(2) राजुक और रठिक

(3) प्रदेशिक या प्रादेशिक

(4) युत

(5) पुलिस

(6) परिवेदका

(7) वचभूमिका

(8) लिपिकार

(9) दूत

(10) आयुक्त और कारनक

महामात्र अशोक के प्रशासन में महत्वपूर्ण अधिकारी थे इनका उल्लेख ब्रह्मगिरी लघु शिलालेख, कलिंग, सारनाथ एवं कौशांबी शिलालेखों में हुआ है। ये प्रांतीय शासन, जिला शासन, के साथ—साथ अन्य महत्वपूर्ण विभागों की देखभाल करते थे। कुछ विशिष्ट श्रेणी के महामात्रों में अंत—महामात्र (सीमांत प्रदेश के महामात्य) का उल्लेख किया जा सकता है। धम्म महामात्र अशोक द्वारा सृजित किया गया महामात्रों का नया विभाग था, जिसकी स्थापना उसने अपने राज्यारोहण के 9 वर्ष बीत जाने पर की थी। जिनका मुख्य कार्य धम्म का पालन करवाना था।

जहाँ तक राजुक शब्द का प्रश्न है, डा0 स्मिथ के अनुसार यह पद कुमारों के नीचे होता था जिसका अर्थ तत्कालीन गर्वनर था। चतुर्थ स्तम्भ अभिलेख के अनुसार राजुकों की नियुक्ति एक—दो लाख की जनसंख्या पर होती थी तथा इनक मुख्य कार्य जनपदों की शांति व व्यवस्था कायम रखना था। अशोक ने राजूकों को दंडित या पुरस्कृत करने का अधिकार दे रखा था।

विभिन्न स्थानों के स्थानीय शासक प्रादेशिक होते थे। तृतीय शिलालेख में प्रादेशिकों को राजूकों में भी शामिल कर लिया गया है। इनका प्रमुख कार्य बालि–प्रगह (कर वसूलना या हठी सामन्तों का दमन), कण्टक–शोधन (फौजदारी मुकदमों को देखना), चोर मार्गण (चोरों का पता लगाना) आदि था।

जहाँ तक युत या युक्त वर्ग के लोगों का प्रश्न है, ये लोग एक प्रकार के सचिव थे जो महामात्रों के कार्यालयों में सरकारी आदेशों को कानून बद्ध करने के लिए नियुक्त किये गये थे। पुलिसा शब्द भी अर्थशास्त्र के पुरूष या राजपुरूष का समानार्थी प्रतीत होता है। इनके अधिकार में राज्य की बड़ी जनसंख्या और राजुक लोग होते थे। 'पटवेदिका' अर्थशास्त्र में उल्लिखित चर शब्द का समानार्थी लगता है। 'वचभूमिक' शब्द संभवतः इन्सपेक्टर या निरीक्षक के अर्थ में प्रयुक्त होता था। लिपिकार लोग राजाज्ञाओं के लेखक होते थे। तेरहवें शिलालेख में उल्लिखित दूत शब्द आजकल के राजदूत की तरह रहा होगा। अर्थशास्त्र दूतों की तीन श्रेणियों के बारे में बताता है। आयुक्त गांवों में नियुक्त एक प्रकार के अधिकारी थे।

7.4.3 प्रान्तीय प्रशासन

अशोक के शिलालेखों से यह स्पष्ट होता है कि अशोक ने अपने पूर्वजों की तरह प्रान्तीय सरकारों की व्यवस्था को कायम रखा। तोसली, सुवर्णगिरी उज्जयिनी तथा तक्षशिला के प्रान्त राजवंश के युवराजों द्वारा शासित थे। अशोक पुत्र कुणाल तक्षशिला का राज्यपाल था। अन्य प्रान्तों में दूसरे उच्च पदाधिकारियों को राज्यपाल नियुक्त कया जाता था। रूद्रदामन के गिरनार शिलालेख से पता चलता है कि 'यवन तुषास्प' काठियावाड़ प्रान्त में अशोक का राज्यपाल था। प्रान्तों को अहार अथवा विषयों में विभक्त किया गया था, जिसका प्रशासन विषयपति के जिम्मे था। गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई था।

7.4.4 न्याय प्रशासन

अशोक ने न्याय प्रशासन की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने प्रचलित दण्ड विधान में सुधार कर, उसकी कठोरता को कम रखने का प्रयास किया। धौली तथा जौगढ़ के प्रथम पृथक शिलालेखों में वह नगर–व्यवहारिकों को आदेश देता दिखाई देता है कि वे बिना उचित कारण किसी को कैद अथवा शारीरिक यातनाये ंना दें। पाँचवें शिलालेख से ज्ञात होता है कि धर्ममहामात्र कैद की सजा पाये हुये व्यक्तियों का निरीक्षण करते थे। यदि उन्हें अकारण दण्ड मिला होता था तो उन्हें मुक्त करने का अधिकार प्राप्त था। राज्य में सम्राट सर्वोच्च न्यायिक

अधिकारी था। अशोक के प्रशासन में व्यवहार–समता और दण्ड–समता पर बल तो दिया गया था साथ ही साथ न्यायिक अधिकारियों को कार्यकारिणी के प्रभाव से मुक्त भी रखा गया था। ताकि न्यायिक अधिकारी निर्भय होकर स्वतंत्र रूप से न्याय का संपादन कर सकें। अशोक के न्याय प्रशासन में राजुक सर्वेसर्वा थे।

अशोक ने दण्ड विधान को उदार बनाने का प्रयास किया। उसने मृत्युदण्ड समाप्त नहीं किया लेकिन मृत्युदण्ड पाये हुए व्यक्तियों को तीन दिनों की मोहलत (राहत) दिये जाने का विधान किया गया ताकि वे अपने अपराधों का पश्चाताप कर सकें और आने वाले जीवन को सुधारने का प्रयत्न कर सकें।

इस प्रकार सम्राट अशोक जनहित के प्रति अत्यन्त प्रबुद्ध थे और यही कारण है कि इतने विशाल साम्राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाए रखने में सफल रहे।

7.5 अशोक के उत्तराधिकारी

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि अशोक की मृत्यु 232 ई0पू0 में हुई। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में पुराणों, जैन और बौद्ध ग्रन्थों में अलग–अलग वर्णन मिलता है। दुर्भाग्यवश मेस्थनीज और कौटिल्य जैसे समकालीन विद्वानों ने भी मौर्य वंश के अंतिम राजाओं का वर्णन नहीं किया है। ऐसी स्थिति में कतिपय शिलालेखों तथा कुछ एक जैन और बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर अशोक उत्तराधिकारियों का प्रमाणिक एवं क्रमबद्ध इतिहास बता पाना कठिन है।

यह तो बताया जाता है कि अशोक के कई पुत्र थे। शिलालेख में उसकी रानी कारूवाकी के पुत्र तीवर का उल्लेख मिलता है। जो कभी सिंहासनासीन नहीं हुआ। इसके अलावा अशोक के अन्य तीन पुत्रों महेन्द्र, कुणाल तथा जलौक के नाम अन्य प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। महेन्द्र अशोक का पुत्र था अथवा भाई यह भी अनिश्चित है।

वायु पुराण के विवरण को यदि देखें तो ज्ञात होता है कि अशोक के बाद अशोक के पुत्र कुणाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया। कुणाल का पुत्र बन्धुपालित उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद इन्द्रपालित राजा हुआ। इन्द्रपालित के बाद देववर्मन, शतधुनस और ब्रहद्रथ हुए।

इसी प्रकार मत्स्य पुराण में अशोक के उत्तराधिकारियों की सूची इस प्रकार मिलती है–दशरथ, सम्प्रति, शतधन्वन और बृहद्रथ। विष्णु पुराण में उनके नाम इस प्रकार दिये गये है–सुयश, दशरथ, संगत, शालिशूक, सोमशर्मा, शतधन्वन, और बृहद्रथ। राजतंरगिणी के अनुसार अशोक के पश्चात् जलौक राजा बना

जिसने काश्मीर पर शासन किया।

दिव्यावदान के अनुसार सम्पादी, बृहस्पति, बृपसेन, पुष्पधर्मन, तथा पुष्पमित्र अशोक के बाद हुए। जैन ग्रन्थों में राजगृह में बलभ्रद के शासन करने का उल्लेख मिलता है। तारानाथ के अनुसार गांधार में वीरसेन का राज्य था।

विभिन्न ग्रन्थों के तथ्यों में एकरूपता स्थापित करना इतना सहज कार्य नहीं है। उपरोक्त वर्णित राजाओं में से दशरथ के विषय में पुरातात्विक प्रमाण भी प्राप्त होते है उसके द्वारा नागार्जुनी पहाड़ियों पर आजीवक सम्प्रदाय के लिए तीन गुफाओं का निर्माण करवाया गया था। यहाँ उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उसने भी देवानांपिय की उपाधि धारण की थी। पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों की संयुक्त प्रामाणिकता से कुणाल का अस्तित्व सिद्ध होता है। कहा जाता है कि कुणाल अंधा था और उसका प्रिय पुत्र सम्प्रति उसका राजकाज संभालता था। इसलिए कुछ ग्रन्थ सम्प्रति को अशोक के तुरंत बाद का राजा स्वीकार करते हैं।

कुणाल के पुत्र को प्रायः बन्धु पालित सम्प्रति और विगताशोक भी कहा गया है। या तो ये सभी राजकुमार भाई–भाई थे, या ये सब नाम एक ही राजकुमार के थे। यदि इन्हें भाई स्वीकार किया जाए तो बन्धुपालित संभवतः दशरथ था, जो अशोक का पोता था इसका नाम नागार्जुनी पहाड़ियों में मिलता है। विभिन्न पुराणों के अनुसार वह सम्प्रति का पूर्वज था। डा0 रायचौधरी का विचार है कि जिस प्रकार बन्धुपालित को दशरथ माना जा रहा है उसी प्रकार इन्द्रपालित को सम्प्रति या शालिशूक कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि सम्प्रति को जैन ग्रन्थों में वही सम्मान प्राप्त है जो अशोक को बौद्ध ग्रन्थों में डॉ0 ए0 स्मिथ के अनुसार सम्प्रति का राज्य अवन्ति से लेकर पश्चिमी भारत तक विस्तृत था। सम्प्रति के बाद शालिशूक राजा हुआ जिसे गार्गि संहिता में एक अधार्मिक, धूर्त और झगड़ालू शासक बताया गया हैं। पुराणों के अनुसार शालिशूक के बाद शतधन्वन् और अंततोगत्वा बृहद्रथ मौर्य वंश का राजा हुआ। बाणभट्ट के हर्षचरित में भी बृहद्रथ को मौर्यवंश का अंतिम शासक बताया गया है जो प्रज्ञादुर्बल था। उसका सेनापति पुष्पमित्र था जिसने 184 ई0 पू0 में बृहद्रथ की हत्या कर मौर्यवंश की सत्ता को समाप्त कर दिया।

7.5 सारांश

सम्राट अशोक एक महान विजेता, कुशल प्रशासक, और सफल धार्मिक नेता था। वह इतिहास में कलिंग के राज्य को आत्मसात कर लेने के बाद सभी सैन्य

महत्वाकाक्षाओं को त्यागने और अपने आध्यात्मिक पक्ष की ओर मुड़ने के लिए जाना जाता है। अशोक ने धम्म को बढ़ावा देने का फैसला किया और धम्म प्रचार से तत्कालीन राजनीतिक जीवन एवं सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। वह प्रथम शासक था जिसने मानव के नैतिक उत्थान के लिए इतना अधिक प्रयास किया।जटिल प्रशासनिक संरचना उसकी सफताओं का आधार बनी। हालांकि, अशोक के बाद, मौर्य साम्राज्य में तेजी से गिरावट देखी गई। अगली इकाई में इस राज्य की ऊँचाई उसके बाद की गिरावट पर करीब से व्याख्या की जाएगी।

7.6 बोध प्रश्न

1. अशोक के धम्म के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. अशोक के प्रशासनिक सुधारों पर टिप्पणी लिखें।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- थापर रोमिला. अशोक एंड द डिक्लाईन ऑफ द मौर्याज, 1997
- रायचौधरी,एच.सी.:प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास,1971 सिंह,उपिन्दर :ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.2008

इकाई–8 मौर्य साम्राज्य का पतन

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 सम्राट अशोक से अंतिम बृहद्रथ मौर्य तक

8.3 मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

8.3.1 अशोक प्रियदर्शी की नीतियां और ब्राह्मण प्रतिक्रियावाद

8.3.2 अशोक की नीतियों का परिणाम

8.3.3 अयोग्य उत्तराधिकारी

8.4 सांराश

8.5 बोध प्रश्न

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 प्रस्तावना

मौर्यों के देवानामाप्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक की मृत्यु और सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा नए राजवंश की स्थापना के बीच कठिनाई से 50 वर्षों का कालिक अन्तर हमें ईसा पूर्व तीसरी–दूसरी शताब्दियों की जटिल राजनैतिक परिस्थिति की झलक दिखाता है। यह भी विचारणीय है कि चंद्रगुप्त मौर्य तथा सम्राट अशोक के राजत्व–काल के मुखरित ऐतिहासिक स्त्रोत इन 48 वर्षों के राजनैतिक घटनाक्रम के विषय में मूक और मतिशून्य हो जाते हैं। परस्पर विपरीत और व्याघाती सूचनाओं के कारण मौर्यों के परवर्ती इतिहास और पतन को समझना दुरुह कार्य प्रतीत होता है।

इतिहासकारों ने बौद्ध–जैन–पौराणिक ग्रंथों, नगण्य अभिलेखों और पश्चात्–कालीन साहित्यिक कृतियों के आधार पर सम्राट अशोक के बाद मौर्यों के इतिहास के अध्ययन का प्रयास किया है ताकि उन स्थितियों को समझा जा सके, जिनके कारण मौर्यों के विशाल साम्राज्य का त्वरित अन्त हो गया।

8.1 उद्देश्य

उत्तर भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से मौर्य साम्राज्य

की स्थापना, पल्लवन और पतन के प्रश्न लगभग समान महत्व के हैं। मगध में नवीन राजसत्ता के गुरुत्व–केन्द्र के निर्माण ने जहाँ भारतीय इतिहास को वांछित गति और समकालीन प्रासंगिकता दी वहीं अखिल भारतीय स्तर के प्रथम साम्राज्यकर्त्ता के रूप में मौर्यों के सूर्य का अवसान उपलब्ध इतिहास में सत्ता के विकेन्द्रीकरण का प्रथम दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। भारतीय इतिहास के अध्येता बहुधा इन दोनों युगान्तकारी घटनाओं के पीछे किसी प्रकार की क्रान्ति को कारण–स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। अन्य भी अनेक कारणों से मौर्यों के पतन को विश्लेषित करने का प्रयास किया जाता रहा है, किन्तु जैसी क्षय की सामान्य नियति होती है, मौर्यों का अवसान भी एक क्रमिक दीर्घकालीन प्रक्रिया का परिणाम माना जा सकता है जिसका प्रारंभ साम्राज्य की स्थापना के साथ ही हो चुका था।

8.2 सम्राट अशोक से अंतिम बृहद्रथ मौर्य तक

लगभग 232 ई0पू0 में मौर्यों के सबसे प्रतापी शासक अशोक मौर्य के शासन का पटाक्षेप हुआ जिसके शीघ्र बाद मौर्यों के ही ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा अंतिम मौर्य नरेश बृहद्रथ की दिवाप्रकाश हत्याकर दी गई। शुंगों की 'ब्राह्मण' सत्ता ने मगध से नवीन राजवंश का संचालन किया जो आधारभूत रूप में अपने पूर्ववर्ती शासन से पृथक् था। यह जानना विचारोत्तेजक है कि जनता के स्तर पर वे क्या परिस्थितियाँ बनीं जिसने इस आमूल–चूल परिवर्तन को सहज सामाजिक मंजूरी दिला दी। साथ ही, विगत 50 वर्षों में, इतने विस्तृत मौर्य परिवार का कोई भी प्रशास्ता सत्ता को शक्तिपूर्वक अपने नियंत्रण में क्यों न रख सका।

अशोक के शिलालेखों से विदित है कि 'कुमार' उपाधि धारक उसके अनेक पुत्र तक्षशिला, उज्जयिनी और कलिंग में केन्द्रीय सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहे थे। परवर्ती प्रमाणों का साक्ष्य यह भी बताता है कि मौर्यों के इन स्थानीय प्रशासकों की सत्ता येन–केन प्रकारेण पश्चिम में कोंकण, खानदेश तथा राजस्थान जैसे दूरस्थ स्थानों में बाद तक भी बनी रही, तब भी जब केन्द्र से

मौर्य राजवंश अतीत की वस्तु बन चुका था। इसके आधार पर अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि इन स्थानीय प्रशासकों ने अपनी प्रान्तीय अथवा स्थानिक स्थिति को सुदृढ़ करने की पर्याप्त कोशिशें सत्ता की खुशहाली के दिनों से ही शुरू कर दी होंगी। साहित्य और अभिलेखों से मौर्यों का वंश एक समृद्ध

परिवार तंत्र ज्ञात होता है। बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान, जैन ग्रंथ परिशिष्ट पर्व के पाटलिपुत्रकल्प' तथा पुराण साहित्य यथा वायु पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण के साथ–साथ चरित और इतिवृत्तात्मक साहित्य जैसे हर्षचरित और राजतरंगिणी आदि में, अपि च गार्गी संहिता और बौद्ध भिक्षु फाहियान और तारानाथ आदि के साक्षी से हमें अशोक के परवर्ती राजाओं की अत्यधिक भ्रमपूर्ण सूची प्राप्त होती है। अभिलेखों से राजपुत्रों करूवाकी–पुत्र तीवर का ही उल्लेख मिलता है। अशोक के पौत्रों में दशरथ को हम नागार्जुनी की पहाड़ियों में उसके द्वारा दिए गए आजीवक भिक्षुओं के प्रति दानों के संदर्भ से जानते हैं। इन विविध स्रोतों से प्रदत्त राजपुत्रों के नामों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि अशोक के शीघ्र पश्चात् कुणाल की दृष्टिबाधा के कारण सत्ता के हस्तान्तरण की प्रक्रिया तेज हो गई। वायु पुराण के अनुसार कुणाल ने आठ वर्षों तक शासन किया जिसके बाद पाँच अन्य राजाओं, बन्धुपालित, इंदुपालित, देववर्मन, शतधनुष और वृहद्रथ का राज्य हुआ। अन्य पुराणों में यह सूची भिन्न–भिन्न दी गई है। संभव है कि मगध में मौर्यों की केन्द्रीय सत्ता का उत्तराधिकार कुणाल के दो पुत्रों–संप्रति (संपदी) और दशरथ के बीच क्रमबद्ध रूप से स्थानान्तरित हुआ हो, किन्तु इस राज्य की सीमा में राजतरंगिणी से ज्ञात अशोक–पुत्र जालौक द्वारा शासित कश्मीर का राज्य अन्तर्भूत नहीं था। इसी प्रकार पौराणिक वंशावली के देववर्मन (वायुपुराण), शालिशुक, सोमशर्मन (विष्णु पुराण), बृहस्पति, वृषसेन तथा पुष्यधर्मन (दिव्यावदान) भी स्थानीय स्वरूप से स्वतंत्र मौर्यों के ऐसे सपिण्ड शासक रहे होंगे जिनका साम्राज्यवादी मौर्यों से रक्त–संबंध सिद्ध नहीं होता। हमें संदर्भतः मत्स्यपुराण की उस सूची को सर्वाधिक तथ्यपूर्ण मानना चाहिए जिसमें अशोक के मात्र चार उत्तराधिकारियों दशरथ, सम्प्रति, शतधन्वन एवं बृहद्रथ का नाम मिलता है। ये ही अशोक के पश्चात् उसके राज्य के वैद्य उत्तराधिकारी बने। अन्य राजाओं के बीच महान् मौर्य साम्राज्य के विविध प्रान्तों का विभाजन हो गया जिसमें संभवतः कुणाल पुत्र वीरसेन के नेतृत्व में पश्चिमी भारत का गांधार प्रान्त स्वतंत्र हो गया। यहाँ वीरसेन (तारानाथ) के बाद उसके वंशजन सुभगसेन (पॉलिबियस 11.34) का राज्य हुआ। गार्गी संहिता से ज्ञात शालिशुक मध्यदेश में स्थानीय शक्ति के रूप में स्वतंत्र हो गया होगा, यद्यपि इस शासक के उपनामों और वास्तविक अधिकार क्षेत्र को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। हेमचंद्र रायचौधरी उसे सुभगसेन तथा भण्डारकर महोदय कश्मीर नरेश जालौक से समीकृत करते हैं।

लगभग सभी स्रोतों से साम्राज्यवादी मौर्यों के अंतिम राजा का नाम बृहद्रथ

ज्ञात होता है जिसकी दुर्दान्त हत्या उसके ही सेनापति पुष्यमित्र नामक 'अनार्य' (हर्षचरित) ब्राह्मण द्वारा सैन्य निरीक्षण के क्रम में कर दी गई थी। हर्षचरित बृहद्रथ को प्रज्ञादुर्बल बताता है। निश्चय ही सम्राट बृहद्रथ के समय राजनैतिक परिस्थितियाँ पर्याप्त विकट हो चली थीं जिसने मातहतों की महत्वाकांक्षा को आकाश छूने का सहज अवसर प्रदान कर दिया। भारतीय राजशास्त्र की दृष्टि में यह कृत्य भले ही गर्हणीय हो जिसके कारण बाणभट्ट 'ब्राह्मण सेनानी' को 'अनार्य सेनानी' कहने पर विवश हुआ किन्तु राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों को अवहेलना और राजपद के तिरस्कार के कारण ही मगध का राज–दरबार षडयंत्रों का अखाड़ा बन गया होगा जिसमें दलीय जोड़–तोड़ और समीकरण अंततः बृहद्रथ के वंशक्रमिक राज्याधिकार के विपरीत हो गए।

मौर्यों के पतन में बृहद्रथ की हत्या की व्याख्या करते हुए हरप्रसाद शास्त्री ने इसे ब्राह्मण प्रतिक्रियावाद' का नाम दिया। (ज0ए0सो0नं0 1910, पृ0 259 आदि)

8.3 मौर्यों के पतन के कारण

अखिल भारतीय मौर्य साम्राज्य के पतन पर विचार करते हुए पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने इसे समग्रतः भारतीय समाज की वर्णाधारित परंपरागत व्यवस्था के पुनर्जागरण का परिणाम माना। इस वंश के अंतिम शासक बृहद्रथ की हत्या को उन्होंने 'ब्राह्मण क्रान्ति' के रूप में देखते हुए अशोक प्रियदर्शी के सम्पूर्ण शासनकाल और अभिलेखीय साक्ष्यों की इस रूप में व्याख्या की है कि वह वर्ण संघर्ष का इतिहास प्रतीत होता है। इसके विपरीत अन्य इतिहाकारों ने इस विषय के अन्य पहलुओं यथा राजनैतिक, आर्थिक और प्रशासनिक ढाँचे की कमियों को रेखांकित करने का प्रयास किया है जिन पर पृथक्–पृथक् रूप से विचार किया जाना अपेक्षित है।

8.3.1 अशोक प्रियदर्शी की नीतियाँ और ब्राह्मण प्रतिक्रियावाद

यूरोपीय समाज के साथ भारत के परिचय ने हमारे वर्गों पर आधारित समाज के संबंध में सामान्य जानकारी को विशिष्ट समझ में परिवर्तित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप इतिहास की अनेक घटनाओं की व्याख्या राजनीति के सामान्य नियमों से हटकर वर्णों की पारस्परिक प्रतिक्रिया पर आधारित की जाने लगी। पंडित हरप्रसाद शास्त्री का इस संबंधी अभिमत इसी प्रकार मौर्यों को शूद्र वंशी मानते हुए उनकी तथा विशेषतः अशोक की नीतियों को ब्राह्मण वंशियों के लिए विरोधी भाव वाली सिद्ध करता है और परिणामतः मौर्य वंश के पतन को

ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया–स्वरूप तत्कालीन समाज में ढाँचागत बदलावों के प्रयास का हिस्सा मानता है। शास्त्री के मतानुसार अशोक द्वारा यज्ञबलि का विरोध, न्याय और दण्ड–विधान में समान नियमों को लागू करना और सामान्यतः ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के प्रति असम्मान की दृष्टि ने अशोक के शीघ्र पश्चात् पूरे ब्राह्मण वर्ग को एकजुट होकर तीव्र संघर्ष के लिए संकल्पबद्ध कर दिया जिसकी चरम परिणति पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण सेनापति द्वारा सम्राट बृहद्रथ की हत्या के रूप में हुई। किन्तु हेमचंद्र रायचौधरी ने तर्कों के आधार पर इस मत का खण्डन किया है। वस्तुतः मौर्य शासन जनहितकारी और मानवतावादी संवेनाओं पर आधृत था। अशोक की नीतियों ने अवश्य ही पशुबलि पर रोक लगाई, किन्तु इसके पूर्व ही मुण्डकोपनिषद् (1.2.7) यज्ञ में पशुबलि को ज्ञान–रहित कर्म बता चुका था जिसका पालन करने वाले 'मूढ़' कहे गए। यह भी ध्यातव्य है कि जन्म के आधार पर ब्राह्मणों को प्रदत्त विशेषाधिकार, सिद्धान्त और व्यवहार में प्रशस्त नहीं थे।

अतः अभिलेखगत प्रावधानों की अनुचित व्याख्या के आधार पर किसी प्रतिक्रिया की कल्पना करना सर्वथा अनैतिहासिक, अतार्किक प्रयास होगा। अशोक द्वारा चतुर्थ स्तम्भ लेख में मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधियों के प्रति अनुग्रह स्वरूप दण्ड–समता की व्यवस्था करना; येर्रगुडी के प्रथम लघु शिलालेखानुसार धर्म और सदाचार की व्यापकता स्थापित करना अथवा धर्म–महामात्रों की नियुक्ति, ये सभी कार्य सामान्यतः प्रजाहितकारी थे न कि अब्राह्मण समुदाय (विशेषकर बौद्धों) के लिए अनुचित रूपेण समर्पित। अशोक का ब्राह्मण वर्ग के प्रति श्रेष्ठभाव उसके तीसरे, चौथे, पाँचवें, आठवें, नवें, ग्यारहवें एवं तेरहवें शिलालेख तथा सातवें स्तम्भ लेख से प्रकट होता है जो पंडित हर प्रसाद शास्त्री के पूर्वाग्रहों को समूल समाप्त कर देता है।

अशोक की नीतियों का परिणाम

(1) यदि वर्ण की परस्पर प्रतिक्रिया नहीं तो भी विद्वान् सम्राट **अशोक की राजनीतिक विफलता** को ही साम्राज्य के पतन के कारणभूत रूप में स्वीकार करते हैं। रायचौधरी ('द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 92') में लिखते हैं कि बौद्ध धर्म के स्वीकार के बाद जिस प्रकार साम्राज्य शान्ति और अहिंसा की राह चल पड़ा था, वह किसी महत्वाकांक्षी की विजय योजनाओं को वास्तविकता में बदलने का खुला प्रस्ताव था और जिसका उचित लाभ उस ब्राह्मण सेनानी ने उठाया जिसके पास विद्रोही सेना का समर्थन था। लंबे समय से युद्धों से विरत निष्क्रिय सेना ने संभवतः इसी प्रस्ताव में अपना भविष्य देखा

होगा। सुविदित है कि शासन के आरंभिक वर्षों की कुछ लड़ाइयों और संघर्षों के बाद सेना आमतौर पर धम्मविजय एवं धम्मघोष की ही साक्षी बनी रही। इस समय सैन्य तैयारियों तथा उत्साह में आई कमी का सहज अनुमान किया जा सकता है किन्तु अशोक की दीर्घकालीन शासनावधि में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना बिना मजबूत सैन्य तैयारियों के संभव नहीं हुई होगी, यह भी विचारणीय है। अशोक के अभिलेखों में जिस स्वर में साम्राज्य के प्रति विद्रोह करने वालों के दमन की घोषणा की गई है वह निष्क्रिय सेना के आश्वासन पर संभव नहीं अतः अशोक के 'युद्ध–विराम नीति के दायित्व का सिद्धान्त' भी उचित नहीं लगता।

(2) साम्राज्य के पतन के कारणों में रोमिला थापर (1963, 87) जैसे विद्वान् **राष्ट्रवाद** के प्रश्न को महत्व देते हैं क्योंकि विस्तृत साम्राज्य–सीमा वाले राज्य में किसी एक केन्द्रीय सत्ता के प्रति वफ़ादारी और देशप्रेम को सुनिश्चित करना संभव नहीं लगता। फिर भी, राष्ट्रभक्ति न सही, केन्द्रीय सत्ता की इच्छाशक्ति की भी भूमिका किसी राष्ट्र के निर्माण और सुस्थापन में अहम् होती है। इस दृष्टि से थापर के प्रस्ताव को स्वीकार करना कठिन होगा।

(3) किन्तु केन्द्रीकरण की यह प्रकृति भी आलोचनाओं से सर्वथा परे नहीं है। **अतिशय केन्द्रीकृत प्रशासनिक स्वरूप** ही मौर्य साम्राज्य की नौका का सुराख़ बन गया ऐसी धारणा कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के प्रावधानों से बलवती होती दिखती है। रोमिला थापर का मानना है कि मौर्यकालीन प्रशासन ने अखिल भारतीय साम्राज्य पर कुशल नियंत्रण के लिए जनता के व्यक्तिगत अधिकारों की भी अवहेलना कर दी जिससे असंतुष्ट प्रजा ने अवसर मिलते ही नेतृत्व के परिवर्तन को सहज स्वीकार कर लिया होगा। ऐसा संभव है कि गुप्तचरों द्वारा सूचना एकत्र करने की आदत ने कालांतर में अन्तःपुर और मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का बीज वपन किया होगा जो आपसी मनमुटाव और षडयंत्रों के रूप में साम्राज्य की स्थिरता के लिए घातक बन गया।

यदि आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताओं को विषमताओं को दृष्टि से व्याख्यायित किया जाए तो थापर का ऐसा मानना है **संसाधनों के दोषपूर्ण विभाजन** और दोहन ने व्यापक अविश्वास को जन्म दिया होगा जिसने साम्राज्य के पतन की गति को तीव्रतर कर दिया।

8.3.3 अयोग्य उत्तराधिकारी

इन सबके बावजूद यह प्रश्न विचारणीय है कि साम्राज्य के विशाल आकार और तमाम अनियमितताओं के बीच भी मौर्यों के शुरूआती तीन राजा

इतने सफल और कालजयी उपलब्धियों वाले कैसे बने रहे। उत्तर सक्षम नेतृत्व की योग्यता में निहित है। इस दृष्टि से विचार करने पर मौर्यों के पतन के कारणों में हम कुशल नेतृत्व की योग्यता के अभाव को सर्वप्रमुख पाते हैं। चंद्रगुप्त मौर्य और कौटिल्य की संगत ने जिस आत्मविश्वासी सक्षम राष्ट्र की कल्पना की थी उसे बिंबिसार और फिर अशोक महान् ने दीर्घजीवी बनाया। राष्ट्र–चेतना के स्वाभिमान और मानवतावादी राजनीति से संपोषित मौर्यों के अभूतपूर्व साम्राज्य का रक्षक स्वयं वही मौलिक राष्ट्रचिंतन बना जिसने आगे चलकर जनता की उम्मीदों को उच्चतर मानकों पर खड़ा कर दिया जहाँ से आगे बाद के शासकों की सामर्थ्य समाप्त हो जाती थी। गार्गी संहिता (बृहत्संहिता, पृ0 37) शालिशुक मौर्य को 'धर्मवादी अधार्मिक' कहती है। राजतरंगिणी, तारानाथ के लेखन, कालिदासीय हमें मौर्यों के केन्द्रीय नियंत्रण के ढीला पड़ने और कश्मीर, गांधार और विदर्भ के स्वतंत्र होने की सूचना देते हैं। देश के इस त्वरित विघटन से निश्चय ही अमात्य वर्ग भी स्वतंत्र और मनमाना आचरण करने से पीछे न रह गए, जैसा कि दिव्यावदान (पृ0 371) तक्षशिला में हुए नागरिक विद्रोह के संदर्भ में सूचित करता है। अशोक प्रियदर्शी ने अपने आदेशों के माध्यम से अपने राजत्व काल में ही यद्यपि इस विषय को गंभीरता से लिया और प्रजा–हितार्थ प्रति पाँचवें और तीसरे वर्ष निरीक्षण यात्राओं का प्रावधान किया (कलिंग अभिलेख) किंतु उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के समय यह प्रयास विस्मृत कर दिए गए। स्थानीय प्रशासन जो सफल प्रशासन का आधारभूत फॉर्मूला था (चतुर्थ स्तम्भ लेख) वह अनियंत्रित अधिकार प्राप्त कर कालांतर में उत्पीड़न का माध्यम बन गया हो तो आश्चर्य नहीं।

8.4 सारांश

उपर्युक्त सभी पक्षों पर विचार कर निष्कर्षतः मौर्य साम्राज्य के पतन को साम्राज्यों की स्वाभाविक मृत्यु का एक जीवन्त उदाहरण कह सकते हैं। सभी साम्राज्य अपने विशिष्ट मेधावी नेताओं के प्रयास से खड़े किऐ जाते हैं और पुनः निरुत्साही, अकर्मण्य तथा प्रज्ञा–दुर्बल कर्णधारों के हाथ डुबो दिए जाते हैं। मौर्यों के संदर्भ में विशेषतः विदेशी व्यापारिक संबंधों में क्षीणता और आंतरिक गुटबाजी तथा अंतःपुर के शडयंत्रों (दिव्यावदान) को कोश की रिक्तता तथा सुरक्षा संबंधी असुरक्षा–भाव के साथ जोड़कर पतन के प्रश्न का उत्तर ढूँढा जा सकता है।

8.5 बोध प्रश्न

1 मौर्य वंश के पतन में सम्राट अशोक की भूमिका का मूल्यांकन करें।

2 अशोक के निर्बल उत्तराधिकारियों ने मौर्य राजवंश के ह्रास की गति को और तीव्र कर दिया, समीक्षा करें।

8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन
- मुखिया, हरबंस (सक0) 1999 : द फ्यूडलिज़्म डिबेट, नई दिल्ली, मनोहर
- थापर, रोमिला (1963) 1987 : अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्याज़, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस
- कोसांबी, डी.डी. (1956) 1998 : ऐन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री, बंबई, पॉपुलर प्रकाशन
- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड

इकाई–9 शुंग वंश

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 शुंग इतिहास के स्रोत

9.3 उत्पत्ति

9.4 राज्य क्षेत्र

9.5 पुष्यमित्र शुंग

9.6 राज्य क्षेत्र

9.5.1 विदर्भ के विरूद्व संघर्ष

9.5.2 यवनो के साथ युद्व

9.5.3 पुष्यमित्र के दो अश्वमेध यज्ञ व ब्राह्मण धर्म का पुनरूद्वार काल

9.5.4 साम्राज्य सीमा

9.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

9.7 कण्व वंश

9.8 प्रस्तावना

9.9 वंश का इतिहास

9.10 बोध प्रश्न

9.11 सहायक ग्रन्थ सूची

9.0 प्रस्तावना

पौराणिक विवरणों के अनुसार शुंगों ने 112 वर्षों तक राज्य किया। विष्णु पुराण मौर्यों के बाद मगध के सिंहासन के संबंध में लिखता हैं, ''इसके उपरान्त शुंग वंश राज्य करेगा क्योंकि सेनापति पुष्यमित्र अपने स्वामी को मारकर राज्य ले लेगा। उसका पुत्र अग्निमित्र होगा, उसका पुत्र सुज्येष्ठ होगा, उसका पुत्र आर्द्रक होगा, उसका पुत्र पुलिंदक, उसका पुत्र घोषवसु, उसका पुत्र वज्रमित्र, उसका पुत्र भागवत, उसका पुत्र देवभूति होगा। ये 10 राजा 112 वर्षों तक राज्य

करेंगे।'' शुंग शासन इतिहास की दृष्टि में मौर्य शासन से तौर–तरीकों में इस अर्थ में विशिष्ट हैं कि जहाँ मौर्यों का प्रभाव विस्तार–प्रवण था वहीं शुंगों ने लोक चेतना को प्रत्यक्ष पटल तक आने का अवसर प्रदान कर कहीं अधिक गहरा, जन–प्रभाव स्थापित किया। पुष्यमित्र का स्वयं के लिए 'सेनानी' उपाधि के प्रयोग के प्रति अनुराग साम्राज्यिक महत्वाकांक्षा के विपरीत देशहित के चिंतन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है जो नितान्त अनूठा है।

9.1 उद्देश्य

साम्राज्यवादी मौर्यों के 137 वर्षों के पराक्रमी शासन के उपरान्त जिस नवीन शासन की स्थापना हुई उसका नायक मौर्यों के अंतिम राजा का ब्राह्मण सैन्य प्रमुख पुष्यमित्र नामक वीर पुरुष था। सत्ता हस्तांतरण के रक्त–रंजित घटनाक्रम में पुष्यमित्र ने जिस प्रकार सेना और जनता का विश्वास प्राप्त किया। वह हिंसक और राजधर्म के विपरीत होकर भी देशप्रेम की भावना से समन्वित, अतएव जनक्रान्ति सरीखा प्रतीत होता है।

यह देखना रोचक होगा कि मगध के इतिहास के पहले साम्राज्य के पतन से उठा शुंगों का शासन किस राजनैतिक स्वरूप और संकल्प–शक्ति वाला हुआ।

9.2 शुंग इतिहास के स्रोत

शुंगों के इतिहास को जानने के लिए साहित्य और पुरातत्व से सहायता मिलती हैं। साहित्यिक स्रोतों में समकालीन ग्रंथ यथा पतंजलि का महाभाष्य और मनुस्मृति सर्वाधिक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इन सूचनाओं को पुराणों (मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड), गार्गी संहिता तथा बौद्ध ग्रंथों जैसे दिव्यावदान आदि से प्राप्त विवरणों से अधिकाधिक संपुष्ट कर उस युग के इतिहास का निर्माण किया जा सकता है। कुछ साहित्य जो पश्चात् कालों में लिखा गया, प्रसंगतः शुंगों के इतिहास पर प्रकाश डालता है यथा कालिदासकृत मालविकाग्निमित्रम्, बाणभट्ट कृत हर्षचरित, थेरावली और तिब्बती बौद्ध लेखक तारानाथ के ग्रंथ। इस दृष्टि से कुछ अल्पमहत्व वाले ग्रंथों में हम पाणिनी की अष्टाध्यायी, हरिवंश, बौधायन श्रौतसूत्र, आश्वलायन श्रौत सूत्र तथा बृहदारण्यक उपनिषद् का भी उल्लेख कर सकते हैं जो शुंगों के जातीय अभिज्ञान की समस्या को सुलझाने में सहायक हैं।

पुरातात्विक दृष्टि से अभिलेखिक साक्ष्यों का प्रमाण जिसमें भरहुत स्तूप की वेदिका–लेख, बेसनगर का गरूड़ध्वज, स्तम्भलेख और धनदेव का अयोध्या लेख मुख्य हैं, इस युग के इतिहास को समकालीन वृत्तान्तों से बताते हैं।

मुद्रासाक्ष्यों में कौशाम्बी, अयोध्या, अहिच्छत्रा तथा मथुरा से प्राप्त मुद्राएँ और कलागत साक्ष्यों में भरहुत, साँची तथा बोधगया आदि स्थलों से प्राप्त प्राचीन बौद्ध स्मारकों के अवशेष विशेष मूल्यवान हैं जिनका साहित्य–समन्वित अध्ययन शुंग इतिहास के विषय में विशेष उपादेय है।

9.3 उत्पत्ति

शुंग इतिहास पर प्रकाश डालने वाले सभी स्रोतों में उन्हें ब्राह्मण कहा गया है। बाणभट्ट पुष्यमित्र को उसके कुकृत्य के कारण 'अनार्य' संबोधित करता है किन्तु 'शुंग' संबोधन के प्रयोग द्वारा उनकी ब्राह्मण उत्पत्ति का भी परोक्षतः समर्थन करता है। पुराणों में भी पुष्यमित्र को 'शुंग' बताया गया है जो बृहदारण्यकोपनिषद एवं आश्वलायन श्रौतसूत्र के समय 'आचार्य' के रूप में ख्यात थे। ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत में ब्राह्मण वर्णी ही आचार्य हो सकते थे। अतः शुंग भी ब्राह्मण ही कहाए। आश्वलायन श्रौतसूत्र और पाणिनीय में शुंगों का गोत्र 'भारद्वाज' बताया गया है जो बौधायन श्रौतसूत्र तथा हरिवंश के अनुसार 'कश्यप' था। हरिवंश उन्हें 'औद्भिज्ज काश्यप ब्राह्मण सेनानी' के रूप में पहचानता है, जिन्होंने कलियुग में अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन किया था। पश्चात् कालीन ग्रंथ मालविकाग्निमित्रम् में उनका कुल नाम बैम्बिक बताया गया है, जो कश्यप गोत्रीय थे। नाम–साम्य से इन बैम्बिकों का संबंध मगध नरेश बिंबिसार के साथ भी स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इसी संबंध में दिव्यावदान का मत उल्लेखनीय हो जाता है जिसमें पुष्यमित्र की गणना अशोक के मौर्य उत्तराधिकारियों के रूप में की गई है।

इन विविध मतों के अलावा भी पुष्यमित्रवंशियों के नाम के साथ लगे 'मित्र' शब्द की व्याख्या में उन्हें हरप्रसाद शास्त्री सदृश विद्वानों ने ईरानी भी कहा था जो शीघ्र ही निर्मूल सिद्ध हो गया।

समकालीन स्त्रोतों यथा पातंजल सूत्र और मनुस्मृति तथा पश्चात्वर्ती साक्ष्यों यथा तारानाथ के विवरणानुसार भी शुंग ब्राह्मण ही थे जिनका गोत्र 'कश्यप' अथवा 'भारद्वाज' था और संभवतः किसी 'बैम्बिक' शाखा या कुल विशेष से वे सम्बद्ध थे।

9.4 राज्य–क्षेत्र

शुंगों ने पुष्यमित्र के नेतृत्व में मगध के केंद्र से मौर्यों के उत्तराधिकारी के रूप में अपने राज्य की शुरूआत की किन्तु उनका राज्यक्षेत्र अपने पूर्ववर्ती जितना विस्तृत न था। मौर्य साम्राज्य चंद्रगुप्त के काल से ही प्रान्तों में विभक्त था जिन पर प्रान्तीय प्रशासक अपने मंत्रिमण्डल के साथ शासन करते थे। साम्राज्य के

अवनति काल में ये प्रान्ताधिकारी स्वतंत्र हो गए जिनमें से एक विदर्भ का क्षेत्र यज्ञसेन के नेतृत्व में ठीक उसी समय स्वतंत्र हुआ जिस समय सैन्य निरीक्षण के अवसर पर मौर्यों के सेनापति पुष्यमित्र द्वारा बृहद्रथ की राजनैतिक हत्या हुई। अतः पुष्यमित्र ने यद्यपि मौर्यों का राजनैतिक उत्तराधिकार ग्रहण किया, वे उस साम्राज्य के स्वामी न बन सके जिसे महान मौर्यों ने खड़ा किया था। पाटलिपुत्र पूर्ववत् राजधानी नगर बना रहा जिसके अतिरिक्त साकेत और विदिशा पर शुंगों का अधिकार था। दिव्यावदान और तारानाथ के विवरण बताते हैं कि वर्तमान पंजाब के जालंधर और सियालकोट पर भी शुंगों का प्रभुत्व रहा होगा। उनके राज्य की दक्षिणी सीमा विदर्भ (पूर्वी महाराष्ट्र) तक व्यापक रही होगी। विदर्भ पर यज्ञसेन का अधिकार था जो अंतिम मौर्य बृहद्रथ के सचिव का संबंधी था।

9.5 पुष्यमित्र शुंग

जिस समय मगध के राजनैतिक मंच से मौर्यों के प्रताप का सूर्य अस्त हुआ उस समय मौर्य दरबार भयंकर गुटबाजी, षड्यंत्रों तथा अव्यवस्था के दौर से गुज़र रहा होगा। कालिदास के ग्रंथ मालविकाग्निमित्रम् से हमें पुष्यमित्र के राजनैतिक जीवन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है जिसके अनुसार सत्ता परिवर्तन की घटना के तत्काल बाद से ही ब्राह्मण सेनानी को राज्य में आंतरिक और बाह्य शत्रुओं से जूझना पड़ा। यद्यपि हर्षचरित बृहद्रथ की हत्या को पुष्यमित्र का सुविचारित षड्यन्त्र सिद्ध करता है परन्तु निश्चित रूप से साम्राज्य की चिंताजनक स्थिति ने उसे इस 'अनार्य' कृत्य के लिए उकसाया होगा। दिव्यावदान में उसे 'पुष्यधर्म' का पुत्र बताया गया है जिसने लगभग 184ई0पू0 में सत्ता पर अधिकार किया। अपने 36 वर्षों के शासन में पुष्यमित्र ने तीन महत्वपूर्ण युद्ध लड़े और सर्वतः विजयी रहा।

9.5.1 विदर्भ के विरूद्ध संघर्ष

मालविकाग्निमित्र् विदर्भ–राज यज्ञसेन पुष्यमित्र का 'स्वाभाविक शत्रु' बताता है। आत्मीय संबंधों के कारण बृहद्रथ की मृत्यु के बाद उसने भी विदर्भ (बरार) में अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी अतः राजपद प्राप्त करने के पश्चात् पुष्यमित्र ने प्रथम युद्ध उसके ही विरूद्ध छेड़ा होगा जिससे देश की सुरक्षा को कोई खतरा न रह जाए।

कालिदास युद्ध के घटनाक्रम का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि नए रोपे गए वृक्ष के समान दुर्बल विदर्भ राज्य की सीमा पर यज्ञसेन और शुंगों के प्रतिनिधि वीरसेन (अग्निमित्र के पत्नी के भाई) के बीच युद्ध हुआ जिसमें शुंगों की विजय हुई। युद्ध का कारण मौर्य दरबार की पुरानी गुटबाजी को बताया गया

है जिसके अंतर्गत बृहद्रथ के सेनापति (पुष्यमित्र) और सचिव दोनों के बीच अपनी–अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के सतत प्रयास चलते रहे और बृहद्रथ की हत्या के बाद पुष्यमित्र द्वारा उसके सचिव को बंदी बना लिए जाने पर सचिव के संबंधी यज्ञसेन द्वारा विद्रोह की घोषणा कर दी गई परिणामस्वरूप दोनों ने क्रमशः पाटलिपुत्र तथा विदर्भ में स्वतंत्र होकर शासन करना प्रारम्भ कर दिया। पुष्यमित्र का राज्य विदर्भ की सीमा तक विस्तृत था जहाँ उसके पुत्र अग्निमित्र का प्रान्तीय शासन स्थापित था। अग्निमित्र ने विदर्भ राज्य में फूट का बीज बोकर यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन को अपने पक्ष में कर लिया। अग्निमित्र के साथ एक भेंट के लिए जाते समय माधवसेन को विदर्भ राज्य की सीमा पर यज्ञसेन द्वारा बंदी बना लिया गया और अग्निमित्र से उसकी स्वतंत्रता के बदले मौर्य सचिव की रिहाई का दाँव डाला गया। रिहाई तो नहीं युद्ध हुआ जिसमें यज्ञसेन की पराजय और विदर्भ राज्य का दो हिस्सों में बँटवारा करते हुए अग्निमित्र ने शुंग राज्य की सीमा नर्मदा के दक्षिण तक बढ़ा ली। विदर्भ के दोनों खंडों पर यज्ञसेन और माधवसेन बैठा दिए गए जो पुष्यमित्र की अधीनता स्वीकार करते थे। वरदा (वर्धा) नदी दोनों राज्यों के बीच सीमा के रूप में निश्चित हुई। युद्ध के घटनाक्रम को देखते हुए प्रतीत होता है कि पुष्यमित्र द्वारा सत्ता हस्तगत करने के पश्चात् उसी वर्ष विदर्भ का अभियान हुआ रहा होगा अतः युद्ध की तिथि 184 ई0पू0 में रखी जा सकती है।

9.5.2 यवनों के साथ युद्ध

यवनों के साथ शुंगों के युद्ध का प्रश्न अत्यंत विवादित है। इस विषय पर जानकारी देने वाले स्रोतों में मालविकाग्निमित्रम्, पतंजलि भाष्य व गार्गी संहिता मुख्य हैं। थोड़ा अनुमान धनदेव के अयोध्या से प्राप्त मुद्रालेख के द्वारा भी किया जाता है। मालविकाग्निमित्रम् में जो घटनाक्रम उद्धृत है उसके अनुसार पुष्यमित्र का पौत्र वसुमित्र अपने दादा द्वारा किए जा रहे अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ दिग्विजय पर निकलता है और सिंधु नदी के दक्षिणी तट पर यवनों के साथ हुए संघर्ष में विजयी होकर सकुशल वापस लौटता है। सहायक साक्ष्यों में महाभाष्य यवनों के अनतिदूर अतीत में चित्तौड़ पर आक्रमण करने का विवरण देता है। साथ ही गार्गी संहिता में दुष्ट विक्रान्त यवनों के साकेत, पांचाल और मथुरा पर आक्रमण का विवरण दिया गया है। इन तीनों ग्रंथों के विवरण के आधार पर हम यवन–शुंग युद्ध की कल्पना तो कर सकते हैं किन्तु वास्तविक घटनाक्रम का निर्धारण कष्टसाध्य है। विद्वानों में इस विषय पर मतैक्य नहीं कि युद्ध एक ही हुआ अथवा एक से अधिक। इस युद्ध में यवनों का नेतृत्वकर्त्ता कौन था, डेमेट्रियस, मेनाण्डर या कोई अन्य! ए0के0 नारायण का मानना रहा कि यवनों ने

पुष्यमित्र के शासन के आखिरी वर्षों में भारत के आंतरिक हिस्सों में एक आक्रमण किया जिसका नेता मिनेण्डर था। टॉर्न के अनुसार आक्रमण तो एक ही हुआ किन्तु डेमेट्रियस की अगुवाई में। इसके विपरीत दो आक्रमणों को मानने वाले विद्वान महाभाष्य और गार्गी संहिता के साक्ष्य को मौर्यों के समय हुए प्रथम यवन आक्रमण के प्रमाण स्वरूप स्वीकार करते हैं जबकि कालिदासीय साक्ष्य के आधार पर मानते हैं कि द्वितीय यवन आक्रमण में वसुमित्र का सीमान्त संघर्ष चंबल अथवा यमुना की किसी सहायक सिंधु नदी के दक्षिणी तट पर हुआ जिसमें वसुमित्र सफल रहा। इस दृष्टि से यह यवनों का दूसरा आक्रमण प्रतिरक्षात्मक संघर्ष रहा होगा जिससे देश के यवनों द्वारा आक्रान्त किए जाने की सूचना नहीं मिलती।

वस्तुतः बैक्ट्रिया में निवास करने वाले ग्रीक लोगों के समुदाय में तत्कालीन समय में आंतरिक युद्धों के दौर से इन्कार नहीं किया जा सकता। हमें यह मानना होगा कि शुंगों की राज्य सीमा अधिकांशतः बाह्य आक्रमणों से मुक्त थी जिसका प्रमाण पुष्यमित्र द्वारा किए जा रहे यज्ञ भी देते है। यह युद्ध भी साम्राज्य के प्रारंभिक वर्षों में लड़ा गया।

9.5.3 पुष्यमित्र के दो अश्वमेध यज्ञ व ब्राह्मण धर्म का पुनरूद्धार काल

शुंग—यवन युद्ध पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ का सबसे उन्नत उद्‌घोष है। निश्चित ही अपनी राज्य सीमाओं को आंतरिक और बाह्य रूप से सुरक्षित कर पुष्यमित्र ने दिगन्तर विजय को घोषित करने का वह मार्ग चुना होगा जो वर्षों तक अवरूद्ध रहा था और जिसके पुनः प्रतिपादन द्वारा वह अपनी मंशा को स्पष्ट कर सकता था। पतंजलि के महाभाष्य में ''इह पुष्यमित्रं याजयामः'' (यहाँ हम पुष्यमित्र के लिए यज्ञ करते हैं) एक अश्वमेध की चर्चा है। धनदेव के अयोध्या लेख से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र द्वारा दो अश्वमेधों का संपादन किया गया। इन यज्ञों की स्मृति हरिवंश पुराण में भी सुरक्षित है जहाँ व्यक्त किया गया कि 'कलियुग में औद्‌भिज्ज (स्वतः अद्‌भुत/नवोदित) काश्यप गोत्रीय द्विज सेनानी अश्वमेध यज्ञ का पुनरूद्धार करेगा।

वस्तुतः पुनरूद्धार मात्र यज्ञ का नहीं वरन् ब्राह्मण धर्म का ही हुआ। मौर्य शासकों की सर्वधर्म–एकता वाली नीति तथा मुख्यतः जैन–बौद्ध जैसे श्रमण धर्मों के प्रति आग्रह ने ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठा को अवरूद्ध कर दिया था। शुंग सेनानी के सिंहासन पर बैठने के साथ ही ब्राह्मण धर्म और संस्कृति को उसके प्राचीन गौरवपूर्ण स्थान पर विराजने का सुअवसर मिल गया। दो अश्वमेधों के संपादन ने याजकों–पुजारियों के वर्ग में आत्मविश्वास का संचार किया। वैदिक साहित्य को आधार बनाकर व्याकरण व व्याख्या के ग्रंथों का लेखन सिद्ध

करता है कि तत्कालीन समाज वैदिक व्यवस्थाओं तथा वर्णाश्रम धर्म संबंधी निर्देशों की ओर वापस लौट रहा था। पतंजलि का महाभाष्य, मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रंथ इसी प्रतिबद्धता के सूचक हैं जो शुंग काल में लिखे जा रहे थे।

किन्तु यह कहना जल्दबाजी होगी की पुष्यमित्र के राज्य का धार्मिक ढाँचा विचारहीन प्रतिक्रिया पर टिका था। ब्राह्मण परंपराओं की ओर पुनः उन्मुख होने का प्रभाव सामाजिक असंतुलन और अस्थिरता के रूप में कदापि नहीं दृष्टिगोचर होता। यद्यपि तारानाथ के वृत्तान्त, अवदान कल्पलता तथा दिव्यावदान में बौद्धों के प्रति शुंग राजाज्ञा, जिसमें वह श्रमण–मस्तक लाने वाले के लिए सौ दीनार का इनाम घोषित करता है, का उदाहरण पुष्यमित्र के धार्मिक अतिरेक को प्रकट करने के लिए बहुधा प्रयुक्त किए जाते हैं परन्तु वस्तुतः भरहुत, साँची, बोधगया जैसे बौद्ध तीर्थों के संदर्भ में ये उदाहरण अर्ध सत्य प्रतीत होते हैं। ऐसी राजाज्ञा देशद्रोही श्रमणों के प्रति देशहित में जारी की गई राजनैतिक कार्यवाही से अधिक कुछ नहीं। स्वयं दिव्यावदान में अन्यत्र पुष्यमित्र के बौद्ध मंत्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो उस पर लगे बौद्ध धर्मावलंबियों के शोषण के आरोप को निर्मूल साबित करता है। सिंहली बौद्ध ग्रंथ महावंस में भी (पृ0 193) प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के प्रथम चरण में (101–77 ई.पू.) शुंगों के शासित क्षेत्रों बिहार, मालवा, अवध तथा निकटवर्ती हिस्सों में अनेक विहारों तथा उनमें रहने वाले हजारों भिक्षुओं का उल्लेख मिलता है। बौद्धों का यह निवास कुछ वर्षों में नहीं बल्कि दशकों में विकसित हुआ रहा होगा, यह कल्पना करना अनुचित नहीं। अतः निष्कर्षतः पुष्यमित्र शुंग को ब्राह्मण धर्म का पुनरूद्धारक अवश्य कहा जाना चाहिए किन्तु बौद्धों का विरोधी मानते हुए नहीं।

9.5.4 साम्राज्य–सीमा

मौर्यों के अंतिम शासक के अधिकार में मात्र मध्यप्रदेश और अवन्ति के हिस्से शामिल थे जिसे पुष्यमित्र ने राजनैतिक उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त किया। पंजाब और जालंधर बौद्ध प्रमाणों से उसकी राज्य सीमा में परिगणित थे। पाटलिपुत्र इस साम्राज्य की राजधानी और विदिशा प्रान्तीय राजधानी थी। अयोध्या अभिलेख और वायु पुराण के अनुसार पुष्यमित्र ने इस राज्य पर अपने संबंधियों और राजकुमारों को नियुक्त किया था। 184–148 ई0पू0 के मध्य 36 वर्षों तक शान्तिपूर्ण राज्य कर सेनानी पुष्यमित्र ने राज्यसत्ता अपने वंशजों को सौंप दी।

9.6 पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

पुराणों के अनुसार शुंग वंश में कुल दस राजा हुए जिनकी सम्मिलित

शासनावधि 112 वर्ष थी। इनकी सर्वसम्मत सूची इस प्रकार है–

1. पुष्यमित्र शुंग– 10 वर्ष
2. अग्निमित्र – 8 वर्ष
3. वसुज्येष्ठ/सुज्येष्ठ – मुद्राओं का जेठमित्र (?) या कोसल से प्राप्त अभिलेख का ज्येष्ठ मित्र
4. वसुमित्र – 10 वर्ष
5. भद्रक/ओद्रक– कम से कम 14 वर्ष
6. पुलिंदक
7. घोष/भद्रघोष
8. वज्रमित्र
9. भागवत– 32 वर्ष
10. देवभूति/देवभूमि – 10 वर्ष

इस सूची में परिगणित शासकों में नवें स्थान पर प्रदर्शित भागवत नामक शासक का संबंध बेसनगर से प्राप्त हेलियोडोर के गरूड़ स्तम्भ लेख के भागभद्र से स्थापित किया जाता है। यद्यपि मार्शल (ए गाइड टू साँची, पृ0 11) ने इसे पाँचवाँ शुंग राजा भद्रक माना है किन्तु समकालिकता तथा अन्य समकालीन साक्ष्यों के प्रकाश में सामान्यतया नवें शुंग भागवत को ही हेलियोडोर के समय तक्षशिला के शासक अण्टिआल्किडस का समकालीन स्वीकृत किया जाता है।

ऐसा लगता है कि पुष्यमित्र के बाद साम्राज्य के पश्चिमी हिस्सों में बाख़्त्री यवनों का स्वामित्व स्थापित हो गया था जिनके साथ शुंगों ने मित्रता करने में ही अपना हित समझ होगा। इस समय तक्षशिला के बाख़्त्री यवन अण्टिआल्किड के राजदूत का भागवत कहा जाना और शुंग शासक को 'त्रातारस' उपाधि देना सिद्ध करता है कि संघर्ष के बजाय दोनों कमज़ोर राजाओं ने मैत्री द्वारा अपने राज्य और राजपद की सुरक्षा का रास्ता चुनने में ही समझदारी देखी होगी।

इस वंश के अंतिम शासक देवभूति/देवभूमि के संबंध में पुराणों की सूचना है कि वह दस वर्ष शासन कर चुकने पर अपने ही अमात्य द्वारा सत्ताच्युत कर दिया गया। हर्षचरित में देवभूति को विलासी, कामाचरी कहा गया है जिसे उसी की दासी–पुत्री द्वारा अमात्य वसुदेव ने षड्यंत्रपूर्वक मरवा डाला था। विष्णु पुराण भी इसका समर्थन करता है। इस प्रकार पौराणिक साक्ष्यों के आधार पर

शुंग वंश 72 ई0 पू0 में पाटलिपुत्र के सत्ता केंद्र से विस्थापित कर दिया गया। हालांकि आंध्रों द्वारा इन्हें समूल विनष्ट किए जाने तक मध्य भारत में विदिशा के केन्द्र से येन–केन–प्रकारेण राजनैतिक अस्तित्व बचाने में वे सफल रहे।

9 7 कण्व वंश

'अतिस्त्रीसंगरतमनंगपरवशं शुंगममात्यो वसुदेवो देवभूतिदासीदुहित्रा देवीव्यंजनयावीत जीवितमकारयत्।' –हर्षचरित, षष्ठ उच्छ्वास

हर्षचरित का यह वर्णन कि ''अमात्य वसुदेव ने अति स्त्री संगत और कामदेव के वशीभूत शुंग को रानी के वेश में देवभूति की दासीपुत्री को भेजकर मरवा डाला'' विष्णु पुराण के तत्संबंधी साक्ष्य से मेल खाता है जिसका संकेत है कि अंतिम शुंग देवभूति की हत्या उसके ही अमात्य के षडयन्त्र द्वारा की गई थी। पाटलिपुत्र के राज सिंहासन पर सत्ता का यह उलटफेर कुछ नया नहीं बल्कि शक्ति के प्रति मोह का पंरपरागत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

9.8 प्रस्तावना

कण्वों ने 72 ई0पू0 से 27 ई0पू0 तक मगध पर शासन किया। पुराणों के अनुसार 'इस वंश में राजा सत्य और न्याय के साथ शासन करेंगे और पड़ोसियों को दबाकर रखेंगे।' निश्चय ही अंतिम शुंग देवभूति से मगध का अधिकार छीन कर वसुदेव कण्व, जो कि शुंगों के समान ही ब्राह्मण जाति का था, नए काण्वायन वंश का संस्थापक बना परन्तु राजनैतिक व सामाजिक आदर्शों की दृष्टि से यह परिवर्तन विशेष बदलावों भरा नहीं कहा जा सकता। वैदिक धर्म और परंपराओं का पुनर्स्थापन एवं अनुपालन पूर्ववत् जारी रहा। मात्र 45 वर्षों तक सत्ता पर बने रहने वाले काण्वायन वंश के विषय में जानकारी के स्रोत नगण्य हैं। पौराणिक व साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त इस विषय में किसी आभिलेखिक अथवा मुद्रासाक्षीय प्रमाणों की प्राप्ति नहीं होती।

9.9 वंश का इतिहास

ज्ञात सूचनाओं के प्रकाश में हम कण्व वंश के राजाओं की अधोवर्णित सूची प्राप्त कर सकते हैं–

1. वसुदेव – 9 वर्ष
2. भूमिमित्र – 14 वर्ष
3. नारायण – 12 वर्ष
4. सुशर्मा – 10 वर्ष

इस सूची के राजाओं के विषय में विस्तृत जानकारी देने वाले स्रोतों के अभाव में इस वंश का इतिहास सीमित रूप से ही निर्मित किया जा सकता है। आर0 जी0 भण्डारकर (अर्ली हिस्ट्री ऑफ डेकन में) प्रस्ताव करते है कि 'आन्ध्र–भृत्यों के प्रथम राजा ने कण्वों के साथ ही बची–खुची शुंग सत्ता का भी विनाश किया था।' प्रतीत होता है कि जब शुंग कुल के राजा निर्बल हो गए तो कण्वों ने सत्ता अधिग्रहीत कर ली होगी और आधुनिक काल के पेशवाओं की भाँति स्वामिकुल का नाम लिए बिना स्वयं शासन किया होगा।' जो भी हो, वायु पुराण के अनुसार अंतिम काण्वायन सुशर्मा भी अपने आन्ध्रभृत्य शिमुख (सिंधुक) द्वारा मार डाला गया। यही इस वंश का संक्षिप्त इतिहास रहा जिसकी समाप्ति पर आन्ध्र–सातवाहनों के वर्चस्व का सूर्य मध्य भारत की भूमि से उदित हुआ।

9.10 बोध प्रश्न

1. मौर्यों के पश्चात् भारत की राजनीति में शुंग वंश के योगदान का मूल्यांकन करें।
2. पुष्यमित्र शुंग के राजनैतिक व्यक्तित्व और व्यक्तिगत धार्मिक विश्वास के आलोक में शुंग वंश का महत्व रेखांकित करें।
3. मगध के राजनैतिक इतिहास में कण्वों की भूमिका पर टिप्पणी करें।

9.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1912
- घोष, नगेन्द्र नाथ (1960) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, द इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड।
- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्रचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
- जर्नल ऑफ बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1918।
- बाशम, ए. एल (1954) 2014 : शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी
- रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस

इकाई—10 सातवाहन राजवंश

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्‌देश्य

10.2 इतिहास जानने के स्रोत

10.3 मूल स्थान

10.4 सातवाहनों का इतिहास और शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियाँ

10.5 शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियाँ

10.6 अंधकार युग

10.7 गौतमीपुत्र शातकर्णि

10.7.1 क्षहरातों के विरूद्ध सफलता

10.8 वसिष्ठीपुत्र पुलुमावी

10.8.1 वसिष्ठीपुत्र के उत्तराधिकारी

9.10 बोध प्रश्न

9.11 सारांश

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 प्रस्तावना

सम्राट अशोक के पश्चात् मौर्यों का नियंत्रण उनके अपने ही दूरवर्ती प्रदेशों पर कम होने लगा जिससे विदर्भ के दक्षिण में उत्तरी और दक्षिणी दकन के क्षेत्रों पर स्वतंत्र शासकों का राज्य स्थापित होने लगा। ये शासक दक्षिणी महाराष्ट्र (ब्रह्मपुरी के कूरा शासक), आन्ध्रप्रदेश (वेरापुरम के महारठी और भाटिप्रोलु के कुवेरक), तेलगांना (कोटिलिंगला के गोभद्र, सामिगोप, चिमुक आदि शासक) में समग्रतः महारथी और महाभोज के नाम से जाने जाते थे जिन्हें समाप्त कर प्रथम शताब्दी ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में नवीन साम्राज्य का उदय हुआ। यह नवीन राज्य शुंगों और कण्वों के ही समान ब्राह्मणवादी व्यवस्था का पोषक था जिसने मगध के स्थान पर सत्ता के केन्द्र को आन्ध्र—महाराष्ट्र में संकेंद्रित कर दिया। अभिलेखों के आधार पर इस वंश को सातवाहन वंश के नाम से जाना जाता है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त जान सकेगे–

- सातवाहन वंश के राजनीतिक इतिहास के विषय मे।
- सातवाहन साम्राज्य के सांस्कृतिक उपलब्धियों के विषय में।

10.2 इतिहास जानने के स्रोत

सातवाहनों के इतिहास को जानने के लिए हम मुख्यतः पुराणों, अभिलेखों, सिक्कों और कला–स्थापत्यगत अवशेषों पर निर्भर करते हैं। मुख्यतः मत्स्य एवं वायु पुराणों में इस वंश का इतिहास और वंश की पहचान के परंपरागत प्रसंग संरक्षित हैं। पुराणों में सातवाहनों का अभिधान 'अन्ध्रमृत्य' अथवा 'आन्ध्र' बताया गया है जो जाति अथवा स्थान–बोधक हो सकता है। विभिन्न पुराणों में 'आंध्र वंश के कुल शासकों की संख्या 17, 18, 19 या 30 बताई गई है जिन्होंने 300 से 411 वर्षों तक शासन किया। यह अनिश्चयपूर्ण शासनावधि संभवतः विभिन्न पुराणों द्वारा समकालीन वंशों के शासन की अवधि को परस्पर जोड़कर प्रस्तुत करने की विशिष्ट शैली के कारण प्राप्त हुई होगी।

पुराणों की सूचना को जाँचने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका आभिलेखिक स्रोतों की सहायता लेना है। इस वंश के इतिहास के लिए रानी नागनिका का पुणे, नाणेघाट का लेख, रानी गौतमी बलश्री का नासिक गुहालेख क्रमशः शातकर्णि प्रथम और गौतमी पुत्र शातकर्णि के जीवन और उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डालता है। गौतमीपुत्र शातकर्णि का नासिक से प्राप्त दो लेख उसके जीवन को उसकी स्वयं की प्रशस्ति के रूप में सामने रखता है। इस वंश के दो अन्य शासकों यज्ञश्री शातकर्णि का नासिक गुहालेख पुराणों से प्राप्त विवरणों की जाँच के लिए विशेष उपयोगी है। अन्य समकालीन राजवंशों से प्राप्त अभिलेखों में खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिससे राज्यों के पारस्परिक संबंधों और तिथिक्रम को समझने में सहायता मिलती है।

सातवाहनों ने विविध धातुओं और मूल्य परिमाणों में जो सिक्के चलवाए उनके प्राप्ति स्थल तथा निर्माण तकनीक का अध्ययन सातवाहन इतिहास की जानकारी की महत्वपूर्ण कड़ी है। नासिक में जोगलथम्बी मुद्रा भंडार में नहपान के गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा पुनर्मुद्रांकित सिक्के तथा यज्ञश्री शातकर्णि के जलपोत अंकित सिक्के इस दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं।

स्मारकों, जिनमें साँची महास्तूप तथा नासिक, कार्ले और भाजा आदि के गुहा विहारों व चैत्यों की गणना की जाती है, सातवाहन इतिहास और तत्कालीन

समाज के विषय में उत्तम प्रकाश डालते हैं।

इनके अलावा टालमी, प्लिनी तथा पेरिप्लस ऑफ दि इरिथ्रियन सी के लेखक के विवरणों का उस युग के समग्र इतिहास को जानने में अनन्य महत्व है।

10.3 मूल स्थान

सातवाहनों के मूल स्थान का प्रश्न अत्यंत उलझा हुआ है। अपने अभिलेखों में वे दक्षिणापथ प्रवर या दक्षिणापथ के स्वामी कहे गए हैं। सातवाहनों के अधिक सिक्के और अभिलेख महाराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं और राजधानी प्रतिष्ठान की पहचान महाराष्ट्र में औरंगाबाद के पैठण से की गई है। समकालीन हाथीगुम्फा अभिलेख के साक्ष्य से भी सातवाहनों के प्रारंभिक राज्य को महाराष्ट्र में अवस्थित मानना चाहिए। इस वंश के सबसे प्रतापी शासक गौतमी पुत्र शातकर्णि के साम्राज्य में उत्तर में सौराष्ट्र से दक्षिण में कृष्णा नदी, पूर्व में विदर्भ से पश्चिम में कोंकण तक के प्रदेश सम्मिलित थे। पुराणों में प्रयुक्त आन्ध्र या आंध्रप्रदेश पर सातवाहनों का अधिकार परवर्ती सातवाहन शासकों की उपलब्धि रहा जो मूल प्रदेश, पैठण व उसके आस–पास के क्षेत्रों पर शकों के अधिकार स्थापित हो जाने के पश्चात् हुए विस्थापन का परिणाम माना जाना चाहिए। अपने शक्ति के उत्कर्ष काल में सातवाहनों का अधिकार महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश तक फैला हुआ था किन्तु मूलतः वे महाराष्ट्र के निवासी थे। सुत्तनिपात के भाष्य में महाराष्ट्र स्थित अश्मक और मूलक जैसे राज्यों को आन्ध्र या अन्ध्रक कहा गया है किन्तु ये क्षेत्र आन्ध्र प्रदेश की सीमा के बाहर थे। बौद्ध ग्रंथ में 'सेतकन्निक' नामक नगर को माज्झिम देश (मध्यदेश) की दक्षिणी सीमा पर स्थित बताया गया है जिसे संभवतः शातकर्णि ने स्थापित किया था। यह साक्ष्य भी सातवाहनों का मूल क्षेत्र आन्ध्र नहीं वरन् महाराष्ट्र में निर्धारित करता है।

10.4 सातवाहनों का इतिहास और शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियाँ

सुज्ञात है कि सातवाहनों के वंशक्रम, राजाओं की संख्या और शासनावधि के संबंध में एकमत का अभाव है। जहाँ मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराण इस वंश में 30 शासक और 460 वर्षों की कुल राज्यावधि स्वीकृत करते हैं वहीं वायु पुराण 17 राजाओं और उनका कुल शासन काल 300 वर्षों का मानता है। इसमें भी पौराणिक सूची से आभिलेखिक व मौद्रिक प्रमाणों का सुमेल नहीं बैठता। इस स्थिति में इस वंश के व्यवस्थित इतिहास को जानना एक चुनौती है।

सातवाहन वंश का आदि पुरुष 'सातवाहन' नामक व्यक्ति को माना जाता

है। इतिहासकारों ने इस वंश के प्रथम स्वतंत्र शासक सिमुक, शिमुख अथवा सिंधुक का शासन लगभग 50–27 ई0पू0 में स्वीकार किया है। इस आन्ध्रजातीय ब्राह्मण राजसेवक ने (जिसे आन्ध्रमृत्य, भृत्य या काण्वभृत्य कहकर पुराणों में संबोधित किया है) अंतिम कण्व राजा सुशर्मा की हत्या कर दी और अवशिष्ट शुंग–शक्ति का पृथ्वी से उच्छेद कर दिया। निश्चित रूपेण सिमुक का यह अभियान विदिशा समेत मध्य प्रदेश पर सातवाहनों के अतिक्रमण का निर्णायक उद्घोष था। पूरे उत्तर भारत पर नहीं परन्तु पश्चिमी भारत और विदिशा के क्षेत्रों पर उसने यह अधिकार अधिराज कण्वों और शुंगों की स्थानीय सत्ता को पराजित करके प्राप्त किया होगा। कण्व सुशर्मा की हत्या ने यद्यपि उत्तर भारत की राजनीति में उलटफेर कर दिया पर सामाजिक स्तर पर ब्राह्मण संस्कृति का पल्लवन कदापि अवरूद्ध नहीं हुआ।

सिमुक का भाई कृष्ण या कन्ह था जिसने सिमुक का उत्तराधिकार ग्रहण कर नासिक तक अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसका शासन 18 वर्षों का रहा।

10.5 शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियाँ

वंश का तीसरा शासक शातकर्णि प्रथम नाणेघाट अभिलेख की रानी नागनिका के संदर्भ और उल्लेखों से विशेषतः प्रसिद्ध है। 18 वर्षों के अपने शासनकाल में उसने समस्त दक्षिणापथ पर अपना अधिकार स्थापित किया जिसके कारण महामेघवाहन वंश के राजा खारवेल के कलिंग राज्य के साथ उसकी सीमाएँ जा लगी। स्वार्थ के टकराव के बीच उसने संपूर्ण मालवा, नर्मदा घाटी और विदर्भ को अपने प्रभुत्व में निरंतर बनाए रखा। संभवतः इसी उपलक्ष्य में उसने दो अश्वमेध और राजसूय यज्ञ संपादित किए जिसका उल्लेख नाणेघाट अभिलेख में प्राप्त होता है।

कलिंग नरेश खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि खारवेल ने अपने शासन के दूसरे ही वर्ष शातकर्णि के विरूद्ध अभियान किया था। उसकी सेना शातकर्णि के राज्य की दक्षिणी सीमा पर कृष्णा नदी के तटवर्ती असिक नगर तक आ पहुँची। किन्तु साक्ष्यों के अभाव में हम किसी वास्तविक युद्ध की कल्पना नहीं कर सकते। खारवेल का यह अभियान धावा मात्र ज्ञात होता है।

उपरोक्त अभियान के अतिरिक्त हमें शातकर्णि प्रथम की किसी अन्य सैन्य उपलब्धि का पता नहीं। उसके सिक्कों की प्राप्ति पश्चिमी मालवा ('श्री राजा सात') पर अधिकार की पुष्टि करती है। उत्तरी कोंकण व गुजरात पहले ही

उसका प्रभुत्व मान चुके थे इस कारण उसका 'दक्षिणापथपति' उपाधि धारण करना मालवा सहित समस्त मध्यभारत, और आस–पास के दकन के क्षेत्रों पर निर्विघ्न शासन का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसकी अन्य उपाधि 'अप्रतिहतचक्र' इसी अधिकार के स्थायित्व का प्रमाण है।

शातकर्णि प्रथम ने वैवाहिक संबंधों के माध्यम से भी राज्य–लाभ अर्जित किया होगा। रानी नागनिका/नायनिका के नाणेघाट अभिलेख के साक्ष्य से पता चलता है कि शातकर्णि ने शक्ति संपन्न 'महारठी' परिवार की नागवंशी कन्या से विवाह किया था। यह विवाह राजनैतिक लाभ की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि महारठी त्रनकयिरों का लगभग स्वतंत्र राज्य उत्तरी मैसूर में सुस्थापित था जहाँ से उनके सिक्कों की प्राप्ति होती है। इस विवाह के परिणमास्वरूप महारठियों की स्वामिभक्ति और सहयोग शातकर्णि I को प्राप्त हुआ होगा।

पेरिप्लस के वर्णनानुसार एल्डर सैरागोनस के इस सुप्रतिष्ठित साम्राज्य की राजधानी प्रतिष्ठान थी तथा कल्याण व सोपारा अन्तर्राष्ट्रीय पत्तन के रूप में विकसित हो चुके थे। दक्षिणापथ में वैदिक यज्ञों की पुनर्स्थापना करते हुए उसने शासन के आरंभ में अश्वमेध और राजसूय यज्ञों को रानी नागनिका के साथ संपादित किया। यज्ञों की प्रतिष्ठा में अपनी धर्मपत्नी नागनिका के नामांकित रजत मुद्राओं का प्रचलन अपने पत्नी–पक्ष के राजनैतिक महत्व के प्रति उसकी कृतज्ञता को भी प्रदर्शित करता है।

10.6 अंधकार युग

शातकर्णि प्रथम का शासन सातवाहनों के कीर्ति का प्रथम सोपान था। उसका उत्तराधिकार उसके दो अल्पवयस्क पुत्रों वेदश्री और शक्तिश्री को प्राप्त हुआ जिनकी संरक्षिका बन कर नागनिका ने राज्य किया किन्तु अगले सौ वर्षों का सातवाहनों का इतिहास प्रामाणिक सूचनाओं के अभाव में अंधकारपूर्ण है। पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी से हमें संकेत मिलता है कि पूर्व में व्यापार के लिए उपयोगी कल्लिएन (कल्याण, ठणे, मुंबई) का बंदरगाह संडेरीज के समय भयग्रस्त हो गया था जिसके कारण यूनानी व्यापारिक पोतों की इस ओर आवाजाही कम हो गई थी। इस स्थिति का दायित्व पश्चिमी भारत के शकों पर डाला जाता है। शातकर्णि प्रथम से गौतमीपुत्र शातकर्णि के बीच सौ वर्षों के अंतराल में पुराणों के अनुसार 10 से 19 सातवाहन राजाओं से शासन किया है। आपीलक, कुन्तल शातकर्णि और हाल वे नाम हैं जिन्हें हम क्रमशः मुद्रा, वात्यायनकृत कामसूत्र और गाथासप्तशती नामक प्राकृत ग्रंथ से भी जानते हैं। वे सातवाहनों की मुख्य वंश के सदस्य थे अथवा शाखावंश के कहना कठिन है

किन्तु इस समय का सम्यक् इतिहास मात्र सीमित रूप से ही हमारे समक्ष प्रकट होता है जिसके कारण इस युग को 'अंधकार के युग' अथवा 'ग्रह—पीड़न काल' के रूप में भी जाना जाता है।

10.7 गौतमीपुत्र शातकर्णि

लगभग 9 ई0 पू0 से लेकर 9 ईस्वी के बीच शातकर्णि प्रथम के 18 वर्षों के शासन और 100 वर्षों के ग्रहपीड़न काल के बाद 106 ई0 में गौतमीपुत्र शातकर्णि सातवाहनों का अगला शासक बना। राजा बनते ही उसके समक्ष सबसे बड़ी चुनौती दक्षिणी राजस्थान, मालवा, उत्तरी महाराष्ट्र और काठियावाड़ पर अधिकृत शक—क्षहरातों की सत्ता का उन्मूलन था। गौतमीपुत्र के शासन के 18वें वर्ष के नासिक अभिलेख और उसके पुत्र वसिष्ठीपुत्र पुलुमावी के शासन वर्ष 19वें के नासिक प्रशस्ति में गौतमीपुत्र के राजनैतिक व्यक्तित्व को रूपायित किया गया है। इन साक्ष्यों के आधार पर उसकी राजनैतिक उपलब्धियों को हम इस रूप में वर्णित कर सकते हैं—

10.7.1 क्षहरातों के विरूद्ध सफलता

गौतमीपुत्र शातकर्णि इस वंश का महानतम शासक था क्योंकि उसने वंश की पुनर्प्रतिष्ठा की। पुलुमावी के नासिक लेख के अनुसार उसने 'शक—यवन और पह्लवों का विनाश कर सातवाहन कुल के गौरव की पुनर्स्थापना की। उसकी यह उपलब्धि उसके शासन के 18वें वर्ष तक प्राप्त हो चुकी थी तथा शकों को उत्तरी महाराष्ट्र से बाहर खदेड़ा जा चुका था। गौतमीपुत्र का शक प्रतिद्वन्द्वी क्षहरात महाराज नहपान था जिसके सिक्कों को उसने अपने चिह्नों ने पुनर्लांछित करवाया था। उल्लेखनीय है कि शकों ने सातवाहनों को उनके ही मूल क्षेत्रों से विस्थापित कर दिया था जिसके कारण न मात्र वंश की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा वरन् कल्याण, सोपारा जैसे बंदरगाहों से होने वाला विदेशी संपर्क भी टूट गया। अतः गौतमीपुत्र ने शकों के विरूद्ध अभियान के माध्यम से सातवाहन वैभव की सभी संभावनाओं को पुनर्जीवित करने की मंशा से यह युद्ध लड़ा होगा। अपने पुराने राज्य को पुनः अधिकार में लेकर उसने 'वेणाकटक स्वामी' की उपाधि धारण की और नासिक के बौद्ध संघ को 'अजकालकिय' नामक क्षेत्र दान में दिया। संभवतः क्षहरातों के विरूद्ध उसका युद्ध नासिक में गोवर्धन क्षेत्र के आस—पास ही कहीं लड़ा गया था। उसके नासिक अभिलेख की तिथि उसके शासन वर्ष 18 की है जिसमें गोवर्धन (नासिक) के अमात्यों को संबोधित करते हुए नहपान के दामाद उषवदात (ऋषभदत्त) के अधिकार की एक भूमि को एक बौद्ध संघ को दान में दिए जाने की सूचना है। इस अभिलेख से

यह भी विदित होता है कि इस समय वह गोवर्धन के वेणाकटक (नासिक) स्थित सैन्य शिविर में था। जैन आवश्यक सूत्र की टीका निर्युक्ति में वर्णित है कि सातवाहन राजा ने नहपान की राजधानी भड़ौच (भृगुकच्छ) को जीता तथा उसके कोष को भी अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार आर्थिक रूप से राज्य को मजबूत आधार प्रदान करते हुए गौतमीपुत्र ने अन्य स्थानों की भी विजय की जिसका वर्णन पुलुमावी के लेख में प्राप्त होता है। इसमें विजित प्रदेशों की सूची में ऋषिक (कृष्णा नदी के तट पर अवस्थित क्षेत्र), अश्मक (महाराष्ट्र का गोदावरी क्षेत्र), मूलक (महाराष्ट्र का प्रतिष्ठान क्षेत्र), विदर्भ (बरार) के साथ–साथ दक्षिणी काठियावाड (सुराष्ट्र), पश्चिमी राजपूताना (कुकुर), पूर्वी व पश्चिमी मालवा (आकर–अवन्ति) और उत्तरी कोंकण (अपरान्त) शामिल थे। पुलुमावी द्वारा प्रदत्त यह सूची गौतमीपुत्र का साम्राज्य क्षेत्र उत्तर में कुकुर–सौराष्ट्र से लेकर दक्षिण में कृष्णा तक व्यापक बताती है। दक्षिण कोसल और आंध्र क्षेत्र (आन्ध्रापथ) पर पहले ही उसका नियंत्रण था। इसमें नासिक और कार्ले को उसने नहपान के दामाद उषावदात से संघर्ष में जीता जिसकी घोषणा उसके द्वारा लिखवाए गए नासिक और कार्ले के दान–लेखों में मिलती है। कार्लें में भी उसने नासिक की भाँति उषावदान के ग्राम–दान को अपने अधिकार में लेकर दुबारा जारी किया था। संभवतः इसी युद्ध में गौतमीपुत्र ने क्षहरातों का साथ देने के कारण शक, यवन और पह्लव जैसी विदेशी जातियों को भी हराया होगा जिसकी चर्चा पुलुमावी के नासिक गुहालेख में की गई है।

गौतमीपुत्र की माता गौतमी बलश्री के प्रशस्ति लेख में कथित है कि उसके घोड़े तीनों समुद्रों का जलपान करते थे, जो निश्चय ही उसकी विशाल सीमाओं का संकेत करता है।

इस प्रकार चतुर्दिक निष्कंटक राज्य प्राप्त करके गौतमीपुत्र शातकर्णि ने 'महाराज', 'राजराज' आदि उपाधियाँ प्राप्त की और शत्रुओं द्वारा अनाक्रान्त साम्राज्य निर्मित किया। ईस्वी सन् 106 से 130 ईस्वी के मध्य उसका शासन निष्कंटक रहा होगा। नासिक के राज्य वर्ष 24 के लेख से प्रतीत होता है कि शासन के पश्चात् वर्षों में स्वास्थ्य संबंधी कारणों से उसे माता गौतमी बलश्री के साथ मिलकर राज्य कार्य करना पड़ा था। विद्वानों ने संभावना व्यक्त की है कि उसी समय उज्जैन में कार्दमक शकों ने सिर उठाना शुरू कर दिया होगा। टॉलेमी की पुस्तक 'ज्योग्राफी' में भी जिसे 140 ई0 में लिखा गया, उज्जैन चष्टन की तथा पैठण गौतमीपुत्र के बेटे पुलुमावी की राजधानी बताया गया है। रूद्रदामन नामक श्रेष्ठ कार्दमक शक राजा के जूनागढ़ लेख में उसके द्वारा विजित क्षेत्रों की सूची में उपरोल्लिखित लगभग पूरा सातवाहन राज्य शामिल कर

लिया गया है। लेख में रूद्रदामन को इन क्षेत्रों को दक्षिणापथ के स्वामी शातकर्णि से जीता गया बताया गया है। इससे अनुमान होता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णि के क्षय की अवस्था में उज्जैन में कार्दमक शक शक्तिशाली होते गए और स्वयं उसके या पुलुमावी के समय सातवाहनों के इस पुनर्विजित राज्य को जीतने में सफल हुए।

नासिक प्रशस्ति गौतमीपुत्र की भूरि–भूरि प्रशंसा करती है। वह वेदों और ब्राह्मणों के प्रति आस्थावान् धर्म–सहिष्णु शासक था जिसने वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की। अनन्य मातृभक्त होने के साथ ही गुणवानों का आश्रय तथा संपत्तियों का भंडार भी था। उसका चरित्र उज्जवल, व्यक्तित्व सौम्य तथा शरीर बलिष्ठ था जिसमें दुष्टों को भी क्षमा करने का साहस था। नासिक प्रशस्ति उसके शान्तिपूर्ण शासन की बात करती है जिसकी समाप्ति आभिलेखिक आधार पर 130 ईस्वी में मानी जाती है।

10.8 वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी

गौतमीपुत्र शातकर्णि का बेटा वसिष्ठीपुत्र पुलुमावी कार्दमक शक शारवा के चष्टन और रूद्रदामन का समकालीन था। उसे पुराणों में पुलोमा, पुरोमानि अथवा पुलोमावि कहा गया है। पौराणिक विवरणों के अनुसार उसने 28 या 29 वर्षों तक शासन किया। उसके अभिलेख नासिक से राज्य वर्ष 2,6,19 और 22 तथा पुणे के निकट कार्ले से वर्ष 7 और 24 के मिले हैं। सातवाहनों में एकमात्र उसका ही एक अभिलेख आंध्र के कृष्णा जिले में अमरावती से प्राप्त हुआ है। कर्णाटक के बेल्लारी में अदोनी तालुका से प्राप्त अभिलेख में वर्णित सातवाहन राजा सिरि पुलुमावी (श्री पुलुमावी) का समीकरण वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी के साथ स्थापित करते हुए कर्णाटक पर सातवाहनों के अधिकार की पुष्टि की गई है जो पुलुमावी के समय ही संभव हुआ था। इस प्रदेश को उसी समय से 'सातवाहनीय राष्ट्र' के रूप में ख्याति मिली। पुलुमावी के सिक्कों की प्राप्ति कृष्णा नदी के मुहाने के प्रदेश से हुई है जो दक्षिण दिशा में सातवाहनों के प्रसार का सूचक है। दो पतवारों वाले जहाज के चिह्न से अंकित उसके कुछ सिक्के विकसित नौ–शक्ति का प्रमाण देते हैं।

पुलुमावी का शासन पर्याप्त क्रियाशीलता भरा रहा। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि शक राजा रूद्रदामन ने समकालीन 'दक्षिणापथ स्वामी' किसी सातवाहन नरेश को पराजित किया था। संभवतः यह पुलुमावी के समय की ही घटना थी। इस पराजय ने पुलुमावी के राज्य के उत्तरी और पश्चिमी भागों को शकों के राज्य–विस्तार के लिए समर्पित कर दिया और संभवतः गौतमीपुत्र

शातकर्णि के जीवन काल में ही स्थापित वैवाहिक संबंधों को देखते हुए सातवाहनों को महाराष्ट्र के दक्षिणी हिस्सों से बेदखल नहीं किया गया हालांकि अब उनका अधिक आकार–अवन्ति (पूर्वी–पश्चिमी मालवा), अनूप (नर्मदा घाटी), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), कुकुर (पश्चिमी राजपूताना), आनर्त, सुराष्ट्र (उत्तरी से दक्षिणी काठियावाड़) के भू–भागों से उठ चुका था।

महाराष्ट्र के उत्तरी हिस्सों के अपने मूल प्रदेशों से हटने पर भी पुलुमावी की साम्राज्य सीमाओं में कोई उल्लेखनीय ह्रास नहीं हुआ क्योंकि दक्षिण की ओर उसकी विस्तारवादी नीतियों का परिणाम अच्छा रहा। पुलुमावी ने दक्षिण में आन्ध्रापथ की विजय की और इस दिशा में सीमा विस्तार करने वाला यह प्रथम सातवाहन बना। कृष्णा जिले में अमरावती से प्राप्त उसके बहुसंख्यक सिक्के इस विजय की पुष्टि करते हैं। उसके राज्य की सीमाओं में अब महाराष्ट्र, विदर्भ तथा कृष्णा नदी तक के भू–भाग शामिल हो गए थे। संभवतः कर्नाटक का बेल्लारी क्षेत्र भी उसके अधिकार में था। इस प्रकार पुलुमावी के अधीन राज्य का विस्थापन तो हुआ किन्तु सीमा–विस्तार में विचलन नहीं आने पाया।

10.8.1 पुलुमावी के उत्तराधिकारी

पुराणों के अनुसार पुलुमावी का उत्तराधिकार अल्पशक्ति संपन्न शिवश्री शातकर्णि (7 वर्ष) तथा उसके बाद शिव स्कन्द शातकर्णि (7 या 8 वर्ष) द्वारा ग्रहण किया गया जिन दोनों का राज्य–विस्तार में योगदान ज्ञात नहीं। इनके पश्चात् इस वंश के अंतिम प्रमुख शासक के रूप में हम यज्ञश्री शातकर्णि को जानते हैं, जिसने 174 ई0 – 203 ई0 के मध्य शासन किया। यज्ञश्री के इतिहास को जानने की दृष्टि से नासिक का वर्ष सं0 7, कन्हेरी का वर्ष सं0 16 तथा चिन्न गंजाम (कृष्णा जिला) का वर्ष सं0 27 में प्रकाशित अभिलेख विशेष सहायक हैं। यज्ञश्री के काल के सिक्के उसके शासित विशाल राज्य क्षेत्र से मिलते हैं जिनसे उसके राज्य–सीमा के निर्धारण में मदद मिलती है। इनकी प्राप्ति हमें महाराष्ट्र में विदर्भ, गुजरात में बड़ौदा–काठियावाड़, आन्ध्रप्रदेश में कृष्णा–गोदावरी क्षेत्र तथा उत्तरी कोंकण से हुई है। उसके चाँदी के सिक्के जो अपरान्त (उत्तरी कोंकण) की राजधानी सोपारा से मिले हैं शक महाक्षत्रप रूद्रदामन की शैली तौल व आकार में निर्मित हैं।

मौद्रिक व आभिलेखिक आधार पर स्पष्ट है कि यज्ञश्री शातकर्णि ने न मात्र पुलुमावी से उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य की रक्षा की वरन् पश्चिम में शकों के आक्रमण में छीने गए अपने मूल प्रदेश को भी पुनः प्राप्त कर लिया। शकों के आंतरिक संघर्षों ने संभवतः इस कार्य को और भी सरल बना दिया होगा। इस प्रकार यज्ञश्री वास्तविक अर्थों में सकल दक्षिणापथ–नाथ बन गया। उसकी

विजयों ने उसे पूर्व (बंगाल की खाड़ी) से पश्चिम (अरब सागर) तक के समस्त व्यापारिक अवसरों का एकमात्र लाभार्थी बना दिया होगा जिसकी अभिव्यक्ति उसके दो मस्तूल वाले पोत से अंकित सिक्कों में देखने को मिलती है।

यज्ञश्री के पश्चात् सातवाहनों में कोई ऐसा प्रभावशाली शासक न हुआ जो इस विशाल राज्य को बाँधे रखता। पुराणों में यज्ञश्री के बाद शासन करने वाले कुछ अन्य राजाओं के भी नाम मिलते हैं पर वे नगण्य महत्व वाले हैं। वस्तुतः यज्ञश्री के समय से ही सातवाहन साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया था। पुराणों में यज्ञश्री के बाद शासन करने वाले विजय, चन्द्रश्री और पुलोमा के नाम मिलते हैं तथा मौद्रिक साक्ष्यों के आलोक में वासिष्ठीपुत्र चडसाति और रूद्र शातकर्णि का पता चलता है किंतु किसी के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। इसी बीच महाराष्ट्र में आभीर, आंध्र में इक्ष्1वाकु और दक्षिण में पल्लवों के स्वतंत्र–सशक्त होने का पता चलता है जो निश्चय ही सातवाहनों के पतन की शर्त पर हुआ होगा। यद्यपि कुन्तल (मध्य कर्णाटक) तथा छत्तीसगढ़ पर इनकी अवशिष्ट शक्ति शाखा वंश के रूप में कुछ और वर्ष जीवित रही परन्तु तीसरी शताब्दी ईस्वी के लगभग (225 ई0 से 250 ई0) के बीच सातवाहन राज्य पूर्णतः समाप्त हो गया।

10.9 सारांश

सातवाहन वंशी शासक दक्षिणी महाराष्ट्र आन्ध्रप्रदेश, तेलगांना में महारथी और महाभोज के नाम से जाने जाते थे जिन्हें समाप्त कर प्रथम शताब्दी ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में नवीन साम्राज्य की स्थापना की गयी। यह नवीन राज्य शुंगों और कण्वों के ही समान ब्राह्मणवादी व्यवस्था का समर्थक था जिसने मगध के स्थान पर सत्ता के केन्द्र को आन्ध्र–महाराष्ट्र में संकेंद्रित कर दिया। अभिलेखों के आधार पर इस वंश को सातवाहन वंश के नाम से जाना जाता है।

10.10 बोध प्रश्न

1. 'सातवाहनों के प्रारंभिक इतिहास एवं क्षेत्रीयता के प्रश्न वास्तव में जटिल हैं', समीक्षा करें।
2. गौतमीपुत्र शातकर्णि की महानता की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
3. गौतमीपुत्र शातकर्णि के बाद सातवाहनों के इतिहास की रूपरेखा का वर्णन करें।
4. सातवाहनों के वंश के सुदृढ़ीकरण में शातकर्णि प्रथम का क्या योगदान था।

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन
- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्रचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
- रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस।
- याजदानी, जी., 1977, दकन का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड।
- शास्त्री, अजय मिश्र (संक.) 1999, द एज ऑफ द सातवाहन्स, ग्रेट एजेज़ ऑफ इंडियन हिस्ट्री, दूसरा वॉल्यूम, नई दिल्ली, आर्यन बुक्स इंटरनेशनल।

इकाई–11 चेदि नरेश खारवल

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 हाथी गुम्फा अभिलेख

11.3 वंश परिचय

11.4 धर्म

11.5 युवराज से महाराजपद की यात्रा

11.5.1 दिग्विजय अभियान

11.6 तिथि

11.7 सारांश

11.8 बोध प्रश्न

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 पस्तावना

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के राजनैतिक रूप से स्फूर्त परिदृश्य में कलिंग देश के शासक खारवेल को भारतीय इतिहास उसके विलक्षण अभिलेख के साक्ष्य से जानता है। प्राचीन कलिंग में उड़ीसा के जिन आधुनिक क्षेत्रों को परिगणित किया जाता है उनमें पुरी और गंजाम ज़िले, कटक तथा उससे सटे उत्तर और उत्तर पश्चिम के भू–भाग सम्मिलित थे। यहीं भुवनेश्वर से तीन मील दूरी पर स्थित उदयगिरि पहाड़ी की 'हाथी गुम्फा' नामक गुहा से 17 पंक्तियों का एक अतैथिक अभिलेख प्राप्त हुआ हैं जिसमें खारवेल नामक चेदि शासक की उपलब्धियों का वर्षवार ब्यौरा संकलित है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें–

- खारवेल की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विषय में।
- खारवेल की महानता के विभिन्न कारणो के विषय में।

11.2 हाथी गुम्फा अभिलेख

खारवेल के जीवन के विषय में जानकारी का सबसे प्रमुख स्रोत हाथीगुम्फा अभिलेख है। वर्तमान में इसकी मात्र 4 पंक्तियों को पूर्णरूपेण पढ़ा जा सकता है क्योंकि अभिलेख की पृष्ठभूमि अत्यंत क्षीण हो चुकी है। इसे उदयगिरि पहाड़ी के शिलाखंडों पर अंकित किया गया है। अभिलेख की भाषा प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी है। लिपिशास्त्रीय आधार पर इस अभिलेख को प्रथम शती ई0पू0 का माना जाता है।

11.3 वंश परिचय

हाथीगुम्फा अभिलेख खारवेल को कलिंग का तीसरा शासक बताता है। उसके संभावित पितामह महामेघवाहन के नाम पर वंश को महामेघवाहन वंश के रूप में इतिहास में प्रसिद्धि मिली। निकटवर्ती मंचपुरी गुफा से ज्ञात वक्रदेव को खारवेल का पिता स्वीकृत किया जाता है जिसने महामेघवाहन के पश्चात् शासन किया। किंतु डी.सी. सरकार और ए.के. मजुमदार आदि के इस अनुमान के संबंध में सुनिश्चित निष्कर्ष निकालना ज्ञान की वर्तमान स्थिति में संभव नहीं। प्रस्तुत अभिलेख में खारवेल के वंश को 'आर्य' और 'महामेघवाहन' कहा गया है। यहीं खारवेल को पौराणिक चेदि शासक वसु (उपरिचर) का वंशज भी बताया गया है जो संभवतः पुराणों का चंद्रवंशी चेदि कुलीन राजा वसु था। इस आधार पर कलिंग राजा खारवेल को बुंदेलखण्ड के चेदियों से संबद्ध किया जा सकता है जिन्होंने दक्षिणी कोसल से होते हुए प्रथम शती ई0पू0 में कभी कलिंग को अपना कार्यक्षेत्र बनाया होगा। यह चेदि राज्य छठी शताब्दी ई0पू0 का चेदि महाजनपद ही था।

11.4 धर्म

हाथीगुम्फा अभिलेख सूचित करता है कि खारवेल का धार्मिक झुकाव जैन धर्म की ओर था। इस अभिलेख को लिखवाने का उद्‌देश्य भी कुमारी पर्वत (उदयगिरि) में जैन भिक्षुओं के निवास के लिए गुहाओं एवं विहारों का निर्माण था। खारवेल ने सपत्नीक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था तथा जैन साधुओं के निवास–निर्वाह के लिए तत्पर प्रयास किए। अभिलेख के अनुसार उसने जैन साधुओं की सभा के लिए एक विशाल मंडप का भी निर्माण करवाया जिसे 64 मूर्तियों से अलंकृत किया गया था। इस कार्य में 75 लाख मुद्रा का व्यय हुआ तथा शासन के 13वें वर्ष में निर्माण कार्य संपन्न हुआ। इन गुहा–विहारों के निकट ही उसने पाभार नामक स्थान पर जैन भिक्षुओं के निमित्त विहार भी बनवाया। किंतु जैन मतानुयायी होते हुए भी वह अन्य धर्मों के प्रति आदर भाव

रखता था। हाथी गुम्फा अभिलेख बताता है कि वह सम्राट अशोक के समान सभी संप्रदायों के प्रति आस्थावान था। उसकी उपाधियों, 'धर्मराज', 'भिक्षुराज', 'लेमराज', 'वृद्धराज' तथा 'राजर्षि' आदि से उसके धर्मप्राण व्यक्तित्व का पता चलता है। उसने सभी धर्मों के पूजागृहों का जीर्णोद्धार करवाया था। हाथीगुम्फा प्रशस्ति में उसे 'सबदेवायतन सकारकारनको' अर्थात् सभी धर्मों का परिष्कार करने वाले बताया गया है।

11.5 युवराज से महाराजपद की यात्रा

हाथी गुम्फा लेख राजा खारवेल के जीवन का प्रशस्ति गान है। इसमें उसके जीवन के 38 वर्षों का क्रमवार वर्णन प्राप्त होता है। राजा बनने के बाद के 13 वर्ष तथा उसके पहले के 15 वर्षों का सिलसिलेवार ब्यौरा दिया गया है। इसके अनुसार जैन धर्म में आस्थावान राजा खारवेल का बाल्यजीवन युवराजोचित अध्ययन व प्रशिक्षण में बीता। वह लेखन–कला, गणना, विधि शास्त्र, मुद्राशास्त्र तथा सभी प्रकार के खेलों में प्रशिक्षित था। शरीर से स्वस्थ व गोरे रंग का महामेघवाहन कुल का यह युवराज 15 वर्ष की अवस्था में युवराज पद पर नियुक्त हुआ और 24 वर्ष में कलिंग का महाराज बना। उसकी अर्धांगिनी व प्रधान महिषी को ललक हत्थि सिंह नामक स्थानीय राजा की कन्या बताया गया है। संभवतः इस विवाह ने खारवेल की राजनैतिक महत्वकांक्षाओं की पूर्ति में कोई सहायता पहुँचाई होगी जिससे प्रेरित होकर इस वैवाहिक संबंध की चर्चा अभिलेख में की गई है।

11.5.1 दिग्विजय अभियान

राजा बनने के बाद पहले वर्ष में उसने अपने राजधानी नगर में शहरी निर्माण कार्य करवाया। तूफान से क्षतिग्रस्त प्राचीर व सिंहद्वार की मरम्मत करवाई, बगीचे का जीर्णोद्धार करवाया तथा शीतल जल से युक्त अलंकृत तालाबों का निर्माण करवाया। कई लक्ष मुद्राएँ (संभवतः 35 लाख मुद्राएँ) व्यय करके उसने जनता के हृदय को प्रसन्न करने का पूर्ण प्रबंध किया।

उसका पहला सैन्य अभियान राजत्व के दूसरे वर्ष शातकर्णि के विरूद्ध था। जिसमें उसने अपनी विशाल सेना पश्चिम दिशा की ओर भेजी। गज, अश्व, रथ और पदातियों से समृद्ध, इस सेना में शातकर्णि की उपेक्षा करके महाराष्ट्र में प्रवाहमान वेण्णगंगा और गोदावरी घाटी में स्थित मुसिकनगर तक अभियान किया था। परस्पर अप्रामाणिक विवरणों से हम निश्चित रूप से युद्ध के परिणामों के विषय में खारवेल या शातकर्णि में से किसी की भी जीत का निर्णय नहीं कर सकते पर यह प्रमाणित होता है कि निश्चित रूप से सातवाहन राजा और

खारवेल समकालीन थे। यहाँ शातकर्णि प्रथम का संकेत है जिसने इस मुठभेड़ में सफल रहने पर संभवतः अश्वमेध यज्ञ किया होगा। खारवेल का तीसरा शासन वर्ष राजधानी में आयोजित उत्सवों में निमग्न बीता।

चौथे वर्ष अपने पिछले अभियान से उत्साहित होकर उसने भोजकों और रठिकों (राष्ट्रि को) के विरूद्ध चढ़ाई कर दी। ये सामंत सरदार पूर्वी खानदेश और अहमदनगर (विदर्भ और आसपास का क्षेत्र) पर शासन करते थे। इस अभियान का संबंध विद्याधर जैनियों के पवित्र तीर्थ की सुरक्षा से जान पड़ता है। संभव है कि रठिकों और भोजकों से आक्रांत होने पर खारवेल द्वारा इन विद्याधर जैनियों के रक्षण के लिए यह युद्ध किया गया। यहाँ भी ध्यातव्य है कि इस युद्ध में पराजित बरार के उन सरदारों का वैवाहिक संबंध सातवाहनों के साथ था। अतः निश्चित रूप से खारवेल ने सातवाहनों की प्रतिष्ठा को भी एक प्रकार से अवमानित कर दिया। युद्ध के पश्चात् का पाँचवाँ वर्ष उसने जनहित के कार्य–निष्पादन में व्यतीत किया। उसने 300 वर्ष पूर्व नंद राजा (मगध राज) द्वारा निर्मित नहर का जीर्णोद्धार किया तथा उसे तनसुलि नामक स्थान से अपनी राजधानी तक विस्तृत किया। संबद्ध नंदराज का संबंध मगध के नंदवंशी शासक महापद्मनंद के साथ बताया जाता है।

छठें वर्ष में अनेक मुद्राओं के व्यय से लोक रंजन कार्यों को संपन्न किया। उसने प्रजा के करों को माफ़ किया जिससे शहरी और ग्रामीण जनता को सुख प्राप्त हुआ।

सातवें वर्ष का विवरण स्पष्ट नहीं है। आठवें वर्ष के पाठ को लेकर विद्वानों में मत–वैभिन्नय है। फिर भी सर्वसम्मति से इतना तो स्पष्टतः उल्लिखित मानते हैं कि इस वर्ष खारवेल ने उत्तर दिशा की ओर सैन्य–अभियान किया गया। गया स्थित गोरथगिरि (बराबर) पहाड़ी को पार करते तथा मार्गस्थ दुर्गों को विनष्ट करते उसकी सेना ने राजगृह नगर का घेराव कर दिया। भयभीत यवनराज दिमिति (?) मथुरा भाग गया। यहाँ किस दिमिति का उल्लेख है यह स्पष्ट नहीं। अधिकांश विद्वान यवनराज दिमिति को पश्चिम के हिंद–यवन शासकों में से कोई स्वीकार करते है जिसका शासन प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम चरण में शाकल (स्यालकोट) में स्थापित था।

अभी तक प्राप्त सैन्य सफलताओं से उत्साहित होकर उसने नवें वर्ष में महाविजय प्रासाद का निर्माण करवाया। यह निर्माण प्राचीन नगर के दोनों किनारों पर करवाया गया। इसी उपलक्ष्य में ब्राह्मणों के प्रति दानादि संपन्न किया तथा अग्रिम अभियानों के लिए युद्धाभ्यास आदि सैन्य तैयारियाँ की।

दसवें वर्ष उत्तर दिशा में संचालित एक अन्य असफल सैन्य धावे की चर्चा है। ग्यारहवें वर्ष उसने दक्षिण की ओर प्रयाण किया तथा मछलीपट्टनम देश की राजधानी पिथुंड नगर को जीतकर वहाँ गधों से हल चलवाया (अपमानित किया)। इस नगर का उल्लेख टॉलेमी द्वारा भी किया गया है। इसी समय और आगे बढ़कर उसने तमिल देश के शत्रु–संघ का भेदन भी किया।

बारहवाँ वर्ष एक अन्य उत्तर भारतीय अभियान को समर्पित रहा जबकि उसके हाथी–घोड़ों ने गंगा–जल का पान किया। उस समय मगध राज बहसतिमित्र ने पराजित होकर खारवेल की अधीनता मान ली और विजयी राजा लूट की अपार धनराशि के साथ मगध से वह कलिंग जिन प्रतिमा भी पुनः प्राप्त करने में सफल रहा जिसे पूर्व में नंदराजा द्वारा कलिंग से मगध ले जाया गया था। विद्वानों का मानना है कि लूट के धन से उसने संभवतः भुवनेश्वर में विशाल मंदिर बनवाया था। एक अन्य साहित्यिक स्रोत में (ब्रह्मांड पुराण की उड़िया पाण्डुलिपि) खारवेल को भुवनेश्वर में मंदिर बनवाने का श्रेय दिया गया है। इसी आधार पर वरुआ ने यह मत व्यक्त किया है। दक्षिण में पाण्ड्यों के विरूद्ध भी इसी वर्ष सफलता प्राप्त हुई। जिसमें भी अनेक मुक्ता–मणियों का युद्ध–टैक्स लेकर वह राजधानी लौटा। यह खारवले के युद्ध जीवन का अंतिम अभियान था, जैसा कि हाथी गुम्फा लेख से सूचित है।

तेरहवें वर्ष कुमारी पहाड़ियों (उदयगिरि–खंडागिरि) में जैन भिक्षुओं के लिए गुहा निवास गृहों और विशाल अलंकृत मण्डप का निर्माण खारवेल के धर्मप्राण व्यक्तित्व का परिचय देता है।

खारवेल का स्थान भारतीय इतिहास में अनन्य महत्व वाला है। कलिंग की भूमि पर उदित उसके पराक्रम का सूर्य संपूर्ण भारत के लिए शौर्य और सदाचरण की प्रकाश–वर्षा के समान है। उसके व्यक्तित्व में देश–चिन्ता, धर्म चिंता, सद्भाव–अभिवृद्धि, सौंदर्यानुभव और विद्वता जैसे महान गुण एक साथ उपस्थित थे। ऐसे साक्ष्यों का अभाव है कि जिनसे खारवेल के बाद कलिंग की राजनैतिक स्थिति का पता चल सके। संभवतः कलिंग का राज्य भी अन्य शक्तिशाली साम्राज्यों की नियति का शिकार होकर विघटित हो गया जिससे क्षेत्रीय गौरव क्षीण होकर विलुप्त हो गया।

11.6 तिथि

खारवेल के उत्कर्ष और अन्त के साथ कलिंग के महामेघवाहन वंश का उदय और अस्त भी जुड़ा हुआ है। पुरातात्विक साक्ष्य उसे शुंगों के बाद शासनरत बताते है। मंचपुरी के गुहा शिल्प को भरहुत का पश्चात्वर्ती माना जाता

है जो कालक्रम के निर्धारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कलासाक्ष्यों के प्रमाण से हमें खारवेल की तिथि प्रथम शती ई0पू0 में ज्ञात होती है। लिपिशास्त्रीय आधार पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। हाथीगुम्फा अभिलेख की तिथि नाणेघाट के लेख से बाद की है अतः उसे प्रथम शती ई0पू0 के अंतिम चरण का मानना उचित ही होगा। अभिलेख में वर्णित 'नंदराजा के 300 वर्षों के उपरान्त' जैसे उल्लेख भी खारवेल का समय प्रथम शती ई0पू0 का तृतीय या चतुर्थ चरण निर्धारित करती है।

11.6 सारांश

खारवेल चेदि वंश का एक महान शासक होने के साथ ही साथ एक कुशल प्रशासक भी था। उसकी महानता का सर्वाधिक कारण उसकी धार्मिक सहिष्णुता की भावना का होना बताया जाता है। वह लोकप्रिय जनहितकारी कार्यो के प्रति संवेदनशील था।

11.7 बोध प्रश्न

1. कलिंग नरेश खारवेल का राजनैतिक अस्तित्व मात्र एक अभिलेख पर निर्भर है, समीक्षा करें।
2. खारवेल अपने युग का महानतम शासक था, आलोचनात्मक व्याख्या करें।

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन
- श्रीवास्तव, के.सी. 2001–2002 (आठवाँ संस्करण), प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, यूनाईटेड बुक डिपो।

इकाई–12 हिन्द–यवन

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 स्रोत

12.3 हिन्द–यवन/बाख्त्री यवन

12.3.1 डायोडोटस I

12.3.2 डायोडोटस II

12.3.3 डेमेट्रियस

12.3.4 यूक्रेटाइटीज

12.3.5 मिनेण्डर

12.4 सारांश

12.5 बोध प्रश्न

12.6 सहायक ग्रन्थ

12.0 प्रस्तावना

मौर्यों के पतन के पश्चात् अफ़गानिस्तान के उत्तर में स्थित बैक्ट्रिया से भारत पर आक्रमण करने वाले सेल्यूकस के क्षत्रप–वंश को इतिहास में हिन्द–यवन या बारव्त्री–यवन के नाम से जाना जाता है। भारत और यवनों (आयोनिया के ग्रीक निवासी) के बीच संबंधों का प्रारंभ डेरियस प्रथम के समय (522–486 ई0पू0) से हुआ जबकि ग्रीस और उत्तर पश्चिम के भारतीय क्षेत्र उसके वृहद् ईरानी साम्राज्य का हिस्सा बने। सिंकदर के समय यह संबंध और प्रगाढ़ हुआ क्योंकि ईरानी राज्य की मध्यस्थता समाप्त कर यूनानियों ने भारत के साथ सीधा संपर्क स्थापित किया था। सिकंदर के बाद उसके पूर्वी प्रदेशों के सिपहसालार सेल्यूकस निकेटर की पुत्री हेलेना और मौर्यवंश के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ जिससे दोनों देशों के बीच एक नवीन दौर की शुरूआत हुई किन्तु शीघ्र ही मौर्यों के पतन से उत्तर–पश्चिम भारत के यवनों ने भारत के आंतरिक प्रदेशों को आक्रान्त करना प्रारम्भ कर दिया। ये महत्वाकांक्षी यवन सीरिया पर शासन करने वाले सेल्यूकी अधिराजों की

अधीनता के विरूद्ध विद्रोह कर बैक्ट्रिया में स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे थे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें—

- हिन्द—यवन शासको की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विषय में।
- भारत पर हिन्द—यवन आक्रमण के प्रभावों के विषय में।

12.2 स्रोत

हिन्द—यवनों के इतिहास तक पहुँचाने का कार्य वे अनेक अभिलेख और सिक्के करते हैं जिन्हें हिंद—यवन शासकों ने निर्गत किया। क्लासिकल लेखकों के विवरण जैसे स्ट्रैबो, जस्टिन, प्लूटार्क, पोलिबियस के उद्धरण तथा समकालीन भारतीय साहित्य यथा महाभारत, शुंगकालीन महाभाष्य, गागीसंहिता तथा बौद्धग्रंथ मिलिन्दपण्हो, क्षेमेंद्र विरचित अवदान कल्पलता भी इस विषय पर हमारे स्त्रोत—ग्रंथ हैं।

अधिकांश हिंद—यवन शासकों के विषय में हमें मौद्रिक साक्ष्य से सूचना मिलती है जिससे शासकों के तिथिक्रम और परस्पर संबंधों का पता चलता है। विभिन्न साक्ष्यों के सम्मिलित आलोक में हिन्द—यवनों का संक्षिप्त किन्तु जटिल इतिहास पुनर्निमित किया जा सकता है।

12.3 हिन्द—यवन/बाख़्त्री यवन

ईरान के हखामनी साम्राज्य के अंतर्गत बैक्ट्रिया एक दण्डितावास (देश निकाला या सज़ायाफ़ता दण्डितों को रखने वाला स्थान) था। हिंदुकुश के उत्तर पश्चिम में ऑक्सस नदी (आमू दरिया) के प्रदेश में स्थित होने के कारण इसकी व्यापारिक महत्ता को समझते हुए सिकंदर द्वारा इसे अधिकृत एवं विकसित किया गया। सिंकदर की मृत्यु के बाद भी बैक्ट्रिया और इसी के समीप पश्चिम का पड़ोसी राज्य पार्थिया (खुरासान व कैस्पियन सागर का दक्षिण—पूर्वी क्षेत्र) सेल्यूकस की अधीनता में बने रहे किंतु उसके उत्तराधिकारियों में एण्टिओकस द्वितीय के समय (261—246 ई0पू0) बैक्ट्रिया और पार्थिया ने क्रमशः क्षत्रप डायोडोटस I और अर्सेक्स के नेतृत्व में विद्रोहपूर्वक स्वतंत्रता घोषित कर दी।

12.3.1 डायोडोटस I

बैक्ट्रिया के स्वतंत्र राज्य का संस्थापक डायोडोटस I था। सेल्यूकस के बाद एंटिओकस I (281—261 ई0पू0) के समय तक इस क्षेत्र के एकजुट प्रशासन

में कोई व्यवधान नहीं आया किंतु उसके बाद शासन करने वाले एंटिओकस II के समय बैक्ट्रिया और पार्थिया ने लगभग 250 ई0पू0 में अपनी क्षेत्रीय स्वतंत्रता के लिये विद्रोह कर दिया। एंटिओकस के दो निर्बल उत्तराधिकारी सेल्यूकस II और III इस विद्रोह को दबाने में असफल रहे। परिणामस्वरूप डायोडोटस को बैक्ट्रिया की सीमाओं को सुरक्षित और विस्तृत करने का अवसर मिल गया। डायाडोटस प्रथम एक प्रतिभावान शासक था जिसने परिस्थितियों का उचित लाभ उठाते हुए सुग्ध (सोग्डियाना– उज़्बेकिस्तान) तथा मार्जियाना (मर्व, तुर्कमेनिस्तान) तक अपने राज्य का विस्तार किया। जस्टिन बताता है कि पड़ोसी राज्य पार्थिया के साथ उसका शत्रुपूर्ण संबंध था। पार्थिया ने भी बैक्ट्रिया के साथ ही स्वतंत्रता प्राप्त की थी।

12.3.2 डायोडोटस II

डायोडोटस प्रथम के बाद उसका पुत्र डायोडोटस द्वितीयशासक बना। जस्टिन के विवरण और मौद्रिक साक्ष्य उसके उत्तराधिकार की पुष्टि करते हैं। संभवतः 240 ई0पू0 से 212 ई0पू0 के पहले किसी समय उसने बैक्ट्रिया का शासन सँभाला। पार्थिया के प्रति अपने पिता की शत्रुता की नीति में उसने बदलाव किया और तटस्थता के सिद्धान्त का पालन करते हुए शान्ति का मार्ग अपनाया। उसका राज्य सेल्यूकस II के समय यवन आक्रमणों से पूर्णतः सुरक्षित था। किन्तु सेल्यूकस III का उत्तराधिकारी एंटिओकस III (223-187 ई0पू0) एक शक्तिशाली शासक हुआ जिसने अपने साम्राज्य के खोए हुए हिस्सों को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयास तेज़ कर दिए। उसके आक्रमणों से बैक्ट्रिया आक्रान्त हुआ। संभवतः 208 ई0पू0 में एंटिओकस तृतीय का बैक्ट्रिया के हिंद–यवन राज्य पर तीव्र आक्रमण हुआ किन्तु उसके पूर्व ही सिंहासन पर यूथीडेमस नामक अज्ञात कुलीन व्यक्ति का अधिकार हो चुका था। बैक्ट्रिया का यह नया नायक एशिया माइनर के मैगनीशिया नामक नगर का निवासी और डायडोटस II के दरबार का संभवतः कोई उच्चाधिकारी था। उचित समय पाकर यूथीडेमस ने अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए डायोडोटस के अवयस्क पुत्र की हत्या कर गद्दी हथिया ली। क्लासिकल लेखक पॉलिबियस सूचित करता है कि एंटिओकस III के आक्रमण के समय बैक्ट्रिया का शासक यूथीडेमस था। एंटिओकस III ने यूथीडेमस की कूटनीतिक कुशलता और वाक्–चातुर्य से प्रभावित होकर बैक्ट्रिया को स्वराज का अधिकार दे दिया तथा साथ ही उसके पुत्र डेमेट्रियस के संग अपनी पुत्री का विवाह भी करवा दिया। इस वैवाहिक संबंध ने यूथीडेमस को हिंदुकुश के उत्तरी प्रदेशों का निर्बाध अधिकार प्रदान कर दिया और दीर्घकाल तक (लगभग 190 ई0पू0 तक) वह बल्ख़ और बुख़ारा

(सोग्डियाना) के सम्मिलित राज्य का शासक बना रहा किंतु हिंदुकुश के दक्षिण के प्रदेशों पर उसका कोई अधिकार था अथवा नहीं यह निश्चित नहीं है। रोमन लेखकों ने इस विषय में कोई सूचना संकलित नहीं की है किंतु काबुल की घाटी से उसके ताँबे के बहुसंख्य सिक्कों की प्राप्ति हिंदुकुश के दक्षिण में उसके अधिकार को प्रमाणित करती है। इस आलोक में हम यूथीडेमस का राज्य बल्ख़–बुख़ारा से लेकर एशिया, अराकोशिया और काबुल घाटी तक विस्तृत मान सकते हैं।

इतिहासकारों की धारणा है कि यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रियस ने सिंधु नदी के पूर्वी प्रदेशों में बाख़्त्री–यवनों के प्रभाव का विस्तार किया तथा संभवतः उसने ही हिंदुकुश के दक्षिण के प्रदेशों को भी जीता, न कि यूथीडेमस ने।

12.3.3 डेमेट्रियस

गार्गी संहिता के युग पुराण प्रकरण, पतंजलि के महाभाष्य और मालविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि 190 ई0पू0 के आसपास कभी भारत के आंतरिक प्रदेशों पर यवनों का आक्रमण हुआ। डेमेट्रियस के नेतृत्व में यह आक्रमण शुंग राजा पुष्यमित्र शुंग के समय पंजाब, मथुरा, पांचाल और साकेत होते हुए पाटलिपुत्र के विरूद्ध किया गया। गार्गी संहिता के अनुसार इस अभियान में यवन सेना अधिक लंबे समय तक मध्यप्रदेश में रूक नहीं सकी क्योंकि उन्हें अपने गृहनगर बैक्ट्रिया में हो रही आंतरिक युद्धों की चिन्ता सता रही थी जिसके निवारण के लिए शीघ्र ही युद्ध समाप्त कर यवनों को वापस लौटना पड़ा। फिर भी, हिंद–यवन शासकों में डेमेट्रियस अपने इस साहसी सैन्य धावे के लिए स्मरण किया जाता है। अभियान का समापन भले ही अनिर्णीत रहा हो, सिंधु नदी की निचली घाटी पर हिन्द–यवनों का अधिकार हो गया जहाँ डेमेट्रियस द्वारा 'दत्तमित्री' नामक नगर की स्थापना की गई। क्रमदीश्वर के व्याकरण में उस नगर की स्थिति सौवीर प्रदेश में बताई जाती है जहाँ के निवासी अभिलेखों और साहित्यिक प्रमाणों में 'दातामितीयक' कहे गए हैं। डेमेट्रियस तथा उसके पिता यूथीडेमस के नाम पर कुछ अन्य नगरों का भी नामकरण हुआ। टालेमी के भूगोल में पंजाब में स्थित स्यालकोट (शाकल) का दूसरा नाम 'यूथ्रीडेमिया' तथा इसीडोर के द्वारा उल्लिखित अराकोशिया (वर्तमान कंधार) के अन्य नाम 'डेमेट्रियस पोलिस' से उसकी पुष्टि होती है। डेमेट्रियस के ताम्र सिक्कों से भी उसका भारतीय क्षेत्रों पर अधिकार प्रमाणित होता है।

स्ट्रैबो (54ई0पू0–24 ई0पू0) ने मिनाण्डर और यूथीडेमस पुत्र डेमेट्रियस को सिंधु के मुहाने से लेकर सुराष्ट्र, कच्छ और मध्य एशिया में चीन व तिब्बत आदि क्षेत्रों का स्वामी बताया है। यद्यपि स्ट्रैबो के विवरण में अनेक कमियाँ हैं फिर भी

डेमेट्रियस के वीरता की स्मृति को अवश्य ही विश्वसनीय माना जा सकता है। उसका शासन काल 190–165 ई0पू0 के मध्य निर्धारित किया जाता है।

12.3.4 यूक्रेटाइटीज

वह गृह युद्ध जिसने डेमेट्रियस के भारत–विजय अभियान को अकस्मात् रोक दिया, यूक्रेटाइटीज नामक यवन सरदार का प्रारंभ किया षडयंत्र था। जस्टिन उसके संघर्ष और विजय की गाथा कहता है जिसमें अंततः बैक्ट्रिया का अधिकार यूक्रेटाइटीज को मिल गया और डेमेट्रियस को भारतीय भागों के स्वामित्व से संतोष करना पड़ा। स्ट्रैबो भी यूक्रेटाइटीज को सहस्त्र नगरों के देश (बैक्ट्रिया का अन्य नाम) का स्वामी बताता है।

लगभग 171 ई0पू0 में डेमेट्रियस के भारतीय अभियानों में व्यस्तता का लाभ उठा कर एक अन्य महत्वाकांक्षी यवन नायक यूक्रेटाइटीज ने पीठ पर प्रहार कर डेमेट्रियस के गृह प्रदेश बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लिया और अपने नाम पर यहाँ 'यूक्रेटीडिया' नामक नगर की स्थापना की। डेमेट्रियस ने प्रतिरोध में 4 महीनों तक राजधानी का घेराव किया लेकिन थक कर अंततः समाधान के रूप में भारतीय प्रान्तों पर स्वयं को अधिकृत मानते हुए बैक्ट्रिया यूक्रेटाइटीज को सौंप दिया।

यूक्रेटाइटीज के वंश आदि के विषय में हमारी जानकारी सीमित है। वह विद्रोही तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अतः मौका मिलते ही डेमेट्रियस के भारतीय क्षेत्रों पर भी चढ़ आया। घटनाक्रम का निश्चित स्वरूप क्या रहा होगा ज्ञात नहीं। संभवतः डेमेट्रियस की मृत्यु हो जाने पर ही उत्साहित होकर उसने भारत की ओर का रुख़ किया होगा। स्ट्रेबो की सूचना है कि यूक्रटाइटीज झेलम नदी तक चढ़ आया था। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों से प्राप्त यूनानी व खरोष्ठी लिपियों में लिखवाए गए उसके सिक्के उस हिस्से पर उसके अधिकार का प्रमाण है। इसका अधिकार क्षेत्र काबुल, कंधार, एरियाना व गांधार तक व्यापक था किन्तु उसके पूर्व में यूथीडेमस व डेमेट्रियस के वंशजों का अधिकार निर्विघ्न रूप से बना रहा। यूक्रेटाइटीज ने डेमेट्रियस के शासित क्षेत्रों को विभिन्न युद्धों में अपने लिए जीता। कपिशा के ताम्र सिक्कों को उसके द्वारा पुनर्लांछित किए जाने के साक्ष्य मिलते है। जिनपर पहले अपोलोडॉटस सोटर का अधिकार था। निश्चय ही यह उसके विजय अभियान के दौरान प्राप्त सफलता थी। इसी प्रकार अफ़गानिस्तान व भारत के अन्य हिंद–यवन यूथीडेमस कुलीन शासकों से युद्ध कर उसने अपनी सीमाओं का झेलम के पश्चिमी हिस्सों तक विस्तार कर लिया। इन निरंतर चलने वाले संघर्षों के परिणामस्वरूप भारत के हिंद–यवन राज्य के दो भाग हो गए।

1. पहला वह जिसमें बैक्ट्रिया से लेकर झेलम तक के प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। यूक्रेटाइटीज के वंश ने उसे डेमेट्रियस और उसके उत्तराधिकारियों से जीत लिया था।

2. दूसरा वह जिसमें झेलम से मथुरा तक के हिस्से थे तथा राजधानी शाकल या स्यालकोट थी। इस हिंद–यवन राज्य पर यूथीडेमस के वंशजों ने राज्य किया।

किंतु यूक्रेटाइटीज का वंश बैक्ट्रिया में दीर्घकाल तक जीवित न रह सका। जस्टिन के अनुसार बैक्ट्रिया से शासन करने वाले हिंद–यवनों का आख़िरी राजा हेलिओक्लीज़ था जो यूक्रेटाइटीज का पुत्र था। यूक्रेटाइटीज और हेलियाक्लीज़ के सम्मिलित सिक्के बैक्ट्रिया पर दोनों के सह–शासक होने की पुष्टि करते हैं। संभव है कि डेमेट्रियस के और सोग्डियाना प्रान्त के साथ युद्धों में निरंतर व्यस्त रहने के कारण पश्चिमवर्ती पह्लवी राजा मिथ्रेडिटीज प्रथम ने यूक्रेटाइटीज से हेरात (एरिया) तथा कंधार (अराकोशिया) के प्रदेशों को छीन लिया होगा और तभी बैक्ट्रिया में अपनी स्थिति को मज़बूत बनाने के लिए यूक्रेटाइटीज ने अपने पुत्र को सहशासक के रूप में नियुक्त किया। किंतु विद्रोही एवं महत्वाकांक्षी यूक्रेटाइटीज को सबसे बड़ी क्षति अपने ही महत्वाकांक्षी और विद्रोही हो चले पुत्र से उठानी पड़ी। जस्टिन की सूचना के अनुसार किसी सैन्य अभियान से बैक्ट्रिया वापस लौटते समय यूक्रेटाइटीज अपने ही पुत्र द्वारा मार डाला गया। ये घटना 150 ई0पू0 में कभी घटित हुई। हेलिओक्लीज ने इसके पश्चात् बैक्ट्रिया पर राज्य किया किंतु आपसी संघर्षों से दुर्बल हो चली हिंद–यवन शक्ति को समाप्त होने से न बचा सका। 125 ई0पू0 में यूक्रेटाइटीज के वंश का बैक्ट्रिया से पूर्णतः पटाक्षेप हो गया और जस्टिन के अनुसार उस क्षेत्र पर पार्थिया एवं मध्य एशिया की शक जाति का स्वामित्व स्थापित हुआ। विवश हेलिओक्लीज ने हिंदुकुश को पार कर डेमेट्रियस के वंशजों को आक्रान्त किया तथा काबुल घाटी और गांधार के क्षेत्रों को उनसे छीन कर अपने अधीन कर लिया। यहाँ मध्य और दक्षिणी अफगानिस्तान और पश्चिमोत्तर भारत में अब यूक्रेटाइटीज और डेमेट्रियस के वंशजों का शासन अगले 100 वर्षों तक चलता रहा। इस दौरान हिंद यवनों का इतिहास अत्यंत उलझा हुआ और अन्यायपूर्ण कहा जा सकता है। पुराणों में उनके संदर्भ में की गई टिप्पणी उद्धरणीय हैं जिसमें कहा गया है कि ''वे स्त्री–बच्चों का संहार करते हुए एक–दूसरे की हत्या करेंगे और कलियुग के अंत में पृथ्वी का उपभोग करेंगे।''

मुद्रा साक्ष्यों के आधार पर दोनों कुलों के लगभग 35 शासकों के विषय में जानकारी मिलती है जिन्होंने पश्चिमोत्तर भारत में सम्मिलित रूप से शासन

किया। इस दौर के महानतम शासक के रूप में हम मिनेण्डर को जानते हैं।

12.3.5 मिनेण्डर

मिनेण्डर की ख्याति का सर्वप्रमुख आधार मिलिन्दपण्हो नामक प्राकृत बौद्ध ग्रंथ है जिसमें बौद्ध भिक्षु नागसेन के साथ मिनेण्डर का संवाद संकलित है। यह ग्रंथ मिनेण्डर को विविध विधाओं का ज्ञाता, कलाप्रेमी, काव्य प्रवण तथा बौद्ध धर्म का महान संरक्षक बताता है। उसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) की प्रतिष्ठा तत्कालीन समय में प्रमुख सांस्कृतिक और व्यापारिक नगर के रूप में थी जहाँ के निवासियों के पास सभी वैभव सुलभ थे। ऊँचे भवनों से सजे नगर के बाज़ार में बहुमूल्य वस्तुएँ बिक्री के लिए उपलब्ध थीं। भारत के विदेशी शासकों में मिनेण्डर का स्थान बहुत ऊँचा है जिसका आधार मिनेण्डर की सदस्यता तथा एक शासक के रूप में दूरदर्शिता संपन्न दृष्टि को माना जा सकता है।

सिक्कों और अभिलेखों के आधार पर मिनेण्डर की साम्राज्य सीमा को अफ़गानिस्तान के मध्य हिस्सों, सिंधु–पंजाब, राजस्थान, काठियावाड़ तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशों तक विस्तृत माना जा सकता है। बजौर घाटी में स्थित शिवकोट से प्राप्त धातुगर्म–मंजूषा पर अंकित लेख से पेशावर पर उसके अधिकार की पुष्टि होती है। फतेहपुर (उ0प्र0) के रेह से प्राप्त एक अन्य लेख से इस क्षेत्र पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है। मिनेण्डर के सिक्के भड़ौंच में पहली शती ई0 तक चलते थे जिसकी सूचना पेरिप्लस के विवरणों में सुरक्षित है। अपोलोडोटस नामक इतिहासकार व्यास नदी से लेकर पूर्व में इक्षुमती या रुहेलखंड क्षेत्र में प्रवाहित काली नदी तक मिनेण्डर के साम्राज्य को विस्तृत बताता है। मथुरा पर उसका आधार उसके पुत्र स्ट्रेटो I के सिक्कों से पुष्ट होता है। स्ट्रेबो मिनेण्डर के भारतीय राज्य की तुलना सिंकदर के राज्य से करता है। उसके अनुसार मिनेण्डर ने सिकंदर से भी अधिक विशाल साम्राज्य खड़ा किया जो पश्चिम में झेलम से लेकर पूर्व में यमुना तक विस्तृत था। उसकी राजधानी स्यालकोट तत्कालीन सबसे समृद्ध नगर के रूप में प्रतिष्ठित थी। संभव है कि उस विशाल साम्राज्य के निर्माण हेतु उसने यूक्रेटाइटीज या उसके वंशजों के प्रदेश के कुछ हिस्सों को भी युद्धों में जीत लिया हो जैसा कि काबुल घाटी और सिंधु पर उसके अधिकार से प्रमाणित होता है।

हमें मिनेण्डर के जन्म अथवा वंश के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। मिलिंदपण्हो के अनुसार उसका जन्म काबुल घाटी के सिंकदरिया (अंडर दि कॉकेशस) के कालसी ग्राम में हुआ था। डेमेट्रियस कुल के साथ उसकी सम्बद्धता के विषय में निश्चित साक्ष्यों का अभाव है। संभव है कि वह डेमेट्रियस का छोटा भाई या कोई दूरवर्ती रक्त संबंधी रहा हो जिसने डेमेट्रियस के

उत्तराधिकारी के रूप में कपिशा के स्थानीय शासक के तौर पर अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत की। रोमन लेखक स्ट्रैबो, प्लूटार्क, जस्टिन आदि उसे महान यवन विजेता बताते हैं। मिनेण्डर की संभावित राज्यावधि लगभग 160 ई0पू0 से 130 ई0पू0 के बीच मानी जा सकती है।

मिनेण्डर के जीवन की भाँति उसकी मृत्यु भी रोचक स्मृतियों से भरी है। मिलिन्दपण्हों के अनुसार उसने धर्म विजेता के रूप में सर्वोच्च पद (अर्हत्व) प्राप्त किया फिर अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का त्याग कर दिया। प्लूटार्क के अनुसार उसके मृत्यु पर उसके शिविर में पधारे विभिन्न नगराधिपतियों के बीच अस्थि–बँटवारें की होड़ लग गई और अंततः बुद्ध के अस्थि विभाजन के समान उसकी अस्थियों का भी विभाजन किया गया। यह कथा कितने ही सीमित सत्यांश वाली हो किन्तु बौद्ध भिक्षु और लोकप्रिय शासक के रूप में भारत में उसकी ख्याति का प्रमाण है। भारतीय साहित्य में उसकी स्मृति विभिन्न नामों से सुरक्षित की गई है यथा, रामायण में कर्दम, आर्य मंजुश्री मूलकल्प में महायज्ञ और तारानाथ के विवरण में मिनार आदि।

निश्चित रूप से मिनेण्डर वह प्रथम हिंद–यवन शासक हुआ जिसने भारतीय जन–मानस के हृदय को स्पर्श किया। उसके सिक्कों पर अंकित 'धर्मचक्र' का चिह्न उसके धार्मिक व नीतिसंगत राज्य का संकेत देते हैं। प्लूटार्क भी उसकी न्यायप्रियता की प्रशंसा करता है।

मिनेण्डर की मृत्यु के पश्चात् स्ट्रेटों प्रथम व द्वितीय का शासन हुआ जबकि भारत में हिंद–यवन सत्ता अपनी अंतिम सांसे ले रही थी। यूक्रेटाइटीज कुल में भी हेलियोक्लीज और उसके प्रभावहीन उत्तराधिकारियों से राजधानी पुष्कलावती समेत पूरा पश्चिमी गांधार क्षेत्र पार्थियन शासक मावेज द्वारा प्रथम शताब्दी ईस्वी के प्रथम चरण में छीन लिया गया। पश्चिमी सीमा पर शक–पह्लवों और यू–ची जातियों के बढ़ते प्रभाव के बीच प्रथम शती ई0पू0 के द्वितीयार्द्ध में अन्तिम यवन नरेश हर्मियस (50 ई0पू0 – 30 ई0पू0) को पराजित कर कांधार के पह्लवों ने यवन राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। यद्यपि वे भी शीघ्र ही कुषाणों द्वारा पराजित कर दिए गए। इस प्रकार भारत से हिंद–यवनों का राज्य समाप्त हो गया।

12.4 सारांश

विभिन्न साक्ष्यों के आधार कहा जा सकता है कि मौर्यो के पतन के बाद अफगानिस्तान के इतिहास के विषय में जानकारी, स्रोत एवं हिन्द–यवन डायोडोरस प्रथम,द्वितीय डेमेट्रियस,यूक्रेटाइडिस एवं मेनाण्डर की प्रसिद्वि प्रमुख

मिलिन्दपन्हों नामक बौद्ध ग्रन्थ में है। सिक्कों एवं अभिलेखों के आधार मेनाण्डर के साम्राज्य की सीमा विस्तृत थी।

12.5 बोध प्रश्न

1. हिन्द–यवनों की पहचान और प्रारंभिक इतिहास पर निबंध लिखें।
2. भारतीय इतिहास में हिन्द–यवन शासक डेमेट्रियस का क्या महत्व है ?
3. भारतीय इतिहास हिन्द– यवन शासक मिनेण्डर को किस रूप में स्मरण करता है?

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
- रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस
- श्रीवास्तव, के.सी. 2001–2002 (आठवाँ संस्करण, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, यूनाईटेड बुक डिपो)
- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन

इकाई–13 पश्चिमी भारत के शक–क्षत्रप

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रारंभिक इतिहास

13.3 स्रोत

13.4 शक–क्षहरात शाखा वंश

13.4.1 भूमक व नहपान

13.5 कार्दमक वंश

13.5.1 प्रारंभिक इतिहास

13.5.2 चष्टन

13.5.3 रूद्रदामन

13.5.4 रूद्रदामन के उत्तराधिकारी

13.6 शक–सातवाहन संघर्ष

13.7 सारांश

13.8 बोध प्रश्न

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 प्रस्तावना

शकों का प्रारंभिक इतिहास निष्कासन और विस्थापन का इतिहास कहा जा सकता है। 165 ई0पू0 में उनके सरदरिया के आवास पर मध्य एशिया की ही एक अन्य जाति 'यू–ची' का आक्रमण हुआ। उसके पूर्व शक अथवा 'सई–वांग' या 'सई' ईरान के अख़्मेनियन (हखामनी) शासक डेरियस प्रथम (दारयवौष) की अधीनता में हेलमंद की घाटी वर्तमान तुर्किस्तान एवं रूसी घास के मैदानों में (कम से कम इन तीन केन्द्रों से) शासक कर रहे थे। यूचियों के आक्रमण के कारण इन्हें सरदरिया छोड़ कर दक्षिण–पश्चिम के आमू दरिया के क्षेत्रों में शरण लेनी पड़ी। शीघ्र ही यहाँ से भी इन्हें यू–चियों के द्वारा निष्कासित कर दिया गया। अपने मूल प्रदेश से उन्हें 165 ई0पू0 में निकलना पड़ा जिसके बाद

लगभग 20 ई0पू0 में जबकि मावेज द्वारा तक्षशिला का क्षत्रप वंश स्थापित किया गया, उन्हें उनकी पहली स्थिर राजनैतिक पहचान प्राप्त हुई।

13.1 उद्देश्य

भारत के इतिहास में शकों की उपस्थिति का मुख्य कारण पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेशों और मध्य एशियाई क्षेत्रों का अस्थिर राजनैतिक माहौल था। भारत पर उनके चार मुख्य शाखावंशों के शासन का पता चलता है जो मूलतः सोग्डियाना (सुग्ध, वर्तमान उज़बेकिस्तान) के उस पार सर दरिया के मैदानों में निवास करते थे। हेरोडोटस ने उन्हें बैक्ट्रिया की पड़ोसी जाति के रूप में पहचाना है। यह वही क्षेत्र है जिसकी वर्तमान राजधानी तुर्किस्तान है।

13.2 प्रारंभिक इतिहास

मध्य एशिया से निकाले जाने पर शक दो शाखाओं में विभाजित हो गए। एक शाखा हिंदुकुश के उत्तरवर्ती कंबोज महाजनपद के कीपिन अथवा 'कपिशा' पर अधिवासित हुई जबकि दूसरी शाखा पश्चिम में ईरान की पूर्वी सीमा पर स्थित वर्तमान सिस्तान में रूकी। विद्वान इस विषय पर भिन्न मत वाले हैं कि भारत पर राज्य स्थापित करने वाले शक कपिशा से होकर आए थे अथवा सिस्तान से। जो भी हो, शकों के आक्रमण की आँधी में बैक्ट्रिया का हिंद यवन साम्राज्य विनष्ट हो गया। यद्यपि वे स्वयं भी ईरानी, पह्लवी तथा यू–चियों के 'कुषाण' कबीले के दबाव में स्थित राज्य न बना सके। ईरान की पूर्वी सीमा पर बसे शकों को शुरू में पार्थियन शासकों, फ्रात II और आर्तबान I के विरूद्ध (138–123 ई0पू0 में) सफलता मिली और दोनों शासकों ने शक–विरोधी युद्धों में प्राण गँवा दिए। इनके उत्तराधिकारी मिथ्रदात II (123ई0पू0 से 88ई0पू0) ने अंततः शकों को जीत लिया और सिस्तान से बाहर खदेड़ दिया। पुनः निष्कासित शक वंश अबकी बार दक्षिणी अफ़गानिस्तान में सिंधु की निचली घाटी में जाकर रूका और उनकी स्मृति में यह स्थान 'सीथिया' कहलाया। यहाँ शकों की राजधानी 'मिननगर' थी जो उन्होंने सिस्तान में इसी नाम के एक नगर से प्रेरित होकर स्थापित की होगी। प्रतीत होता है कि मिननगर एक सामान्य संबोधन था जिसका प्रयोग शकों ने अपने प्रमुख नगरों के लिए किया है।

इस प्रकार शकों ने उत्तर में कपिशा और दक्षिण में सिंधु की निचली घाटी को आवासित किया। सामान्यतः माना जाता है कि तक्षशिला, मथुरा एवं पश्चिमी भारत–दकन के शक–क्षत्रप कश्मीर के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुए तथा मालवा–काठियावाड़ की कार्दमक शक शाखा सिस्तान–सीथिया के रास्ते सिंधु नदी के मार्ग से देश के भीतर आई।

13.3 स्रोत

शकों या सीथियनों के इतिहास की जानकारी के स्रोत के रूप में हखामनी सम्राटों के लेख, चीनी साहित्यिक साक्ष्यों, सिएन–हान–शू एवं हाऊ–हान–शू उल्लेखनीय हैं। ये स्रोत हमें मध्य एशिया में शकों के अधिवास, प्रव्रजन एवं राज्यों की स्थापना तथा अन्य समकालीन जातियों के साथ होने वाले संघर्षों की सूचना देते हैं।

भारत में शकों के फैलाव और राज्यों की जानकारी के मुख्य स्रोत वे अनेक अभिलेख हैं जिन्हें तक्षशिला, मथुरा, उज्जैन तथा महाराष्ट्र के शाखा वंशों ने लिखवाया। मुद्रासाक्ष्य भी इस विषय में उपयोगी है। पश्चिमी भारत से विशेषतः हमें अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। कुछ अन्य समकालीन अभिलेख यथा कुषाण सम्राट कनिष्क के लेखों तथा सातवाहन लेखों से भी शकों के इतिहास के पुनर्निर्माण में मदद मिलती है।

भारतीय साहित्य में विदेशी जातियों के प्रसंग में शक शासकों का उल्लेख हुआ है जिससे समकालीन परिदृश्य में शकों की भूमिका पर प्रकाश पड़ता है। रामायण–महाभारत और पुराणों के साथ–साथ स्मृति ग्रंथों यथा मनुस्मृति और पश्चात् कालीन ग्रंथ गार्गीसंहिता, महाभाष्य, अष्टाध्यायी, देवीचंद्रगुप्तम्, हर्षचरित, काव्यमीमांसा, कालकाचार्य कथानक आदि भारतीय समाज में शकों की उपस्थिति को प्रमाणित करते हैं।

13.4 शक–क्षहरात शाखा वंश

महाराष्ट्र–सुराष्ट्र पर अधिकार करने वाली शकों की शाखा क्षहरात वंश के नाम से समकालीन अभिलेखों में उद्धृत है। शक्ति की पराकाष्ठा पर क्षहरातों का अधिकार अजमेर से लेकर नासिक तक लगभग संपूर्ण मालवा, गुजरात, सुराष्ट्र, महाराष्ट्र के उत्तरी व राजस्थान के दक्षिणी हिस्सों पर स्थापित था। विद्वानों का विचार है कि क्षहरातों का शाखा वंश पूर्वी ईरान के सिस्तान (शकस्थान) और सीथिया (सिंधु का निचला घाटी क्षेत्र) होते हुए मालवा और काठियावाड़ में आकर बसा।

13.4.1 भूमक व नहपान

क्षहरात शाखा के प्रमुख शासकों में भूमक और नहपान विशेष प्रसिद्ध हैं। भूमक के सिक्के गुजरात के तटवर्ती प्रदेशों, मालवा और अजमेर से मिले हैं जिन पर ब्राह्मी और खरोष्ठी में भूमक का नाम अंकित है। उल्लेखनीय है कि इस समय कुषाणों का अधिकार पश्चिम व पश्चिमोत्तर भारत पर स्थापित था और

संभवतः भूमक उनके क्षत्रप (गवर्नर) के रूप में अपने राजनैतिक जीवन को प्रारंभ करता है। उसका उत्तराधिकारी नहपान संभवतः इस वंश का प्रथम और अंतिम स्वतंत्र राजा हुआ जिसे प्रारंभिक अभिलेखों में 'क्षत्रप' किंतु बाद के अभिलेखों में 'महाक्षत्रप' कहा गया है। भूमक के साथ उसके संबंध का हमें ज्ञान नहीं किंतु वह उसका राजनैतिक उत्तराधिकारी हुआ। उसके शासन काल के आठ लेख नासिक, जुन्नार और कार्ले की गुहाओं से मिलते हैं जिनमें सात गुहादान उसके जमाता उषवदात (ऋषभदत्त) द्वारा तथा एक अमात्य अर्यमन् द्वारा संपादित किए गए थे। नहपान के चाँदी व ताँबे के बहुसंख्य सिक्के, अजमेर व नासिक से मिले हैं जिनमें उसे मात्र 'राजन्' कहा गया है। इन अभिलेखों या सिक्कों में कहीं भी कुषाणों का उल्लेख न मिलना और नहपान का पहले क्षत्रप फिर महाक्षत्रप और सर्वत्र 'राजन' संबोधन का प्रयोग करना दर्शाता है कि वह स्वतंत्र शासक के रूप में अजमेर से नासिक तक विस्तृत अखण्ड साम्राज्य का उपभोग कर रहा था। नासिक व पूना उसने सातवाहनों से जीता था।

पेरिप्लस द्वारा उल्लिखित 'मांमब्रू' राजवंश का समीकरण क्षहरातों से स्थापित किया जाता है जिनकी राजधानी मिननगर में थी। वर्तमान में इसकी स्थिति उज्जैन व भड़ौंच के बीच निश्चित की जाती है। इस विस्तृत साम्राज्य का दक्षिणी हिस्सा (नासिक व पूना) नहपान के दामाद उषवदात के प्रशासनिक अधिकार में रखा गया। उसके नासिक व कार्ले से प्राप्त अभिलेखों से हमें ज्ञात होता है कि उषवदात धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था जिसने गोवर्धन (नासिक) व मामाल (पूना) आहारों में दान स्थापित किए। उसकी आस्था बौद्ध व ब्राह्मण धर्मों के प्रति समान रूप से प्रदर्शित होती है जो नहपान के राज्य में धार्मिक सद्भाव को परिलक्षित करती है। नहपान की पुत्री तथा उषवदात की पत्नी दक्षमित्रा का उल्लेख भी अभिलेखों में प्राप्त होता है।

नहपान ने संभवतः 119 से 124 ई0 के मध्य शासन किया। अमात्य अर्यमन के जुन्नार अभिलेख की तिथि शक संवत् 46 के बाद हमें नहपान के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। संभवतः इसी समय कभी सातवाहन शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा वह पराजित किया गया तथा अन्तगति को प्राप्त हुआ। नासिक स्थित जोगलथंबी के मुद्रा भंडार के वे बहुसंख्य सिक्के जिन्हें गौतमीपुत्र ने अपने नाम से पुनर्मुद्रित करवाया इसके साक्ष्य स्वरूप उद्धृत किए जा सकते हैं। नहपान के साथ ही संभवतः क्षहरातों के वंश का समापन हो गया क्योंकि उसके किसी भी उत्तराधिकारी के विषय में हमें कोई सूचना नहीं मिलती।

13.5 कार्दमक वंश

13.5.1 प्रारंभिक इतिहास

जिस समय सुराष्ट्र व मालवा में क्षहरातों की सत्ता पर सातवाहनों का संकट गहराने लगा उसी समय इन क्षेत्रों पर शकों के नवीन कुल कार्दमकों का सूर्योदय हुआ। इस वंश का संस्थापक यसमोतिक को बताया गया है जिसके पुत्र चष्टन ने उज्जैन को राजधानी बनाकर अपने स्वतंत्र राज्य की नींव रखी। चष्टन को प्रारंभिक सिक्कों पर 'क्षत्रप' और बाद के सिक्कों पर 'महाक्षत्रप' कहा गया है। 'राजन' उपाधि का प्रयोग सर्वत्र ही उपरोक्त के साथ प्राप्त होता है। इस वंश के लिए प्रयुक्त कार्दमक संबोधन का प्रयोग मात्र रूद्रदामन की पुत्री के लिए कन्हेरी अभिलेख में प्राप्त होता है जो सातवाहन शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि के पुत्र की विवाहिता थी। इस आधार पर इस वंश को सामान्यतः कार्दमक वंश के रूप में प्रसिद्धि मिली। संभव है कि बैक्ट्रिया में आमू नदी की सहायक कार्दम नदी के किनारे मूलतः निवास करने वाली इस जाति को नदी के नाम पर यह संबोधन प्राप्त हुआ हो। शक संवत् 52 (130 ई0) के अन्धौ (कच्छ की खाड़ी) अभिलेख से सूचित होता है कि कार्दमक मूलतः कच्छ की खाड़ी व समीप के क्षेत्रों पर कुषाणों के क्षत्रप के रूप में शासनरत थे। नहपान की पराजय व मृत्यु के पश्चात् उन्हें कुषाणों द्वारा दक्षिण–पश्चिम की ओर भेजा गया जहाँ वे क्रमशः स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे। टालमी के भूगोल में भी उन्हें उज्जैन के शासक के रूप में उद्धृत किया गया है।

13.5.2 चष्टन

चष्टन का राजनैतिक जीवन कच्छ प्रान्त में कुषाणों द्वारा नियुक्त क्षेत्रीय अधिकारी या क्षत्रप के रूप में शुरू हुआ। कालांतर में वह कुषाणों के दक्षिण–पश्चिमी प्रान्त का प्रान्ताधिकारी नियुक्त किया गया जिसका सबसे महान दायित्व सातवाहनों की बढ़ती शक्ति के विरूद्ध कुषाणों की दक्षिणी–पश्चिमी सीमा की सुरक्षा करना था। चष्टन ने परवर्ती सिक्कों में महाक्षत्रप उपाधि का प्रयोग किया है जो उसकी स्वतंत्र स्थिति को दर्शाता है। उसने सुदीर्घ काल तक शासन किया और अपने पुत्र जयदामन को क्षत्रप के रूप में नियुक्त कर दायित्व का उचित विभाजन तथा संवरण भी किया। संभवतः जयदामन ने उज्जयिनी की विजय कर अपने चयन के औचित्य को सिद्ध भी किया किन्तु शीघ्र ही अल्पायु में मृत्यु हो जाने से चष्टन को उसके पुत्र तथा अपने पौत्र रूद्रदामन को सहशासक–'क्षत्रप' नियुक्त करना पड़ा। अन्धौ अभिलेख की सूचनानुसार 130 ई0 में चष्टन के महाक्षत्रप रहते क्षत्रप रूद्रदामन का शासन स्थापित था।

13.5.3 रूद्रदामन

अपने पितामह चष्टन के साथ सहशासक के रूप में प्रशासनिक अनुभव अर्जित कर चुके महाक्षत्रप रूद्रदामन ने 130 ईस्वीं सन् में शासन करना प्रारंभ किया। सौराष्ट्र की प्राचीन राजधानी गिरिनगर (जूनागढ़) से प्राप्त 20 पंक्तियों में निबद्ध उसकी प्रशस्ति उसके यशस्वी शासन का गुणगान है। यह लेख संस्कृत में लिखा गया प्राचीनतम औपचारिक लेख है जिसमें रूद्रदामन द्वारा चंद्रगुप्त मौर्य के काल में निर्मित सुदर्शन झील के पुनरूद्धार कार्य का उल्लेख है। साथ ही रूद्रदामन के राजनैतिक जीवन और उपलब्धियों के विषय में भी विस्तृत सूचना संकलित है। इसमें दी गई शक संवत् 72 (150 ई0) की तिथि के आधार पर उसके शासन काल को 130–150 ई0 के मध्य निश्चित किया जाता है।

रूद्रदामन की मुख्य सैन्य उपलब्धियों में –

1. दक्षिणापथपति शातकर्णि को दो बार पराजित करना एवं उनके विजित प्रदेशों का आहरण।

2. आयुधजीवी यौधेयों को हराना तथा उनके आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा करना एवं

3. कनिष्क के निर्बल उत्तराधिकारियों से सिंध–सौवीर का अधिकार जीतना शामिल हैं।

जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि दक्षिणापथेश्वर शातकर्णि को स्ववीर्य से दो बार जीतकर रूद्रदामन ने संबंधों की निकटता के कारण अभयदान दिया था। इन युद्धों का विजित शातकर्णि संभवतः गौतमीपुत्र शातकर्णि या उसका पुत्र वसिष्ठी पुत्र पुलुमावी रहा होगा जिसके साथ रूद्रदामन की पुत्री ब्याही थी। किंतु ग्रहण–मोक्ष के बाद भी शातकर्णि ने क्षेत्रीय अधिकार स्थापित करने में कोई कोताही नहीं की जैसा प्रशस्ति में गिनाए उसके साम्राज्य में अंतर्भुक्त क्षेत्रों को देखकर ज्ञात होता है। सातवाहन शासक की पराजय ने उसे सहज ही मालवा, गुजरात, काठियावाड़, माहिष्मती और अपरान्त (उत्तरी कोंकण) का अधिकार सुलभ करा दिया। ये सभी क्षेत्र पहले गौतमीपुत्र शातकर्णि के शासन के अंतर्गत थे जिसकी सूचना हमें उसकी नासिक प्रशस्ति से प्राप्त होती है।

गिरनार अभिलेख कच्छ, स्वभ्र (साबरमती की घाटी), मरु (मारवाड़) और निषाद (सरस्वती और विंध्य के बीच का क्षेत्र) पर भी उसका अधिकार प्रमाणित करता है। सिंधु की निचली घाटी को उसने कनिष्क के दुर्बल उत्तराधिकारियों से

जीता होगा क्योंकि इस क्षेत्र पर सुई विहार लेख के अनुसार कनिष्क का स्वामित्व था। संभवतः उचित समय देखकर रूद्रदामन ने अपने अधिराज को भी आघात देने में संकोच नहीं किया और अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया। मात्र विस्तार ही नहीं राज्य के सीमाओं की सुरक्षा को भी उसने पूरी सावधानी से सुनिश्चित किया। प्रशस्ति बताती है कि समस्त क्षत्रियों में वीर आयुधजीवी यौधेयों से रूद्रदामन ने अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए आक्रमणात्मक युद्ध किया। यौधेय पंजाब के दक्षिण में सतलज के तटवर्ती क्षेत्रों पर राज्य करने वाली गणतांत्रिक जाति थी जिसकी पराजय ने रूद्रदामन के राज्य पर उत्तरी आक्रमणों की संभावना को निरस्त कर दिया।

रूद्रदामन के साम्राज्य में क्षहरात वंशी नहपान के राज्य के अधिकांश हिस्से (मात्र नासिक व पुणे को छोड़कर) शामिल थे। यह निश्चित रूप से एक विशाल और अभूतपूर्व शक–क्षत्रप राज्य बना जो हिंदू धर्म के परिवर्धन की दृष्टि से विशेष–रूपेण उल्लेखनीय है। संभवतः नहपान के अधीन रह चुके उन राजाओं को उसने सिंहासन पर पुनर्प्रतिष्ठित भी किया जिन्हें गौतमीपुत्र ने अपदस्थ कर दिया था। हमें जूनागढ़ प्रशस्ति के 'भ्रष्टराजप्रतिष्ठापक' से इसका संकेत मिलता है।

समकालीन राजनीति में अपनी सशक्त भागीदारी के द्वारा रूद्रदामन को हम भारत के महानतम शासकों में रख सकते हैं किन्तु एक विजेता के साथ–साथ रूद्रदामन की प्रतिष्ठा एक कुशल प्रशासक होने के कारण भी है। सुदर्शन झील के पुनर्निर्माण के द्वारा उसने प्रजा की भलाई के लिए अपने निजी कोष से धन व्यय किया। ऊर्जयत पर्वत से निकलने वाली सुवर्णसिकता और पलाशिनी नदियों के जल के संग्रहण के लिए मौर्यवंशी चंद्रगुप्त ने अपने राष्ट्रिय पुष्यगुप्त के द्वारा इस झील का निर्माण करवाया था तथा सम्राट अशोक ने झील से नहरें निकलवाकर सिंचाई का कार्य सुगम बनाया। लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक लोगों को अपनी सुविधा प्रदान करने वाले इस तडाग में रूद्रदामन के समय 24 हाथ लम्बी और 75 हाथ गहरी दरार बन गई जिससे झील का पानी कृषि कार्य हेतु प्रयुक्त न हो रहा था। भयंकर अतिवृष्टि और सिंचाई सुविधाओं के संकट ने प्रजा को गंभीर कष्ट में डाल दिया। इसी समय रूद्रदामन ने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से राज्यपाल सुविशाख के निर्देशन में झील की मरम्मत का कार्य पूर्ण करवाया। पहले से भी अधिक मज़बूत निर्माण तथा इस मरम्मत कार्य को करवाने के लिए रूद्रदामन ने प्रजा पर कोई अतिरिक्त कर भार भी नहीं आरोपित किया, यही उसका सबसे बड़ा श्रेय है।

रूद्रदामन का राज्य बीमारियों, लुटेरों तथा हिंसक पशुओं और गतिविधियों

से मुक्त था। उसके प्रयासों ने उज्जैन नगर को विद्या के केंद्र के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित किया। वह स्वयं विद्यानुरागी तथा महान कलाप्रेमी शासक था जिसकी झलक उसकी जूनागढ़ प्रशस्ति से मिलती है। संस्कृत भाषा और साहित्य की विधाओं में लेखन के प्रति उसका कौशल व अनुराग बढ़ा हुआ था। वह धार्मिक, न्यायप्रिय और सामाजिक व्यवस्थाओं के लिए आस्थावान रहा जो उसकी प्रभूत जनप्रियता का प्रमुख कारण था।

13.5.4 रूद्रदामन के उत्तराधिकारी

दूसरी शती ई0 तक रूद्रदामन के उत्तराधिकारियों ने कार्दमक शाखा वंश के अस्तित्व को बचाए रखा। सातवाहनों ने उनके दक्षिणी प्रान्तों को दूसरी शती ईसवीं के उत्तरार्ध में किसी समय हस्तगत कर लिया और कुछ वर्षों के बाद मालवों और आभीरों ने उत्तरी प्रांतों को जीत लिया। इस वंश के अंतिम शासक के रूप में हम विश्वसेन को तीसरी शती ई0 के अंत में राज्य करता देखते हैं। इसके पश्चात् रूद्रसिंह द्वितीय के द्वारा 304 ई0 में नवीन क्षत्रप वंश की स्थापना की गई। उसके पिता जीवदामन का राजनैतिक अतीत अज्ञात है अतः संभावना की गई है कि रूद्रसिंह द्वितीय चष्टन वंश से असम्बद्ध कोई अन्य शक–क्षत्रप शाखा वंशी रहा होगा।

13.6 शक–सातवाहन संघर्ष

पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती बंदरगाहों और उनके माध्यम से होने वाले व्यापार को नियंत्रित करने के लिए शकों और सातवाहनों के बीच दीर्घकालीन संघर्ष छिड़ा। शातकर्णि प्रथम के बाद सातवाहनों के इतिहास में आए अंधयुग के लिए शकों को ही उत्तरदायी माना जाता है। प्रथम शती ई0पू0 के मध्य में कभी पश्चिमी भारत को शकों के आक्रमण ने आक्रान्त किया और सातवाहनों के हाथ से महाराष्ट्र, मालवा, काठियावाड़ जैसे प्रदेश निकल गए। विवश होकर सातवाहनों को दक्षिण की ओर प्रवासित जीवन बिताना पड़ा। इस दौरान सौ वर्षों तक सातवाहनों के इतिहास की किसी भी उल्लेखनीय घटना अथवा शासकों की उपलब्धियों का ज्ञान नहीं है। इस अंधकारमय काल का समापन गौतमीपुत्र शातकर्णि के द्वारा क्षहरात शासक नहपान की पराजय द्वारा संभव हुआ। हमें पेरिप्लस तथा नासिक प्रशस्ति से नहपान की राजधानी भड़ौंच पर गौतमीपुत्र शातकर्णि के अधिकार की प्रामाणिक सूचना मिलती है। भड़ौंच एक प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र बन चुका था जिसे जीतना सातवाहनों की राजनैतिक व आर्थिक दोनों ही प्रतिष्ठा के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ। नासिक और पुणे पर भी सातवाहनों का अधिकार पुनः स्थापित हो गया तथा जोगलथम्बी स्थित नहपान

की टकसाल को अधिकृत कर गौतमीपुत्र ने नहपान के सिक्कों को अपने नाम से पुनः अंकित करवाया। ये प्रमाण सातवाहनों की अदम्य महत्वाकांक्षा और शकों के विरूद्ध निर्णायक सफलता के साक्ष्य हैं।

किंतु गौतमीपुत्र शातकर्णि की शकों के विरूद्ध सफलता अल्पकालिक रही। उज्जैन में कार्दमक शकों के उत्कर्ष ने सातवाहनों को साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों के समर्पण के लिए विवश कर दिया। गौतमीपुत्र का बेटा वसिष्ठीपुत्र पुलुमावी कार्दमक शक रूद्रदामन का जामाता था। रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से स्पष्ट सूचना मिलती हैं कि उसने दक्षिणापथ स्वामी शातकर्णि को युद्धों में दो बार पराजित किया किंतु आत्मीय संबंधों के कारण प्राण नहीं लिए। रूद्रदामन सातवाहनों के विरूद्ध संघर्ष में बीस रहा तथा अपने पूर्व में शासन करने वाले पश्चिमी भारत के क्षहरातों के लगभग समग्र राज्य का अधिपति बन गया। सातवाहनों ने इस संकट की घड़ी में भी संभावनाएँ तलाशना जारी रखा और आन्ध्र में अमरावती और कृष्णा नदी के क्षेत्रों पर अपने अधिकार का विस्तार किया। पुलुमावी आन्ध्र के तटवर्ती बदंरगाहों को व्यापार के निमित्त प्रयोग करने वाला पहला सातवाहन शासक बना जिसके सिक्कों पर दो पतवारों वाले जहाज़ के चित्र का अंकन प्राप्त होता है। उसके पुत्र यज्ञश्री के नासिक व कन्हेरी से प्राप्त क्रमशः सातवें और सोलहवें वर्ष के लेखों से उसकी उपलब्धियों की जानकारी मिलती है। उसकी राज्य–सीमा के अंतर्गत पूर्वी और पश्चिमी दोनों तट शामिल थे जहाँ से चाँदी के अनेक सिक्कों की प्राप्ति होती है। संभव है रूद्रदामन के शासन का 150ई0 में अवसान हो जाने पर सातवाहनों ने अपने क्षेत्रों को पुनः जीत लिया। कम से कम कार्दमक शकों के साम्राज्य के दक्षिणी हिस्सों को सातवाहनों ने अपने स्वामित्व में पुनः स्थापित कर लिया था। उसके बाद दोनों ही राजवंशों का सक्रिय राजनीति में उल्लेख मिलना बंद हो जाता है जो उनकी स्वतंत्र सत्ता के अवसान का चिह्न है।

13.7 सारांश

मध्य एशिया के पलायन के बाद शक दो भागों में विभाजित हो गये। एक शाखा उत्तर एवं दूसरी दक्षिण में स्थापित हो गयी। तथा कश्मीर के रास्ते भारत में प्रवेश कर मालवा काठियवाड़ तक विस्तृत हो गये। कार्मदम शक शाखा सिस्तान सीरिया के रास्ते सिन्धु नदी के रास्ते भारत में प्रवेश करे। सीथियन के इतिहास की जानकारी के स्रोत के रूप में हखामनी सम्राटों के लेख,साहित्यिक साक्ष्य जिनमें हान–शू, हाउ हान–शू से इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है।

13.8 बोध प्रश्न

1. शक–शत्रपों के संबंध में अपनी जानकारी साझा करें।
2. नहपान कौन था, विस्तारपूर्वक बताएँ।
3. प्राचीन भारत के इतिहास में रूद्रदामन का क्या इतिहास है ?
4. शकों और सातवाहनों के मध्य संघर्ष का क्या इतिहास है ?

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन
- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्रचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
- रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस
- सिंह, रामवृक्ष, 2005–2008 (आठवाँ संस्करण) प्राचीन भारत, भाग–1, इलाहाबाद, स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स।

इकाई–14 पह्लव वंश

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्‌देश्य

14.2 प्रारंभिक इतिहास

14.3 वोनोऩीज

14.4 गोण्डोफ़र्नीज़

14.5 सारांश

14.6 बोध प्रश्न

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 प्रस्तावना

सिंकदर की मृत्यु के बाद उसके पूर्वी प्रान्तों में से बैक्ट्रिया और पार्थिया (कैस्पियन सागर का दक्षिण–पूर्वी क्षेत्र) के क्षेत्र अपने यवन गवर्नरों के नेतृत्व में शीघ्र ही स्वतंत्र हो गए। पार्थिया या पूर्वी ईरान के स्वतंत्र यवन क्षत्रपी को किसी स्थानीय राजवंश ने समाप्त कर पार्थियन या पह्लवी राज्य की नींव रखी जिनके पूर्वी प्रान्तपतियों ने कालांतर में स्वतंत्र होकर भारतीय भू–क्षेत्रों को जीता और भारत के इतिहास में 'पह्लव' कहलाए। इस क्षेत्र में इनका इतिहास शकों के साथ समन्वित रूप से प्रस्तुत होता है।

14.1 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- इस इकाई का मुख्य उद्‌देश्य आपको सिकन्दर की मृत्यु के बाद के इतिहास की जानकारी प्रदान करना।
- सथ ही पहलव, गोण्डोफर्नीज आदि से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करना।

14.1 प्रारंभिक इतिहास

पूर्वी ईरान और भारत के बीच द्वितीय शती ई0पू0 के मध्य से प्रथम शती ई0पू0 के बीच शक–पह्लव मिश्रित जाति के अनेक केन्द्र और उपकेन्द्र बन गए थे जिनके आक्रमणों से भारत का पश्चिमी सीमाप्रान्त आक्रान्त होता रहता था।

तीसरी शती ई0पू0 में चीनी शासक किन–शी–ह्वांग द्वारा चीनी साम्राज्य के पुनर्गठन की प्रक्रिया में चीन की पश्चिमी सीमा से लेकर मध्य एशिया तक जनजातीय प्रवसन–प्रव्रजन गतिविधियाँ तेज़ हो गई थीं। जिस क्रम में शक जाति का दक्षिण में कपिशा तथा पश्चिम में ईरान की ओर विस्थापन हुआ। ईरान की ओर आने वाले शकों को पूर्वी ईरान पर अधिकार के लिए पार्थव नरेशों मिथ्रदात प्रथम, फ्रात II, आर्तबान I तथा मिथ्रदात II से संघर्ष करना पड़ा। सिस्तान, अराकोसिया, एशिया और काबुल घाटी पर अधिकृत पह्लवों के सिक्कों और अभिलेखों से इस क्षेत्र में उनका इतिहास शकों के साथ अत्यंत उलझे रूप में प्रकट होता है। दोनों जातियों के बीच आपसी वैवाहिक संबंधों से ये जटिलता और बढ़ती दिखती है। सिक्कों पर अंकित लेख इनके पारिवारिक संबंधों पर प्रकाश डालते हैं साथ ही, संयुक्त शासन के प्रमाण भी मिलते हैं। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है कि पूर्वी ईरान में शकों के आक्रमणों के कारण मूल पह्लव वंश (ईरान का पार्थियन साम्राज्य) कमज़ोर हो गया और यहाँ (सिस्तान और अराकोसिया में) पह्लव सरदार, जो ईरानी पार्थियन अधिराजों के प्रांतीय शासक थे, स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे। भारतीय इतिहास में सिस्तान (पूर्वी ईरान) और अराकोशिया (द0 पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान) के इन्हीं पह्लव गवर्नरों को 'पह्लवों' के रूप में पहचान मिली।

14.3 वोनोनी़ज

इस क्षेत्र में स्वतंत्र पह्लव शासक के रूप में हम वोनोनीज़ को सत्तासीऩ पाते हैं। विद्वानों के विचार से उसने अपनी स्वतंत्रता के उपलक्ष्य में 57–58 ई0 पू0 में नए संवत् का प्रवर्तन किया जो कालान्तर में पंजाब में निवास करने वाली मालव जाति के नाम पर मालव, कृत अथवा विक्रम संवत कहलाया। वोनोनी़ज ने अपने सिक्कों पर 'महाराजाधिराज' की उपाधि का प्रयोग किया है जिसे उसके अधिराज मिथ्रदात II ने भी धारण किया था।

वोनोनी़ज या भारतीय साक्ष्यों के वनान ने अपने संबंधियों श्पलहोर (विमाता पुत्र) और श्पलगडम (भतीजे) को दक्षिण अफ़गानिस्तान और निकटवर्ती क्षेत्रों का प्रतिनिधि एवं सह–शासक नियुक्त किया था। उसके सिक्कों के पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में दोनों सहशासकों के नाम अंकित हैं जबकि मुखभाग पर यूनानी लिपि में महाराजाधिराज वोनोनीज़ का नाम लिखा है। एक अन्य मुद्रा प्रकार पर स्पलरिसेज़ नामक उपाधिहीन शासक का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जिसे राजा का भाई बताया गया है। स्पलरिसेज नामक इस शासक के एक अन्य प्रकार के सिक्कों के अग्रभाग पर यूनानी लिपि में उसका ही नाम और पृष्ठभाग पर सहशासक के रूप में खरोष्ठी में एजेज़ का नाम अंकित मिलता है।

दोनों ही महाराज बताए गए हैं। ऐसा संभव है कि स्पलरिसेज़ ने वोनोनीज़ के अधीन शासन की शुरूआत की। बाद में उसने वोनोनीज़ के सिक्कों को यूनानी छाप और अपने नाम वाले अंकन से पुनर्टंकित करवाया जो उसके वर्धमान प्रभाव और स्वतंत्र शासक बनने की सूचना देते हैं। लगभग 18 ई0पू0 से लेकर 9 ई0 पू0 तक उसका शासन रहा। अनुमान है कि स्पलरिसेज़ या स्पलरिस ने जिस 'एजेज़' के साथ मिलकर शासन किया था। वह शक उत्पत्ति का शासक था। यद्यपि डी.सी. सरकार ने उसे स्पलरिस का पुत्र बताया है। तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य भी यही था कि पूर्वी ईरान से तक्षशिला पर्यन्त पह्लव और शक वंशी शासक रक्त और राजनैतिक संबंधों में सहजता से सहजीवन यात्री बन रहे थे। एजेज़ अथवा एजेज़ प्रथम ने पह्लवों के साथ मिलकर गांधार के शक राजा मोग या मावेज़ से तक्षशिला के स्वामित्व को जीत लिया तथा पूर्वी पंजाब में यूथीडेमस कुल के यवनों की शेष शक्ति को भी समाप्त कर दिया। उसने यवन राजा अपोलोडॉटस और हिपोस्ट्रेटस के सिक्कों को अपने नाम से पुनर्टंकित करवाया।

एजेज़ के शासन के पश्चात् एजेलिसेज़ नामक संभवतः उसका पुत्र शासक बना जिसका उल्लेख उसके सिक्कों पर पहले एजेज़ I के सहशासक के रूप में पुनः स्वतंत्र शासक के रूप में, जिसका सहशासक उसका पुत्र एजेज़ II रहा, प्राप्त होता है। इसने भारतीय भूक्षेत्र में मथुरा तक के प्रदेशों को जीता जिसे बाद में राजवुल के शक–क्षत्रप वंश की निगरानी में रख दिया।

एजेज़ II ने पहले एजेलिसेज़ के साथ फिर स्वतंत्र रूपेण शासन किया, जैसा कि मौद्रिक प्रमाणों से ज्ञात है। इसके समय में तक्षशिला पर एजेज़ वंशियों की पकड़ ढीली पड़ने लगी। वस्तुतः उस समय तक्षशिला पर दुतरफा संकट आसन्न था। फ्रायोटीज़ नामक किसी स्थानीय व्यक्ति द्वारा तक्षशिला को अधिकृत कर लिया गया था तथा पश्चिम की ओर से अराकोशिया (दक्षिण अफ़गानिस्तान स्थित हेलमंद की सहायक अर्धदाब नदी का क्षेत्र) के पह्लव वंशी शासक गोण्डोफर्नीज़ के द्वारा निंरतर दबाव बढ़ता जा रहा था। रोमन इतिहासकार फिलोस्ट्रेटस के विवरण बताते हैं कि गोण्डोफर्नीज ने फ्रायोटीज़ को हराकर तक्षशिला को निर्णायक रूप से जीत लिया।

इस प्रकार पूर्वी ईरान (द्रंगिआना) दक्षिणी अफ़गानिस्तान (अराकोसिया) और तक्षशिला (गांधार) पर पह्लव–शकों का मिश्रित राज्य लगभग 44 ई0 तक स्थापित रहा। इनमें द्रंगिआना और अराकोसिया पह्लवों के तथा गांधार क्षेत्र शकों के अधिकार में था किंतु निर्दिष्ट समय में ये दोनो वंश पारस्परिक रूप से एक ही थे। वोनोनीज़ तथा स्पलरिसेज़ अफ़गानिस्तान तक सीमित रहे जबकि तक्षशिला और उसके पूर्ववर्ती हिस्सों को एजेज़ वंशियों ने जीता।

14.4 गोण्डोफ़र्नीज़

पहली शताब्दी ईस्वी में (संभवतः 20 ई0) पंजाब और सिंध क्षेत्र पर शासन करने वाले पह्लव मूल के शासक गोण्डोफ़र्नीज़ का अधिकार अभिलेखों व मुद्रालेखों से प्रमाणित है। गोण्डोफ़र्नीज़ अराकोसिया के उपराजा के रूप में सीस्तान–द्रंगिआना के पह्लव शासक आर्थग्नीज़ के द्वारा नियुक्त किया गया। मौद्रिक प्रमाण उसके सहशासक के रूप में उसके भाई 'गुड' या 'गुडन' की भी चर्चा करते है। शीघ्र ही अपनी शक्ति का विस्तार करते हुए गोण्डोफ़र्नीज़ ने पूर्वी ईरान की केंद्रीय सत्ता पर अधिकार कर लिया और स्वतंत्र शासक के रूप में शासन करने लगा। उसके द्वारा पार्थव अधिराज ओरोड़ीज तथा आर्तबानस III के सिक्कों को पुनर्लांछित कराया जाना इसका स्पष्ट प्रमाण है।

उसकी महत्वपूर्ण विजयों में काबुल घाटी से अंतिम यवन शासक हर्मियस को अपदस्थ करना तथा शकवंशी एजेज़ II के हाथों तक्षशिला छीनना शामिल हैं। चरक्स के इसीडोर के विवरण और फिलोस्ट्रेटस के वर्णनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रमाणित करना है कि काबुल घाटी और गांधार क्षेत्रों पर पह्लव (गोण्डोफ़र्नीज़ का) शासन स्थापित हो चुका था। चीनी इतिहासकार फान–ये भी कुषाणों के पूर्व इस क्षेत्र पर पह्लवों के अधिकार की पुष्टि करता है। कुषाण सरदार कुजुल कदफिस ने प्रथम शती ई0 में यहाँ अपना राज्य क़ायम कर लिया था।

शकों के गांधार प्रान्त पर भी गोण्डोफ़र्नीज़ का अधिकार पेशावर स्थित तख़्त–ए–बाही से प्राप्त वर्ष 103 के उसके अभिलेख से प्रमाणित है। इस क्षेत्र में एजेज़ II के सैन्य अधिकारी अस्पवर्मा के सिक्कों पर स्वामिभक्ति का स्थानान्तरण भी शकों पर पह्लवों के विजय की सूचना देता है। अस्पवर्मा पहले शक एजेज़ II का सेनापति था जिसने गोण्डोफर्नीज़ के विजयी होने पर उसके पदाधिकारी के रूप में अपनी सेवाओं और स्वामिभक्ति का समर्पण कर दिया।

गोण्डोफ़र्नीज़ के सिक्कों पर भतीजे अब्दगेसीज़ को भी सहशासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मौद्रिक साक्ष्यों से ही अन्य प्रान्तीय शासकों के रूप में सपादान और सतवस्त्र के नाम भी ज्ञात होते हैं। सपादान और सतवस्त्र ने गोण्डोफर्नीज़ के शासन काल में ही लगभग स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर ली थी जो उनकी 'महाराज' और 'राजाधिराज' उपाधियों से इंगित होता है।

गोण्डोफर्नीज़ ने 20 ई0 से 46 ई0 के मध्य शासन किया। ईसाई अनुश्रुति के अनुसार उसके शासन के दौरान सेन्ट टॉमस नामक ईसाई धर्म प्रचारक भारत आया था जो उसे संपूर्ण भारत का राजा बताता है। पार्थियन शासकों के सिक्कों

पर ध्रमिकस उपाधि उनके महान धार्मिक व्यक्तित्व का संकेत करती है। संभव है कि वे भी बौद्ध धर्म से प्रभावित हुए तथा बौद्ध बन गए। गोण्डोफ़र्नीज़ को निर्विवाद रूप से भारत के पह्लव शासकों में महानतम कहा जा सकता है। उसने भी शकों की भाँति अपने राज्य को प्रान्तपालों या उपराजाओं के बीच बाँटकर व्यवस्थित और विकेन्द्रीकृत शासन का अनुपालन किया। दिग–दिगन्तर की विजयों ने उसे अपने समय का सबसे शक्तिशाली राजा बना दिया था।

तक्षशिला से प्राप्त मुद्राभंडार में गोण्डोफ़र्नीज़ के सिक्कों की कुषाण शासक विम कदफिस के सिक्कों के साथ उपस्थिति से पता चलता है कि कुषाणों ने पंजाब के पश्चिमी हिस्सों से पह्लवों को अधिकारच्युत कर दिया था। सिक्कों के प्रमाण से पता चलता है कि गोण्डोफ़र्नीज़ के साम्राज्य का विस्तार पंजाब से लेकर काबुल घाटी कन्दहार व सीस्तान तक था। तक्षशिला इस साम्राज्य की राजधानी बनी। गोण्डोफ़र्नीज़ के उत्तराधिकारियों में पकोरिस और अब्दगेसस के नाम निश्चित रूप से ज्ञात हैं। कुषाणों द्वारा सत्ताच्युत किए जाने के बाद भी ऐसा लगता है कि वे एक कबीलाई शक्ति या जातिगत समूह के रूप में भारत के पश्चिमी हिस्से में दूसरी शताब्दी ईस्वीं तक बने रहे।

14.5 सारांश

पूर्वी ईरान एवं भारत के मध्य दूसरी शताब्दी ई.पू. से प्रथम शताब्दी ई.पू. के बीच शक–पहलव मिश्रित जाति के अनेक केन्द्र एवं उपकेन्द्र स्थापित हो गये। जहां से भारत के पश्चिमी सीमा पर निरन्तर आक्रमण होते रहे। प्रथम ई.पू. शको के मूल पहलव वंश स्थिल हो गया और यहां पहलव सरदार जो ईरानी पार्थियन अधिराज्यों के प्रान्तीय शासक थे। स्वन्त्रत रूप से शासन करने लगें।

14.6 बोध पश्न

1. पह्लव कौन थे ? भारत के प्राचीन इतिहास में पह्लवों का स्थान सुनिश्चित करें।
2. वोनोनीज़ और गोण्डोफर्नीज़ के नायकत्व में पह्लव शक्ति के विस्तार का चरणबद्ध विकास प्रस्तुत करें।

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन

2. सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्रचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
3. रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस
4. सिंह, रामवृक्ष, 2005–2008 (आठवाँ संस्करण) प्राचीन भारत, भाग–1, इलाहाबाद, स्टूडेन्ट्स फेन्ड्स

इकाई–15 कुषाण वंश

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 साक्ष्य

15.3 प्रारंभिक इतिहास

15.4 कुजुल कैडफिसेज़

15.5 विम कैडफिसेज़

15.6 कनिष्क

15.6.1 युद्ध व विजयें

15.6.1.1 मध्यदेश की विजय

15.6.1.2 उत्तरापथ तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की विजय

15.6.1.3 पश्चिमी भारत

15.6.1.4 दक्षिण भारत

15.6.1.5 बैक्ट्रिया तथा भारतीय सीमा के परे

15.6..6 साम्राज्य का विस्तार

15.6.7 शासन प्रबंध

15.6.8 बौद्ध धर्म

15.6.9 गांधार एवं मथुरा कला

15.6.10 गांधार कला केंद्र

15.6.11 मथुरा कला

15.7.1 कनिष्क का मूल्यांकन

15.7.2 कनिष्क के उत्तराधिकारी

15.7.3 वासिष्क

15.7.4 कनिष्क द्वितीय

15.7.5 वासुदेव

15.8 कुषाणो का पतन

15.9 सारांश

15.10 बोध प्रश्न

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.0 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को स्थायी रूप से आकारित करने वाले राजनैतिक वंशों में कुषाणों का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखा जाता है। मध्य एशिया में चीन की पूर्वी सीमा पर निवास करने वाली अनेक जातियों में कुषाणों के कबीले यु–ची का भी परिगणन किया जाता है जिनके प्रारंभिक इतिहास की जानकारी हमें चीनी स्रोतों से प्राप्त होती है। भारत में स्थायी रूप से निवास एवं शासन करने के क्रम में कुषाण शासक न मात्र भारतीय साहित्यिक साक्ष्यों व अन्य स्रोतों में स्थान पाने लगे वरन् संस्कृति के विविध रूपों के उन्नायक और प्रारंभकर्ता भी बने।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- भारतीय संस्कृति विभिन्नपक्षो–कुषाणों का राजनीतिक इतिहास के विषय में।
- कुषाण वंश की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विषय में।
- कुषाण आक्रमण से भारतीय संस्कृति के प्रभावों के विषय में।

15.2 साक्ष्य

कुषाणों का इतिहास दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, भारत में निवास के पूर्व विस्थापन और प्रव्रजन काल का इतिहास और दूसरा, साम्राज्य स्थापना के बाद का इतिहास। प्रारंभिक इतिहास के स्त्रोतों के रूप में हम

(i) सू–मा–शियन के वर्णन

(ii) पान–कू लिखित सिएन–हान–शू

(iii) फान–ए लिखित हाऊ–हान–शू

(iv) गोण्डोफर्नीज़ के तख़्त–ए–बाही अभिलेख

(v) कुजुल व विम कदफिसस के बहुसंख्यक सिक्के।

इन साक्ष्यों के माध्यम से हम यू–ची जाति के प्रारंभिक दो शासकों और उनकी कबीलाई राजनैतिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इनके स्थायी राजनैतिक जीवन और उपलब्धियों का प्रमाण हमें कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों के बहुसंख्यक लेखों–सिक्कों से प्राप्त होता है। तिब्बती व संस्कृत बौद्ध ग्रंथों, चीनी यात्री फाहियान एवं ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तान्तों और तक्षशिला तथा बेग्राम की पुरातात्विक खुदाइयों से भी कुषाण–इतिहास की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जाती हैं।

15.3 प्रारंभिक इतिहास

विविध स्रोतों से उपलब्ध जानकारी के आधार पर कुषाणों का विस्तृत इतिहास संक्षेप में अधोलिखित रूप में समझा जा सकता है।

174 से 165 ई0पू0 के मध्य चीनी इतिहास सू–मा–शियन की सूचनानुसार ही कुषाणों की जाति यू–ची या यू–ची, चीन के दक्षिण–पश्चिम में तुंग–हुअंग प्रदेश तथा थिएन–शान पर्वतमाला के बीच इसिकुल झील के दक्षिण–पूर्व में निवास करती थी। उन्हें कान–सू या निंग–सिया का निवासी बताया गया है। 165 ई.पू. में चीन की उत्तरी सीमा के प्रदेशों से हिंग–नू जाति ने यू–ची जाति को आक्रान्त और विस्थापित किया जिसके कारण उन्हें दक्षिण–पश्चिम में बसे वू–सुन जाति के द्वारा आवारित इली नदी–घाटी प्रान्त को आक्रान्त करना पड़ा। वू–सुन जाति ने भाग कर हिंग–नू लोगों से शरण माँगी और उनकी सहायता से अपने प्रदेश पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिया। यू–ची इस स्थान से हटकर दो शाखाओं में विभक्त होकर आगे बढ़े। एक शाखा तिब्बत की सीमा पर बस गई और लघु यू–ची कहलाई जबकि मुख्य यू–ची शाखा पश्चिम की ओर सरदरिया क्षेत्र में बसी सई (शक) जाति पर टूट पड़ी। शकों का विस्थापन हुआ और वे आमू दरिया क्षेत्र की ओर बस गए किंतु शीघ्र ही वू–सुन ने सरदरिया में बसे यू–ची को पुनः आक्रान्त किया जिसका प्रभाव आमू दरिया के शकों पर पड़ा क्योंकि यू–ची सर दरिया से हटाए जाने पर पुनः शकों पर टूट पड़े। आमू–दरिया शकों के अधिकार से निकल गया और इस क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर ता–हिया अथवा बैक्ट्रिया यू–चियों का पहला सुस्थापित केन्द्र बना। आमू दरिया

अथवा ऑक्सस के दोनों और अपना पैर पसारते हुए यू–चियों की पाँच शाखाएँ यहाँ बसीं और स्थाई राजनैतिक जीवन में प्रवृत्त हुईं। सुग्ध या सोग्डियाना (बोखारा, उज़बेकिस्तान) उनकी राजधानी बनी।

15.4 कुजुल कैडफिसेज़

चीनी इतिहासकार पान कू के अनुसार प्रथम शती ई. में यू–ची जाति का स्थायी जीवन और व्यवस्थित राजनीति संरचना से परिचय हो चुका था। ता यू ची अथवा बैक्ट्रिया–सोग्डियाना के यू–ची पाँच कबीलों में संगठित थे जिनमें कुई–शुआंग कबीले के सरदार (यब्गू/यवुग) कदफ़िसेज़ प्रथम या कुजुल कदफिसेज़ ने अन्य चारों क़बीलों को एकजुट कर कुषाण साम्राज्य की नींव रखी। इसके पूर्व करीब सौ वर्ष पहले संभवतः मियाउस या एराउस द्वारा कुई–शुआंग कबीले की स्थापना की गई थी। परवर्ती हान राजवंश के इतिहासकार फान–ये के इतिहास में कुजुल को पार्थिया, काबुल और कीपिन (कपिशा) पर अधिकृत बताया गया है। भारतीय उपमहाद्वीप में कुजुल के द्वारा ही साम्राज्यवादी कुषाणों का प्रवेश संभव हुआ। उसके सिक्के हिंदुकुश के दक्षिण से मिलते हैं जिन पर 'घ्रम ठिड संच ध्रम ठिड' अंकित मिलता है। यह उसके बौद्ध धर्म के प्रति आस्थावान होने की सूचना देता है। मौद्रिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि प्रारंभ में उसने काबुल के यवन शासक हर्मियस के साथ अप्रमुख या हीन सह–शासक के रूप में शासन किया क्योंकि काबुल से प्राप्त सिक्कों पर पृष्ठ भाग में खरोष्ठी लिपि में उसका नाम अंकित है जबकि अग्रभाग पर यूनानी लिपि में 'राजाधिराज हर्मियस' का अंकन मिलता है। पह्लव गोण्डोफ़र्नीज के द्वारा काबुल से हर्मियस के उच्छेदन के बाद कुजुल कदफिसेज़ ने हिंदुकुश के दक्षिण में स्वतंत्र–स्वायत्तशासी राजा की भूमिका ग्रहण की।

फान–ये के अनुसार उसने 80 वर्ष से अधिक की उम्र तक शासन किया। संभवतः 15 ई. से 60 ई. के मध्य उसकी शासनावधि रही होगी।

15.5 विम कैडफिसेज़

साम्राज्यवादी कुषाणों का अगला राजा विम कदफिसेज़ हुआ जिसने पिता के साथ शासन में भाग लेते हुए गांधार क्षेत्र को पह्लव अधिकार से छीनकर कुषाण साम्राज्य का हिस्सा बना दिया। फान–ये के अनुसार 'कुजुल का पुत्र 'येन–काओ–चेन' उसका उत्तराधिकारी बना जिसने तिएन–चाऊ (गांधार प्रदेश) की विजय की और अपने गवर्नर के हाथों उसका शासन व्यवस्थित किया।' मौद्रिक साक्ष्यों से हमें कुजुल के बाद विम के शासन की सूचना प्राप्त होती है इस आधार पर 'येन–काओ–चेन' को विम से तथा विम कदफिसेज़ को कुजुल कदफिसेज़ के पुत्र से समीकृत किया जा सकता है।

विम की भारतीय क्षेत्रों की विजय ने भारत, चीन और रोम के बीच व्यापारिक संभावनाओं को उन्मुक्ताकाश दे दिया। भारतीय रेशम, हीरे–जवाहरात और मसालों के बदले रोमन स्वर्ण का भारत में आगमन होने लगा। इसी कारणवश विम कदफिसेज ने रोमन 124 ग्रेन के सोने के सिक्कों की नकल पर कुषाण स्वर्ण सिक्के जारी किए। उसके स्वर्ण और ताम्र द्विमाजी सिक्कों के पृष्ठ भाग में खरोष्ठी में 'महरजस रजदिरजस सर्वलोग ईश्वरस महिश्वरस वीम कथफिसस त्रतरस' का लेख और त्रिशूल–परशुधारी द्विभुजी शिव का अंकन उसे शैव मतावलम्बी सिद्ध करते हैं। अपने पिता के दीर्घजीवन और लंबे शासन के कारण विम का शासन काल संभवतः 60 ई. से 78 ई. के मध्य रखा जा सकता है। सिक्कों की प्राप्ति बताती है कि उसका शासित क्षेत्र पश्चिम में वंक्षु घाटी से लेकर पूर्व में सिंध तक व्यापक था। उसके कुछ सिक्के भीटा, कौसाम्बी और बसाढ़ से भी मिलते हैं।

15.6 कनिष्क

भारत में कुषाण सम्राट कनिष्क का इतिहास जितना उज्जवल है उसके सिंहासन प्राप्त करने का प्रसंग उतना ही अंधकारमय। यह निश्चितरूपेण ज्ञात नहीं कि कनिष्क का अपने पूर्ववर्ती कुषाण शासक विम कदफिसेज़ अथवा तक्षशिला के कुषाण गवर्नर 'सोटर मेगस' से क्या संबंध था! विम के बाद हमें तक्षशिला से सोटर मेगस नामांकित सिक्के मिलते हैं जिसने संभवतः विम के अंतिम दिनों में अपने को स्वतंत्र कर लिया था। कनिष्क के सिंहासन पर अधिकार के साथ ही उसकी स्वतंत्रता जाती रही। किन्तु कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि–परिस्थिति कुषाण वंश क्रम में उसका स्थान तथा कुषाणों के साथ वास्तविक संबंधों पर अभी भी स्पष्टता का अभाव है। हालिया शोधों के आलोक में कनिष्क को शक संवत् का प्रवर्तक माना जाता है जिसके अनुसार उसके सत्ता प्राप्त करने की घटना 78 ई. रही होगी। शैखान ढेरी (पेशावर) से प्राप्त कुषाण कालीन अवशेषों की कार्बन डेटिंग के आधार पर अहमद हसनदानी ने कनिष्क की तिथि प्रथम शती ई. में ही निर्धारित की है। वह मुख्यतः बौद्ध धर्मावलम्बी था किन्तु सम्राट के रूप में अपने शासित क्षेत्र के लगभग सभी धर्मों और धार्मिक विश्वासों को पल्लवित करता रहा।

कनिष्क के इतिहास के विषय में हमारी जानकारी उसके राज्य वर्ष 1 से 23 के मध्य निर्गत अभिलेखों; भारत में समस्त मध्यदेश, उत्तरापथ और पश्चिम देश तथा भारत के बाहर चीनी तुर्किस्तान और अफ़गानिस्तान से प्राप्त सिक्कों; तक्षशिला के पुरातात्विक प्रमाणों के तुलनात्मक अध्ययन; बौद्ध ग्रन्थों, चीनी यात्रियों, इतिहासकारों (हवेनसांग और फान ये आदि) के लेखन आदि पर

निर्भर करती है। चीनी ग्रंथों में कनिष्क के वंशधर, वासुदेव को ता–यू–ची (मुख्य यू–ची) का शासक बताया गया है अतः निस्संदिग्ध रूप से कनिष्क भी मुख्य यू ची वंश से संबंध रखता था।

15.6.1 युद्ध व विजयें

कनिष्क ने भरत की सीमाओं के भीतर पूर्वी भारत में कम से कम पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार को अधिकृत कर लिया था। पूर्वी मालवा की हीरे की खदान पर अधिकार के लिए तथा उससे व्यापारिक मुनाफ़ा कमाने के लिए कनिष्क ने निचली सिंधु घाटी क्षेत्र और मालवा पर भी अपना अधिकार स्थापित किया। अफ़गानिस्तान में सीस्तान (ईरान से सटा पश्चिमी अफ़गानी क्षेत्र) को छोड़कर कनिष्क के साम्राज्य में शेष अफ़गानिस्तान पूर्णतः समाहित था। उसका राज्य क्षेत्र चीनी तुर्किस्तान तक और म. एशिया में ऑक्सस के उत्तरी हिस्सों तक फैला हुआ था।

15.6.2 मध्यदेश की विजय

कनिष्क के दूसरे, तीसरे और चौथे संवत्सर में जारी किए गए अभिलेख क्रमशः कौसाम्बी, सारनाथ और मथुरा से मिले हैं। इनसे प्रमाणित होता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश पर उसका अधिकार शासन के प्रारंभिक दिनों से ही मज़बूत था। सारनाथ बोधिसत्व प्रतिभा लेख से इस क्षेत्र से संबद्ध महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर के नाम भी मिलते हैं। यद्यपि इनके प्रशासनिक गठन और उत्तरदायित्वों की अधिक जानकारी नहीं है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि कनिष्क ने अपने पूर्ववर्ती विम कदफिसेज़ की राज्य–सीमा को मथुरा से विस्तीर्ण कर पूर्व में कम से कम उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा तक स्थापित कर दिया था। यहाँ खैराडीह के उत्खनन से कुषाणकालीन समृद्ध नगरी के साक्ष्य मिले हैं। उसके बहुसंख्य सिक्के श्रावस्ती (105 कुषाण मुद्राओं का संग्रह), बक्सर, वैशाली, कुम्रहार और उसके भी आगे ताम्रलिप्ति, महास्थान और उड़ीसा के विभिन्न स्थलों यथा मयूरभंज, पुरी, गंजाम आदि से मिलते हैं। यद्यपि बंगाल और उड़ीसा तथा बिहार के आंतरिक हिस्सों तक हम उसके प्रत्यक्ष शासन को निस्संदिग्ध रूप से प्रमाणित नहीं कर सकते संभव है यहाँ ये सिक्के व्यापार या किसी अन्य संबंध से पहुँचे हों। श्री धर्मपिटक निदान सूत्र से उसके पाटलिपुत्र पर आक्रमण और फिरौती में बौद्ध विद्वान अश्वघोष की माँग का प्रसिद्ध प्रकरण संरक्षित है। अतः यदि सिक्कों की विशद् प्राप्ति को व्यापारिक प्रसार का परिणाम मानें तो भी पाटलिपुत्र तक उसके प्रत्यक्ष आक्रमण और तद्नुरुप प्रभाव–निर्माण को वास्तविक एवं प्रामाणिक घटना मानने में कोई आपत्ति नहीं है। तिब्बती बौद्ध ग्रंथ साकेत (अयोध्या–फैजाबाद) के राजा पर कनिष्क की विजय की जानकारी

देते हैं तथा कौशाम्बी से उसकी मुहर की प्राप्ति यहाँ उसके प्रत्यक्ष शासन का प्रमाण है।

15.6.3 उत्तरापथ तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की विजय

कनिष्क ने लगभग संपूर्ण अफ़गानिस्तान और कश्मीर को कुषाण साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। निचली सिंधु घाटी में सुई विहार से प्राप्त कनिष्क संवत्11 का अभिलेख इस क्षेत्र पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। इसी वर्ष पेशावर में जद्दा नामक नगर से भी एक लेख प्रकाशित करवाया गया। संवत् 18 का एक अन्य अभिलेख रावलपिण्डी स्थित मणिक्याल से प्राप्त होता है। जेद्दा और मणिक्याल क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी गांधार में स्थित हैं। उपर्युक्त दोनों अभिलेख कुषाणों के प्रांतीय पदाधिकारियों का उल्लेख करते हैं जिनसे यहाँ कनिष्क का अधिकार प्रमाणित होता है। उसकी राजधानी पेशावर थी जहाँ के प्रसिद्ध तेरह मंजिला स्तूप और विहार का उल्लेख चीनी यात्री सुंग–युन, ह्वेनसांग व अरब इतिहासकार अलबेरुनी भी करते हैं। पेशावर के समीप शाह जी की ढेरी से प्राप्त स्वर्ण–मंजूषा लेख में खरोष्ठी लिपि में महाराज कनिष्क द्वारा विहार निर्माण का तथ्य प्रतिपादित है। राजतरंगिणी से कश्मीर में उसके द्वारा निर्मित कनिष्कपुर नगर की सूचना प्राप्त होती है। कश्मीर के कुण्डलवन में ही कनिष्क ने चौथी बौद्ध संगीति आहूत की थी जो उत्तरापथ पर उसके अधिकार का प्रमाण है। पंजाब के चीनभुक्ति प्रदेश में उसने चीनी राजकुमारों को बंधक बनाकर रखा था।

15.6.4 पश्चिमी भारत

सिंधु घाटी के पूर्व में निचली सिंधु घाटी, दक्षिणी राजस्थान, मालवा का पूर्वी हिस्सा तथा गुजरात–काठियावाड़ के क्षेत्र शक–क्षत्रपों और महाक्षत्रपों के द्वार शासित थे। जो संभवतः कनिष्क की अधीनता मानते थे। कनिष्क के मरणोपरान्त उन्होंने स्वायत्तशासी होकर शासन करना प्रारंभ कर दिया। इन क्षत्रप वंशों में क्षहरातों और कार्दमकों का इतिहास बताता है कि इन्होंने अधीनस्थ सरदारों की भूमिका से उठकर स्वतंत्र सत्ता प्राप्त की थी। रूद्रदामन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। वस्तुतः क्षत्रप या महाक्षत्रप पद का अधिकतम उपयोग कुषाणों द्वारा ही अपने प्रान्तों की सुचारु व्यवस्था के हितार्थ किया जाता रहा।

15.6.5 दक्षिण भारत

दक्षिण की ओर कनिष्क की राज्य सीमा का विस्तार विंध्य–पर्यन्त था। साँची से वर्ष 22 का एक अभिलेख 'राजा वसु' कुषाण का उल्लेख करता है जो पूर्वी मालवा का कनिष्क के द्वारा नियुक्त प्रशासक रहा होगा। यहीं से वासिष्क

का सं. 28 का एक अन्य लेख मिला है जो कुषाण अधिकार का प्रमाण है। कनिष्क के समय ही समस्त मालवा के ऊपर कुषाणों ने अधिकार कर लिया था क्योंकि यहाँ की हीरे की खानों का उपयोग कुषाणों की साम्राज्यवादी विस्तार की मंशा के लिए आवश्यक था।

15.6.6 बैक्ट्रिया तथा भारतीय सीमा के परे

अफ़गानिस्तान पर कुषाणों का अधिकार कुजुल के समय से ही शुरु हो गया था जो कनिष्क के समय भी अविच्छिन्न ही रहा। बैक्ट्रिया से प्राप्त 'चन्द्र कनिष्क' नामांकित पांडुलिपि 'बहलक' (बैक्ट्रिया) पर उसके अधिकार का प्रमाण है।

बैक्ट्रिया के पश्चिम में स्थित पार्थिया के साथ भी कुषाणों का संबंध अमैत्रीपूर्ण ही था। पार्थिया के शासकों की मंशा पूर्व दिशा में अपनी सीमा के विस्तार और सुरक्षा को लेकर पर्याप्त आक्रामक रही होगी जैसा चीनी स्रोतों से स्पष्ट है। चीनी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि पार्थिया (नान सी) के राजा के आक्रमण को कनिष्क ने सफलता पूर्वक रोक दिया और अपने साम्राज्य को सुरक्षित कर लिया था।

कनिष्क का संघर्ष चीन के साथ होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। चीन के हानवंशी शासन में मंत्रिपद की शोभा बढ़ाने वाले सेनापति पान–छाओ ने अपने सम्राट के आदेश पर पूर्व के प्रदेशों की विजय की महत्वाकांक्षी योजना बनाई। उसने 73 ई. के बाद कभी खोतन, काशगर आदि जीत लिए और कनिष्क के निकट आ पहुँचा। संकट भाँप कर कनिष्क ने दूत भेजकर पान–छाओ और हान–शासन की योजना समझने का प्रयास किया लेकिन यह प्रयास सफल न सिद्ध हुआ और कनिष्क को युद्ध के लिए सन्नद्ध होना पड़ा। उल्लेखनीय है कि कनिष्क का यह अभियान आक्रान्ता का था न कि आक्रान्त का। उसने चीन के विरूद्ध अभियान किया जिसमे पान–छाओ के हाथों उसकी पराजय हुई फिर भी कनिष्क की महत्ता इस बात में रही कि उसने युद्ध भारतीय भू–क्षेत्र में नहीं वरन् उत्तर के मैदानों में लड़ा। विजित शासक ने कनिष्क को प्रतिवर्ष कर देने के लिए विवश किया।

शीघ्र ही कनिष्क ने इस पराजय का प्रतिशोध ले लिया। ह्वेनसांग से ज्ञात होता है कि कनिष्क का अधिकार सुंग–लिन पर्वत के उत्तरी प्रदेशों तक विस्तृत था तथा उसने चीनी राजकुमारों को अपने बंधक के रूप में अपने दरबार में रखा। इन राजकुमारों को गर्मी में कापिश देश, सर्दी में पेशावर और बरसात में पूर्वी पंजाब में रखने की व्यवस्था थी। इन राजकुमारों ने अपने बंधक–काल

का भी आनन्द उठाया और भारत में नाशपाती और आड़ू की खेती शुरु की। कनिष्क का अधिकार काशगर, यारकंद और खोतन के प्रदेशों पर बना रहा।

इन तमाम विजयों और राजनैतिक–कूटनीतिक संबंधों के कारण कनिष्क ने एक वैश्विक साम्राज्य का निर्माण किया जिसमें मध्य–एशिया के अनेक क्षेत्र समाहित थे। उसकी दूरदर्शितापूर्ण विजयों ने भारत और रोम के बीच की व्यापारिक बाधाओं को हटाकर प्रत्यक्ष व्यापार को बढ़ावा दिया। जिससे कुषाणों का समय भारतीय मौद्रिक इतिहास का 'स्वर्ण युग' बन गया।?

15.7.1 साम्राज्य का विस्तार

कनिष्क की विजयें उसे भारत के महानतम शासकों में स्थान दिलाती हैं। वह एक दूरदर्शी सम्राट था जिसने भारत और उसके बाहर भी अपनी सीमाओं को विस्तृत किया ताकि पूर्व–पश्चिम के बीच व्यापारिक संबंधों को मज़बूत किया जा सके। कनिष्क की सीमाएँ कश्मीर से विंध्य पर्वत तक और उत्तरी अफगानिस्तान से पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक विस्तृत थीं। उसका साम्राज्य वास्तविक अर्थों में भारत का प्रथम अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्य कहा जा सकता है। कनिष्क के विभिन्न अभिलेखों और मुद्राओं की प्राप्ति उसके अपने राज्य क्षेत्र पर दृढ़ अधिकार का प्रमाण है। पेशावर इस साम्राज्य की राजधानी थी।

15.7.2 शासन प्रबंध

कनिष्क की उपाधियों से उसके शासन प्रबंध के विषय में कुछ सूचना अवश्य मिलती है। यद्यपि इस विषय पर जानकारी का कोई पृथक स्रोत नहीं है किंतु प्राप्त संक्षिप्त उपाधि–लेख उसके शासन में क्षत्रप प्रणाली तथा केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के विषय में बताते हैं। लेखों में उसे महाराजाधिराज तथा देवपुत्र कहा गया है। जो केन्द्रीय सत्ता की असीम शक्तियों का परिचायक है। कनिष्क ने सामन्ती प्रणाली को अपने विस्तृत शासन के उचित प्रबंधन के लिए लागू किया। यद्यपि क्षत्रपी या सामंती व्यवस्था इसके पूर्व ही शकों के समय प्रारंभ हो चुकी थी किन्तु कनिष्क ने कुषाण साम्राज्य के लिए भी उसी प्रशासकीय व्यवस्था को अपनाया। अभिलेखों से हमें साम्राज्य के पूर्वी हिस्सों पर महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर के अधिकार का प्रमाण मिलता है। महाक्षत्रप और क्षत्रप विभिन्न आकार के क्षत्रपियों के प्रधान के लिए प्रयुक्त संबोधन था। अभिलेखों से यह भी अनुमान होता है कि अधिकांश क्षत्रप या महाक्षत्रप विदेशी उत्पत्ति के होते थे जिनकी योग्यता प्रमाणित होने पर पद को आनुवांशिक भी किया जा सकता था। प्रादेशिक प्रशासन में दुहरी शासन प्रणाली या दो क्षत्रपों के सहशासन की भी जानकारी मिलती है। साम्राज्य 'विषय' या 'भुक्तियों' में

विभाजित होते थे जो क्षत्रपों या महाक्षत्रपों द्वारा शासित होते थे। कुछ प्रमुख क्षत्रपियों में मथुरा, वाराणसी, कपिशा तथा तक्षशिला के नाम उल्लेखनीय हैं।

केंद्र में सम्राट का शासन चलता था। कुषाणों में चीनी शासकों के अनुकरण पर शासक को असीमित अधिकार प्रदान किए थे। मृत शासकों के मंदिरों के निर्माण की परंपरा संभवतः रोमन शासकों से अनुकृत थी। शासकों के लिए प्रयुक्त 'महाराजधिराज' या 'षाहिषाहानुषाहि' उपाधियाँ अधीनस्थ शासकों के ऊपर सम्राट की सार्वभौमिक स्थिति को प्रमाणित करती है। सम्राट की सलाहकारी परिषद् का गठन कितने मंत्रियों से हुआ था जानने के लिए पर्याप्त जानकारी का अभाव हैं, किंतु अभिलेखों में 'महादण्डनायक' या 'दण्डनायक' का पद निश्चित रूप से सैन्य–अधिकारियों के सर्वोच्च पद का भान कराता है। 'ग्राम', प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी जिसका अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। राजस्व वसूली एक नियमित प्रक्रिया थी जिसे ग्रामिक से लेकर क्षत्रप पर्यन्त प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से एकत्रित कर राजकोष में जमा किया जाता था।

15.7.3 बौद्ध धर्म

भारत की स्मृति में कनिष्क का नाम उसके विशाल साम्राज्य या वैश्विक उपस्थिति से अधिक बौद्ध धर्म के महान संरक्षक के रूप में सुरक्षित है। उसकी नव–नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने अनेक नवीन द्वार खोले जिनसे होकर परंपरागत बदलावों को भारतीय समाज में प्रवेश मिला। महायान संप्रदाय को सर्वोच्चता, बुद्ध का मूर्ति रूप में अंकन आदि कुछ ऐसी ही महत्वपूर्ण, युगान्तकारी घटनाएँ थीं। कनिष्क का रूझान बौद्ध धर्म के प्रति था और बौद्ध अनुश्रुतियों में उसके बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा को अशोक के समान 'दीक्षा–कथानक' में कहा गया है। इन कथाओं की ऐतिहासिकता यद्यपि संदिग्ध है। किंतु पुरातात्विक स्रोतों से प्रमाणित विचारों को निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

कनिष्क के सिक्कों और पेशावर लेख से पता चलता है कि उसने बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए पेशावर में बुद्ध की अस्थियों पर चैत्य का निर्माण करवाया। चीनी, तिब्बती और मंगोलियाई स्रोतों में उसे बौद्ध धर्म की संगीति करवाने का श्रेय दिया गया है जो कश्मीर के कुण्डलवन में सपंन्न हुई। संगीति की अध्यक्षता वसुमित्र ने की और अश्वघोष संगीति के उपसभापति नियुक्त हुए। पूरे देश से आमंत्रित 500 बौद्ध विद्वानों के साथ धर्म के मूल सिद्धान्तों को बिना किसी दुविधा के ग्रहण किया जाए इसके लिए त्रिपिटकों की महान टीका 'महाविभाषा' तैयार हुई जिसे ताम्रपत्रों पर लिखवा कर स्तूप में सँजो दिया गया। संगीति के बाद कनिष्क ने चीन और मध्य एशिया में धर्म प्रचारक मंडल भी भेजे।

कनिष्क ने बौद्ध धर्म की जिस मान्यता के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया था, वह महायान शाखा थी। महायान भक्ति और करूणा प्रधान बौद्ध विचार था जिसकी प्रेरणा से मूर्ति पूजा और बौद्ध प्रतिमा शास्त्र आदि का आविर्भाव हुआ। निश्चित रूप से महायान के उदय को हम समकालीन धर्म और समाज के विभिन्न घटकों के प्रति बौद्ध धर्म की सचेतन प्रतिक्रिया कह सकते हैं। साथ में कनिष्क द्वारा महायान को प्रश्रय देना और कश्मीर में चौथी संगीति के आयोजन द्वारा महायान के सिद्धान्तों को जनता के बीच सुलभ कराना भी इस विचारधारा के विकास के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं रहे होंगे। प्रथम शताब्दी ई. तक महायान अपने पूर्ण सैद्धान्तिक स्वरूप को प्राप्त कर चुका था।

15.7.4 गांधार एवं मथुरा कला

महायान के वर्चस्व ने साहित्य और कला जैसी रचनात्मक विधाओं पर भी अपना प्रभाव छोड़ा। वस्तुतः कुषाण काल की आर्थिक समृद्धि ने अपने समय को हर रूप में उद्वेलित किया था। साम्राज्य का नवीन स्वरूप, नवीन मुद्रा प्रणाली और शासन का नवीन उत्साह सबने सम्मिलित रूप से धार्मिक कला को नए प्रसंग गढ़ने में सहायता पहुँचाई जिसका परिणाम पश्चिम में गांधार और पूर्व में मथुरा कला केन्द्रों की स्थापना के रूप में हमारे सामने है।

कनिष्क की राजधानी पेशावर के 13 मंज़िला और 400 फीट ऊँचे स्तूप के अलावा भी कनिष्कपुर (कश्मीर) और सिरकप (तक्षशिला) जैसे नगरों की स्थापना भव्य भवनों के साथ हुई होगी। किंतु कला के क्षेत्र में वास्तविक रचनात्मक प्रयोग कुषाण साम्राज्य के पश्चिमी और पूर्वी केंद्रों में क्रमशः गांधार क्षेत्र और मथुरा क्षेत्रों में हुए।

15.7.5 गांधार कला केंद्र

पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी अफगानिस्तान में गाधार क्षेत्र में विकसित कला गांधार कला के रूप में प्रसिद्ध हुई। गांधार क्षेत्र एक विविध सांस्कृतिक संरचना वाला क्षेत्र था। यहाँ ईरानी–ग्रीक–रोमन–मध्य एशियाई तथा भारतीय सांस्कृतिक तत्व ऐसे घुले–मिले थे जिससे 'कॉस्मोपॉलिटन' शहरी संस्कृति का स्वरूप प्रधान रूप से उभर कर दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध विषय चूँकि अंकन का आधार रहे अतः समग्रतः यहाँ विकसित कला ग्रीको बुद्धिस्ट, ग्रीको–रोमन या इण्डो–ग्रीक कहलाई।

गांधार कला की विषय वस्तु बौद्ध धर्म और विशेषतः बुद्ध के जीवन दृश्यों

तथा बोधिसत्व की प्रतिमा–अंकन पर केंद्रित है। बुद्ध अतिमानवीय रूप में अंकित हैं। उनके चेहरे का भाव भारतीय तो वस्त्र–अलंकरण यूनानी परंपरा से है। मूर्तियाँ इस क्षेत्र से प्राप्त काले–स्लेटी पत्थर, चूने और पकी मिट्टी (स्टक्को) से निर्मित हैं। गांधार कला के नमूनों को लाहौर और पेशावर संग्रहालयों में संरक्षित किया गया है।

गांधार कला की विषय वस्तु बुद्ध के जीवन–दृश्यों (जन्म, महाभिनिष्क्रमण, ज्ञान–प्राप्ति, धर्मचक्र प्रवर्तन तथा निर्वाण प्राप्ति) से संबंधित है। अपने प्रभाव में ये मूर्तियाँ भारतीय जन मानस की संवेदना को स्पंदित करने में समर्थ हैं क्योंकि शिल्पकार भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों से अवगत जान पड़ता है। तपस्यारत बुद्ध के यथार्थ चित्रण में उभरी हुई पसलियाँ दिखाकर कलाकार ने जहाँ यूनानी कलादर्शों को अपनाया है वहीं क्लान्ति–हीन मुखभाव से भारतीय लक्षणा को अभिव्यक्त किया है। कुछ विशिष्ट गांधार प्रतिमा–चिह्नों में मूछों, मांसपेशियों, घुँघराले बालों जूतों और सादे प्रभामंडल का अंकन उल्लेखनीय है। सबसे जीवन्त वे वस्त्र हैं जिनका स्वाभाविक अंकन गांधार कला की मौलिक विशेषता है। भारी वस्त्र और उनकी चूनटें, अंगों के वास्तविक आकार–प्रकार को दिखाती हैं। मैत्रेय बोधिसत्व का प्रचुर अंकन मिलता है तथा अन्य देवी–देवताओं यथा हारीति, रोमा देवी और अवलोकितेश्वर पद्मपाणि आदि का भी निर्माण किया गया। उन्हें देखकर सहज ही यूनानी देवताओं का स्वरूप नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। इसी कारणवश गांधार कला के देशी संबंधों पर प्रश्न भी उठते रहते हैं। इसके विस्तृत प्रभाव को देखते हुए यह समझना कठिन नहीं होगा कि भारत के बाहर भारतीय उपनिवेशों में सांस्कृतिक समरसता की स्थापना में गांधार कला ने अपनी विशिष्ट भूमिका निभाई थी। जॉन मार्शल भारत में गांधार कला को चिरस्थायी प्रभाव वाला नहीं मानते क्योंकि उसकी आत्मा भारतीय नहीं वरन् यूनानी थी, किंतु यह स्मरणयोग्य है कि मध्य एशिया, मंगोलिया, चीन और कोरिया आदि में भारतीय बौद्ध कला की स्थापना का मुख्य कारण गांधार कला को ही माना जाता है।

15.7.6 मथुरा कला

एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में मथुरा का विकास उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण तीव्र गति से हुआ। उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम की ओर जाने वाले यात्रा–मार्गों के चौराहे पर स्थित मथुरा नगर छठी शती ई.पू. और उसके भी पहले राजनैतिक गुरुत्व का केन्द्र रह चुका था। आगे भी उस नगर को उसका अवस्थितिजन्य लाभ मिलना जारी रहा। कुषाणों ने नगर की क्षमता को देखते हुए इसे अपनी दूसरी राजधानी होने का मान दिया। कला के क्षेत्र में इन सभी

कारकों की छवि मूर्तमान देखी जा सकती है। मथुरा कला केन्द्र की गतिविधियों ने तत्कालीन धर्म और दर्शन के विकास में भी अपना अमूल्य योगदान दिया।

कुषाणों के शासक रहते, विशिष्टतः कनिष्क के शासन में गांधार और मथुरा दो महत्व के केन्द्रों का कलात्मक ध्रुवीकरण हो चुका था। गांधार क्षेत्र में बहूद्देशिक संस्कृतियों का मिलाप मूर्तिशिल्प के नवीन मानकों–आदर्शों के आधार पर मूर्तियों के निर्माण को प्रभावित कर रहा था जबकि मथुरा में गांधार कला क्रान्ति का भारतीय प्रत्युत्तर विद्यमान था। मथुरा की मूर्तियाँ पूर्णतः भारतीय आदर्शों, विश्वासों और आवश्यकताओं के अनुरुप निर्मित हो रही थीं।

कुषाणों के समय मथुरा और उसके आस–पास यथा भूतेश्वर, विदिशा आदि में भारतीय देवी देवताओं के नवीन विग्रह प्राप्त होने लगते हैं जो उस महान क्रान्ति का हिस्सा थे जिसके अंतर्गत लगभग सभी संप्रदायों के धार्मिक विश्वासों को मूर्त रूप में अभिव्यक्त किया जाने लगा। विशेषतः बुद्ध–बोधिसत्व और बुद्ध के जीवन के दृश्यों का अंकन भविष्य के लिए अतिशय उपादेय सिद्ध हुआ।

मथुरा के लाल चित्तीदार बलुए पत्थर को समीप की सीकरी की खदानों से प्राप्त कर मूर्तियों का निर्माण किया गया। एक कला केन्द्र के रूप में मथुरा का स्थान साँची, भरहुत और विदिशा से ऊँचा है क्योंकि यहाँ के शिल्पियों में कला की समझ अन्य की अपेक्षा बढ़ी हुई थी। विषय के स्तर पर यक्ष–यक्षी, नाग–नागिन से लेकर बोधिसत्व, बुद्ध और तीर्थंकर तथा शिव–विष्णु–सूर्य आदि के प्रतिमाशास्त्रीय गुणों का सम्यक् निरूपण और निर्वाह मथुरा से प्राप्त होता है। इस दृष्टि से कंकाली टीला, भूतेश्वर, तिकुली जैसे निकटवर्ती उपकेन्द्रों में जैन–ब्राह्मण संप्रदायों से संबंधित मूर्तियों तथा माट की देवकुल की मूर्तियों का अध्ययन विशेष रोचक है। वस्तुतः कुषाणों के पूर्व ही मथुरा के आस–पास कला की गतिविधियाँ पूरी मौलिकता के साथ संचालित हो रही थीं। कुषाणों विशेषकर कनिष्क ने अपने विस्तृत साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण माहौल में उन गतिविधियों को तीव्रतर किया जिसके पश्चात् मथुरा का विकास कला के मानद 'स्कूल' की भाँति होना तय था। यहाँ से लिंग और मानव रूप में शिव, वासुदेव, कृष्ण–बलराम और वैष्णव संप्रदाय के आराध्य गरुड़ासीन चतुर्भुजी विष्णु, लक्ष्मी–दुर्गा, सूर्य तथा अतुलित सौन्दर्यशालिनी नायिकाओं का उत्कीर्ण अंकन प्राप्त होता हैं। प्रारंभ में तीर्थंकर और बोधिसत्वों को लगभग एक समान आदर्श पर बनाते हुए शनैः–शनैः पृथक् रूपों में बनाया जाने लगा। बुद्ध की आसनस्थ प्रतिमाओं में अभय मुद्रा, उष्णीष, ऊर्ण और गजनख से अंकित प्रभामण्डल मथुरा की स्थानीय छाप के परिचायक हैं। लगभग एक ही समय पर उद्भूत् गांधार बुद्ध

और मथुरा बुद्ध के संबंध में विद्वानों में लंबा विवाद रहा है कि किस कला केन्द्र में बुद्ध का अंकन पहले हुआ। श्री वी.एस. अग्रवाल जैसे कला मर्मज्ञ अपने तर्कों के आधार पर मथुरा के समग्र कला–वातावरण को इसके लिए सर्वाधिक सशक्त प्रेरणा मानते हुए मथुरा बुद्ध को ही यह श्रेय प्रदान करते हैं। मथुरा में बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के पूर्व बोधिसत्व के रूप में बुद्धत्व की भावना को आत्मसात् किया गया तत्पश्चात् बुद्ध के प्रतिमा लक्षणों को विकसित किया गया। प्रतिमाओं पर अंकित तिथियों से भी इस विकास को देखा जा सकता है। गांधार कला केंद्र में भी मथुरा की प्रेरणा से ही बुद्ध के प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर बुद्ध का मानव स्वरूप में अंकन प्रारंभ हुआ होगा।

मथुरा कला केंद्र की क्षमता का आकलन इस तथ्य से भी किया जा सकता है कि कुषाणों के जिन दो देवकुलों का अब तक पता चलता है उनमें एक दक्षिणी बैक्ट्रिया (अफ़गानिस्तान) में स्थित सुर्खकोटल तथा दूसरा मथुरा का माट गाँव है। कनिष्क की सिर–विहीन 5 फुट 7 इंच ऊँची स्थानक प्रतिमा कोट–सूट और भारी खड्ग के साथ प्रदर्शित है। प्रतिमा की बनावट पर मथुरा के स्थानीय कला की छाप स्पष्ट द्रष्टव्य है।

15.8 कनिष्क का मूल्यांकन

कनिष्क का शासन भारतीय इतिहास के स्वर्णिम काल के रूप में स्मरण किया जाता है। उसने लगभग 23 वर्षों तक शासन किया और एक नाटकीय घटनाक्रम में (चीनी स्त्रोतों से विदित) अपने ही लोगों द्वारा सोते समय बलपूर्वक श्वास गति रोककर मार डाला गया। मथुरा के समीप माट गाँव के टीले से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमा लेख पर अंकित सं. 23 की तिथि उसके अंतिम शासन वर्ष की (ज्ञात तिथि) है। इस आधार पर कनिष्क को सं. 1 (78 ई.) से सं. 23 (101 ई.) के बीच सत्तासीन मान सकते हैं। उसने विशाल राज्य–सीमा का निर्माण किया और भारतीय संस्कृति के वास्तविक क्षेत्रीय प्रसार को संभव किया। उसके राज्य में कला, साहित्य, अर्थव्यवस्था, शासन प्रबंध और धार्मिक सद्भाव की स्थिति उत्तम थी। अन्तर्राष्ट्रीय सीमा और अन्तर्देशीय व्यापार का बड़ा लाभ कलाकारों को मिला जिन्होंने गांधार और मथुरा कला–केंद्रों में मुक्त–हस्त प्रयोग किए। स्वर्ण के रूप में रोमन व्यापार भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए संजीवनी के समान सिद्ध हुआ। उसका राज–दरबार अश्वघोष, पार्श्व और वसुमित्र जैसे बौद्ध विद्वानों के गूढ़ लेखन से उपकृत था। इनके सहयोग से चौथी बौद्ध संगीति और महाविभाषा शास्त्र की प्रवर्तना हुई। अश्वघोष ने 'सारिपुत्र प्रकरण' नाटक तथा 'बुद्ध चरित' और 'सौन्दरानन्द' नामक महाकाव्यों की रचना की जो संस्कृत साहित्य की महान निधि है। मार्ग भूमिसूत्र के लेखक संघ रक्ष नामक बौद्ध भिक्षु के प्रभाव

में कनिष्क बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हुआ और चौथी बौद्ध संगीति के आयोजन के द्वारा बौद्ध इतिहास में अपूर्व यश की भागी बना। इस संगीति के अध्यक्ष सभापति पार्श्व और वसुमित्र कनिष्क के ही प्रश्रय पर पेशावर आकर धर्म चर्चा हेतु प्रवृत्त हुए थे। कनिष्क के ही शान्तिपूर्ण राज्य में चरक संहिता (चरक कृत) का लेखन कार्य भी संपन्न हुआ माना जाता है। अपनी राजधानी पेशावर को उसने अनन्य सौंदर्यशाली 13 मंजिलों वाले लकड़ी के स्तूप से सज्जित किया। इस स्तूप की कुल ऊँचाई 400 फीट थी। इसी के निकट महाविहार का भी निर्माण करवाया जहाँ धार्मिक विचार–विमर्श और अध्ययन संपन्न किया जाता रहा। उसने बौद्ध धर्म की महायान शाखा के उन्नयन के लिए विशेष प्रयास किए और भिक्षुओं के माध्यम से देश–देशान्तर में धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार करवाया।

तक्षशिला, मथुरा और कश्मीर में कनिष्कपुर जैसे नगरों के वैभव में कनिष्क के शासन की समृद्धि दिखती है। वह दूरदृष्टि–संपन्न, सफल योद्धा और सक्षम प्रशासक था। संस्कृत भाषा, स्वर्ण मुद्राएँ और सद्धर्म की उन्नति उसके पराक्रमी शासन के प्रतिबिंब है।

15.9 कनिष्क के उत्तराधिकारी

बैक्ट्रिया से विहार तक विस्तृत कुषाणों के राज्य में कनिष्क के पश्चात् वासिष्क, हुविष्क, वासिष्क द्वितीय और वासुदेव के नाम ज्ञात हैं।

15.9.1 वासिष्क

वासिष्क कनिष्क का ज्येष्ठ पुत्र अथवा सहोदर रहा होगा। वासिष्क ने सं. 24 से 28 के मध्य 4 वर्ष तक शासन किया जो उसके क्रमशः मथुरा और साँची के लेखों से प्रमाणित होता है। अभिलेखों के प्राप्ति के स्थान के आधार पर उसके अधिकार को मथुरा और पूर्वी मालवा तक विस्तृत मानना चाहिए। कल्हण कृत राजतरंगिणी में उल्लिखित 'जुष्क' और सं. 41 के आरा से प्राप्त एक अभिलेख का समीकरण भी उससे स्थापित किया जाता है जो निर्विवादित नहीं है।

वासिष्क का उत्तराधिकारी हुविष्क हुआ जिसके इतिहास को जानने के साधन अपेक्षाकृत अधिक हैं। उसकी राज्य–सीमा कपिशा से बिहार तक विस्तृत थी तथा शासन के आरंभिक दिनों में संभवतः उसने वासिज्क के सहशासक की भूमिका में मथुरा प्रान्त पर शासन किया। उसके अभिलेख सं. 28 से 60 (106–138ई.) के मध्य मिलते हैं किंतु स्वतंत्रता सूचक 'महाराज रजतिरज' उपाधि का प्रयोग सं. 41 के पूर्व नहीं प्राप्त होता।

यह संभवतः सहशासन का काल रहा होगा। वासिष्क की अपेक्षा उसके स्वर्ण व ताम्र सिक्के अधिक मिलते हैं जो उसके स्थिर और समृद्ध शासन का प्रमाण हैं। उसके ब्राह्मी और खरोष्ठी अभिलेख पूर्वी अफ़गानिस्तान से मथुरा तक मिलते हैं। जो इस क्षेत्र पर उसके अधिकार का साक्ष्य देते है। अभिलेखों में उसे 'महाराज राजातिराज देवपुत्र' कहा गया है। अपने पिता के ही समान वह भी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धावान् था। उसने मथुरा में महाराज देवपुत्र नामक बौद्ध विहार का निर्माण करवाया। कश्मीर के हुष्कपुर नगर की स्थापना का श्रेय भी उसे दिया जाता है जहाँ ह्वेनसांग ने बौद्ध विहार देखा था।

बौद्ध और जैन मतों के प्रति सद्भाव रखते हुए भी वह मूलतः ब्राह्मण धर्मों के प्रति आस्थावान था। सिक्कों पर उसने शिव, स्कंद, महासेन, कार्तिकेय आदि को अंकित करवाया। शिव के विविध रूप यथा उमा–महेश्वर, त्रिशिर–शिव आदि भी अंकित मिलते हें। अपने विशाल धार्मिक विश्वास में हुविष्क ने ग्रीक–ईरानी देवताओं को भी शामिल किया और मिहिर, रोमा, आतश, नना, आरदोक्षो जैसे देवी–देवताओं का अंकन करवाया।

15.9.2 कनिष्क द्वितीय

सिंधु नदी के तट पर अटक से 10 मील पर आरा नामक नाले से प्राप्त अभिलेख में संवत् 41 तिथ्यांकित 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कैसर' उपाधिधारक 'वाझेष्क पुत्र' कनिष्क की पहचान कनिष्क द्वितीय से स्थापित की जाती है। उसे वासिष्क का पुत्र तथा हुविष्क का सहशासक भी स्वीकार किया जाता है। कनिष्क द्वितीय के संबंध में सीमित जानकारी और किसी अन्य अभिलेख के प्राप्त न होने के कारण विद्वानों ने उसे अल्पजीवी माना है। संभवतः शासक बनने के शीघ्र बाद ही उसकी मृत्यु अथवा सत्ताबदल हो गया था।

15.9.3 वासुदेव

कुषाणों में कनिष्क के वंश का अंतिम प्रधान शासक वासुदेव ज्ञात होता है। सं. 67 से सं. 98 के मध्य उसने मथुरा व निकटवर्ती प्रदेशों पर शासन किया। वह भी हुविष्क के ही समान ब्राह्मण धर्म और विशेषतः शैव मत के प्रति आस्थावान था। उसके सिक्कों पर मात्र तीन देवी–देवता अंकित हैं– शिव, आरदोक्षो और अना जिनमें भी शिव सर्वप्रधान देवता के रूप में प्रस्तुत होते हैं। नंदी के साथ और त्रिशीर्ष रूप में शिव का अंकन प्राप्त होता है।

वासुदेव के अभिलेखों की प्राप्ति के आधार पर लगता है कि संभवतः पश्चिमोत्तर भारत के क्षेत्र उसके हाथ से निकल चुके थे और कुषाण शक्ति मात्र मथुरा के आस–पास ही केंद्रित बची थी। संवत् 98 (176 ई.) से उसके शासक

का अंतिम अभिलेख मिलता है। संभवतः इसी समय उसका शासन काल समाप्त हुआ होगा।

15.10 कुषाणो का पतन

अपने लगभग 99 वर्षों के गौरवशाली समग्र शासन में साम्राज्यवादी कुषाणों ने भारत के प्रथम वास्तविक वैश्विक साम्राज्य का निर्माण किया। कुषाणों के प्रभाव के तात्कालिक कारणों का पता नहीं पर अपने ही क्षत्रपों की वर्धमान राजनैतिक प्रतिष्ठा और शक्ति के हाथों निश्चय ही उन्हें सांघातिक हानि उठानी पड़ी होगी, ऐसा सहज अनुमान किया जा सकता है। उनके अन्त के पूर्व ही भूमक और नहपान तथा चष्टन और रूद्रदामन जैसे शक क्षत्रपों ने क्रमशः भड़ौंच और उज्जैन में सशक्त राज्य स्थापित कर लिए थे। मथुरा पर नागों का प्रभुत्व स्थापित हुआ तथा इस प्रकार साम्राज्यवादी कुषाण, परवर्ती कुषाणों की सामन्ती शक्ति के रूप में पश्चिमोत्तर भारत और समीपवर्ती प्रदेशों के स्थानीय शासक के रूप में सिमट गए। किंतु निस्संदेह कुषाणों का भारतीय शासन भारतीय संस्कृति के विकास का अहम् पड़ाव सिद्ध हुआ।

15.11 बोध प्रश्न

1. कुषाण कौन थे ? उनका प्रारंभिक इतिहास क्या था ?
2. कनिष्क प्रथम के पूर्व कुषाणों के राजनैतिक इतिहास के स्वरूप का उल्लेख करें।
3. कनिष्क प्रथम कुषाणों का ही नहीं भारतीय इतिहास का निर्विवादित नायक था, व्याख्या करें।
4. कनिष्क प्रथम की सांस्कृतिक उपलब्ध्यिाँ क्या थी ?
5. कुषाणों ने कला और धर्म के क्षेत्र में किस प्रकार नवाचार (Innovation) को प्रोत्साहित किया, बताएँ।
6. कनिष्क (i) के बाद कुषाणों के इतिहास का वर्णन करें।

15.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- मजुमदार, आर0सी (व अन्य) (1951) 1968 : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, वॉ0 2, चतुर्थ संस्करण, भारतीय विद्या भवन
- रायचौधरी, एच. सी. (1923) 2000 : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट,

दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस

- सिंह, उपिन्दर (2017) 2021 : प्रचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, नोएडा, पिर्यसन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड
- मुखर्जी, बी. एन. 1995 : 'द ग्रेट कुषाण टेस्टामेंट' इंडियन म्यूज़ियम बुलेटिन, कोलकाता, इंडियन म्यूजियम।
- मुखर्जी, बी. एन. 2004 : कुषाण स्टडीज : न्यू पर्सपेक्टिव्स, कोलकाता, फर्मा KLM

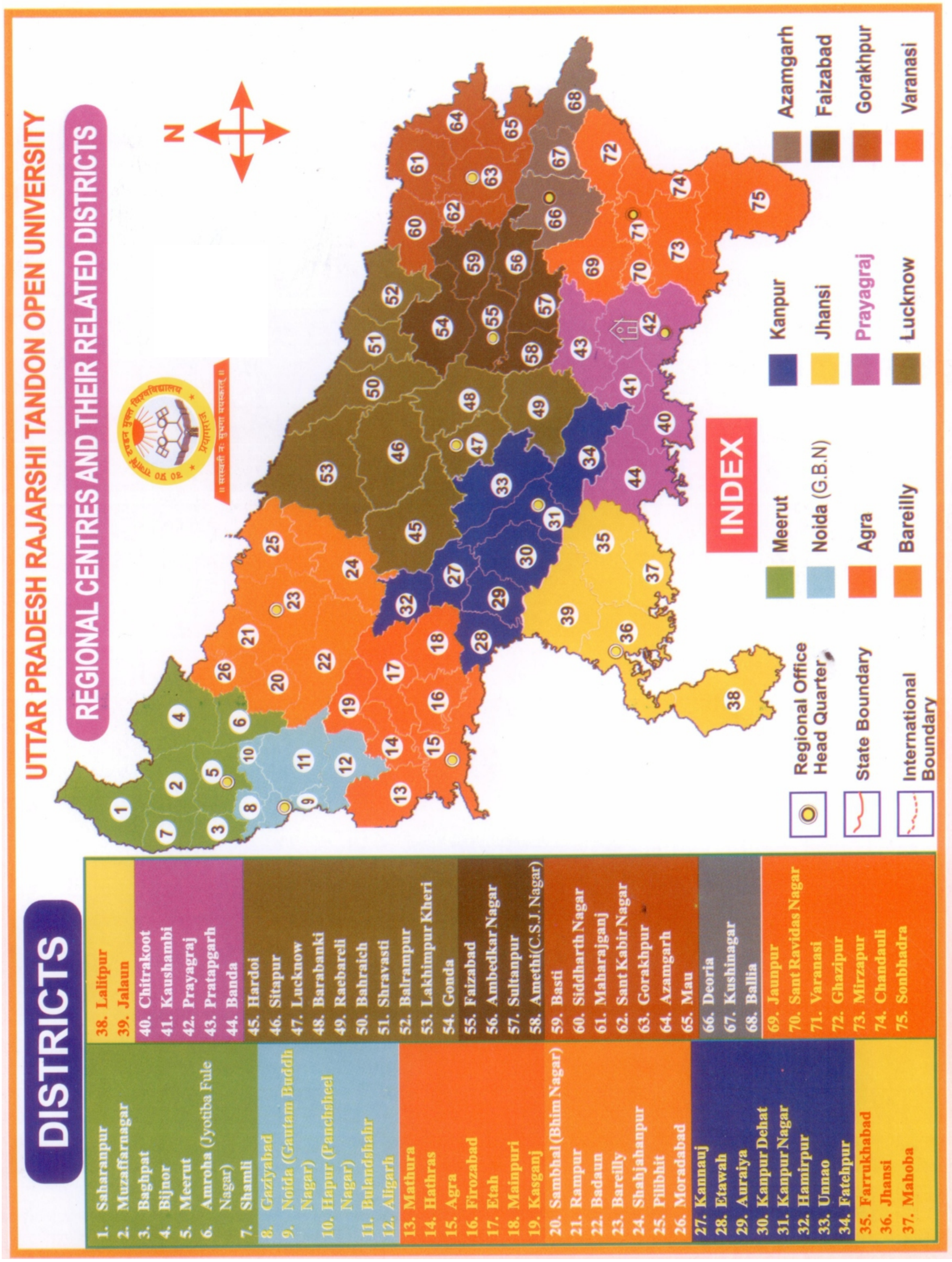

शान्तिपुरम् (सेक्टर–एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी–छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333